भारत का आर्थिक विकास

कक्षा 11 के लिए अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तक

लेखक
पी.के. चौबे

संपादक
जी.एस. कुशवाहा

हिंदी रूपांतरण
ओ.पी. बोहरा
नीरजा रश्मि

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
सितंबर 2002
भाद्रपद 1924
PD 40T DRH

ISBN 81-7450-093-6

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्लू.सी. कैम्पस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	32, बी.टी. रोड, सुखचर
नई दिल्ली 110 016	**बैंगलूर 560 085**	**अहमदाबाद 380 014**	**24 परगना 743 179**

प्रकाशन सहयोग

संपादन : दयाराम हरितश
उत्पादन : प्रमोद रावत
राजेन्द्र चौहान

आवरण
प्रमोद रावत

रु. 35.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा नाथ ग्राफिक, 1/21, सर्वप्रिय विहार, नई दिल्ली 110 016 से लेजर टाइपसेट होकर कौशिक ऑफसैट प्रिंटर्स प्रा. लि., सी-34, सैक्टर 58, नोएडा 201 301 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक **भारत का आर्थिक विकास** (कक्षा XI, द्वितीय सत्र) उच्चतर माध्यमिक स्तर के लिए तैयार की गई अर्थशास्त्र की चार पाठ्यपुस्तकों की शृंखला में दूसरी है। यह *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2000* के अनुरूप तैयार किए गए अर्थशास्त्र के नए पाठ्यक्रम पर आधारित है।

माध्यमिक स्तर तक अर्थशास्त्र सामाजिक विज्ञान की समेकित पाठ्यचर्या के एक अंग के रूप में पढ़ाया जाता है। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पहली बार स्वतंत्र विषय के रूप में अर्थशास्त्र से विद्यार्थियों का परिचय होता है। उच्चतर माध्यमिक स्तर के दो वर्षों की अवधि छः माह के चार सत्रों में विभाजित होती है। इन चार सत्रों के लिए अर्थशास्त्र में चार पाठ्यपुस्तकें हैं, जिनमें से दो ग्यारहवीं कक्षा के लिए हैं तथा दो बारहवीं कक्षा के लिए।

ग्यारहवीं कक्षा के द्वितीय सत्र के लिए तैयार की गई इस पाठ्यपुस्तक का उद्देश्य विकास की कुछ मानक संकल्पनाओं और सूचकों के परिप्रेक्ष्य में भारतीय अर्थव्यवस्था में स्वतंत्रता के बाद से हुए संरचनात्मक परिवर्तनों की विस्तृत ज़ानकारी देना है। सामाजिक-आर्थिक आधारिक संरचनाओं की अवस्थिति तथा विकास का विवरण देकर, 1991 के पहले के विकास की व्यूहरचनाओं तथा 1991 के बाद से हुए आर्थिक-सुधारों से विद्यार्थियों का परिचय कराया गया है। पुस्तक में देश के योजनाबद्ध विकास के क्रम में हमारी उपलब्धियों/विफलताओं का एक लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। कुछ उभरते हुए प्रश्नों पर भी विचार किया गया है, जो अर्थव्यवस्था के लिए चुनौतियों की भाँति हैं। सामयिक विषयों जैसे पर्यावरण, लिंग, प्रवसन आदि का भी संक्षिप्त उल्लेख है।

इस पाठ्यपुस्तक को तैयार करने में परिषद् को कई स्थानों से सहायता मिली है। मैं लेखक महोदय के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने पुस्तक को बोधगम्य रूप में लिखने का कठिन कार्य कुशलता से संपन्न किया। विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के उन शिक्षकों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने विषय-विशेषज्ञों के रूप में पुस्तक की पांडुलिपि के पुनरीक्षण हेतु आयोजित कार्यशालाओं में भाग लेकर पुस्तक को वर्तमान स्वरूप प्रदान करने में सक्रिय योगदान दिया।

आशा है कि यह पाठ्यपुस्तक उन विद्यार्थियों के लिए उपयोगी होगी, जिन्होंने एक स्वतंत्र विषय के रूप में अर्थशास्त्र का अध्ययन आरंभ किया है। पाठ्यचर्या एवं पाठ्यपुस्तकों का निर्माण एक अनवरत प्रक्रिया है, अतः भविष्य में पाठकों के विचारों और सुझावों का परिषद् स्वागत करेगी।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

जून 2002
नई दिल्ली

पाठ्यपुस्तक पुनरीक्षण समिति

1. पी.के. चौबे
आचार्य (अर्थशास्त्र)
भारतीय लोक प्रशासन संस्थान
नई दिल्ली

2. जी.एस. कुशवाहा
आचार्य (अवकाश प्राप्त)
अर्थशास्त्र विभाग
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी

3. कान्ता जोशी
स्नातकोत्तर शिक्षक (अर्थशास्त्र)
राजकीय कन्या उ.मा.विद्यालय
न. 2, किदवई नगर, नई दिल्ली

4. ए.एस. गर्ग
स्नातकोत्तर शिक्षक (अर्थशास्त्र)
राजकीय प्रतिभा विकास विद्यालय
सूरजमल विहार
नई दिल्ली

5. वीणा गुप्ता
स्नातकोत्तर शिक्षक (अर्थशास्त्र)
राजकीय कन्या उ. मा. विद्यालय
न. 1, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली

6. ओ.पी. बोहरा
अर्थशास्त्री
राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान
नई दिल्ली

नीरजा रश्मि ***(समन्वयक)***
प्रवाचक (अर्थशास्त्र)
सा.वि.मा.शि.वि.,
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
नई दिल्ली

पुस्तक परिचय

इस पुस्तक का मूल आशय विद्यार्थियों को भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्षणों तथा 1950-51 से लेकर आज तक हुए विकास से अवगत कराना है। ऐसी आशा है कि आपको अर्थव्यवस्था के मूलभूत बिंदुओं का ज्ञान है अतः इनको आँकड़ों की सहायता से समझाया जाएगा। आपको इन आँकड़ों का ध्यान मोटे तौर पर रखना होगा न कि दो दशमलव तक याद रखने की जरुरत है। इसका तात्पर्य यह है कि आपको पूर्णरूप से सही अथवा गलत भी नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिए भारत की जनसंख्या 2001 में 100 करोड़, 20वीं शताब्दी के अंत तक खाद्यान्न उत्पादन 200 मिलियन (20 लाख करोड़) या चालू वर्षों में सकल घरेलू उत्पाद प्रचलित भावों में 20 करोड़ रुपये हो जाएगा। ये आँकड़े मोटे तौर पर हमें अर्थव्यवस्था के बारे में बताते हैं जो साधारणतः काफी हैं।

सारणियों का प्रयोग इनके स्पष्टीकरण के लिए किया गया है। यें आँकड़े सही हैं, क्योंकि इन्हें किसी स्रोत-पुस्तक से लिया गया है। इन आँकड़ों को हजारों, लाखों, दस लाखों (मिलियन टन) तथा करोड़ों में बताया गया है। हमारा उद्देश्य विभिन्न समयों के बीच तथा विभिन्न इकाइयों के बीच तुलना करना है। इसीलिए इन आँकड़ों को लेकर 5 या 0 के पूर्ण अंकों में अथवा सुविधानुसार 1/3 या 2/5 के अनुपात लेकर अपने आँकड़े पूर्ण करके अपनी बात रख सकते हैं। आँकड़ों के 33.2 प्रतिशत या 33.7 प्रतिशत को लेकर विवाद में न पड़ना चाहिए, क्योंकि ये आँकड़े आपके उत्तर का स्तर नहीं बदलेंगे।

भारत का संविधान

भाग 4अ

नागरिकों के मूल कर्त्तव्य

अनुच्छेद 51अ

मूल कर्त्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्रणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके।

विषय-सूची

इकाई I

आर्थिक संवृद्धि एवं विकास

यद्यपि यह पाठ्यक्रम भारत में आर्थिक विकास (विशेषतौर से भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास) से संबंधित है। यहाँ आप कुछ संकल्पनाओं (concepts) को, जो समाचार पत्रों में भी प्रयोग की जाती हैं, भली-भाँति समझ लें। हम इनको जहाँ तक हो सके सरल भाषा में समझाएंगे जिससे आप विस्तृत जानकारी विकसित कर सकें। हम इस अध्याय में अर्थशास्त्र में प्रयोग की जाने वाली चार मूलभूत पदों की चर्चा करेंगे ताकि आप इसकी एक समझ विकसित करें जिससे आप आगे चलकर हमारी अर्थव्यवस्था के बारे में चर्चा, वाद-विवाद, संवाद तथा शेष विश्व के बारे में समझ सकें।

हालांकि, विभिन्न संकल्पनाओं तथा इनके प्रयोग के बारे में कोई एक निश्चित मत नहीं है फिर भी इन संकल्पनाओं तथा शब्दों की लगभग स्वीकृति है। चार मूल संकल्पनाएँ जिस पर अध्याय 1 में चर्चा होगी, वे हैं:

(i) आर्थिक संवृद्धि (Economic growth);

(ii) आर्थिक विकास (Economic development);

(iii) सतत् विकास (Sustainable development); और

(iv) जीवन की गुणवत्ता (Quality of life)

इन संकल्पनाओं का क्रमिक विकास हुआ है। हम इस क्रमिक विकास को समझने की कोशिश करेंगे। यदि कुछ महत्त्वपूर्ण विषयांतर हुए हैं, तो इनको बाक्स में दर्शाएंगे। हम आपके लिए कुछ क्रियाएँ भी रखेंगे, जिनसे आपको इन संकल्पनाओं को समझने में आसानी हो।

दूसरे अध्याय में हम विशेष वर्ष में उपलब्ध विकास के स्तर को मापने के वैक्लपिक संकेतकों के बारे में चर्चा करेंगे। हम विशेषतौर पर प्रतिव्यक्ति आय, PQLI तथा HDI के बारे में व्याख्या करेंगे।

अध्याय 1

विकास की संकल्पनाएँ

परिचय

अर्थव्यवस्थाएँ वृद्धि एवं विकास करती हैं, उनका विस्तार होता है, वे अग्रसर होती हैं, उनकी उन्नति एवं संवृद्धि होती है। ऐसा समय भी आता है जब इनका पतन (अवनति) होता है। कुछ अर्थव्यवस्थाएँ ऐसी हैं, जिनका लगातार पतन होता है। यदि हम मानव इतिहास के एक लंबे भाग को देखें तो पता चलता है कि कुछ अर्थव्यवस्थाएँ (सभ्यताएँ) बिलकुल समाप्त हो गई हैं। हम ऐसी समयावधि की चर्चा नहीं करेंगे और न ही बहुत पुराने समय की बात करेंगे। हम उनको इतिहासकारों एवं आर्थिक इतिहासकारों के लिए छोड़ देंगे।

हम एक साधारण दृष्टिकोण लेंगे। हम अर्थव्यवस्था का पतन एक अस्थायी तथ्य के रूप में स्वीकृत करेंगे। इसलिए हम सकारात्मक शब्दों को ही प्रयोग में लाएंगे। परिवर्तन को वर्णित तथा निर्धारित करने वाले सकारात्मक शब्दों के अंतर्गत दो शब्द प्रचलित हैं : **वृद्धि** (Growth) एवं **विकास** (Development)। हम राष्ट्रों एवं देशों को मूलतः अर्थव्यवस्थाओं के रूप में देखेंगे इसलिए 'आर्थिक वृद्धि' एवं 'आर्थिक विकास' शब्दों का प्रयोग करेंगे। हम आर्थिक एवं गैर-आर्थिक में अंतर करने की कोशिश करेंगे, यद्यपि कुछ स्थितियों में यह अंतर करना कठिन है।

स्तर में गिरावट को दिखाने के लिए हम 'नकारात्मक वृद्धि' तथा विकृत प्रवृत्तियों का वर्णन करने के लिए हम 'अ-विकास' या 'कुविकास' वाक्यांशों का प्रयोग करेंगे। यद्यपि हमें इनके प्रयोग का अवसर शायद न मिले।

कई बार वैज्ञानिक शोधों एवं संवादों में **वृद्धि** एवं **विकास** शब्दों का समान अर्थ में प्रयोग किया जाता है। आर्थिक साहित्य में इन दोनों शब्दों में भेद किया जाता है। आगे आने वाले अनुच्छेदों में इस भेद को बनाए रखा गया है।

आपने देखा होगा कि 'वृद्धि' शब्द का प्रयोग आकार या ऊँचाई में बढ़ोत्तरी को दर्शाने के लिए होता है। वृद्धि शब्द का प्रयोग एकल-आयामी परिवर्तन, जैसे कि बच्चे का कद, में वृद्धि या किसी बहु-आयामी परिवर्तन, जैसे गुब्बारे के आकार में वृद्धि, का वर्णन करने के लिए होता है। जब हम बच्चे के विकास के बारे में बताते हैं, तो हमारा तात्पर्य इसके व्यक्तित्व के सभी आयामों से होता है।

जब हम आयाम के बारे में बात नहीं करते तो, हम 'वृद्धि' शब्द का प्रयोग करते हैं। स्कूल तथा संस्थाएं, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय, होटल तथा अस्पताल भी वृद्धि करते हैं परंतु कुछ विशेषताएँ हैं जो वृद्धि शब्द में सम्मिलित नहीं हैं। शायद ही ऐसा होता है कि वृद्धि बिना विकास अथवा विकास बिना वृद्धि के संभव हो। अधिकतर

स्थितियों में ये एक-दूसरे के साथ होते हैं। कभी एक अधिक प्रभावी होता है तो दूसरा अप्रभावी।

आर्थिक संवृद्धि (Economic growth)

हम अर्थव्यवस्था का एक व्यापक दृष्टिकोण लें, जिसमें सभी क्रिया-कलाप सम्मिलित हों तथा इसे आर्थिक संवृद्धि कहें।

> **संवृद्धि (Growth)**
>
> हम श्रम शक्ति की वृद्धि, निर्यात वृद्धि, कृषि वृद्धि अथवा उद्योग वृद्धि के बारे में बात कर सकते हैं। हम उपभोग-व्यय (consumption expenditure) या निवेश-व्यय (investment expenditure) की वृद्धि के बारे में भी चर्चा कर सकते हैं। हम बैंकिंग, बीमा अथवा सूचना-प्रौद्योगिकी की वृद्धि के बारे में बात कर सकते हैं। हम यहाँ पर वृद्धि को पूरी अर्थव्यवस्था की वृद्धि तक ही सीमित रखेंगे।

हम 'वृद्धि' को उत्पादन की दृष्टि से देखते हैं। किसी एक अर्थव्यवस्था में किसी एक वर्ष में वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन को 'सकल घरेलू/देशीय उत्पाद' के रूप में (मापते) हैं। सकल देशीय उत्पाद का मापन हम कारक-लागत (facter cost) पर करते हैं और इसको संक्षेप में GDP_{FC} लिखते हैं। वर्ष 2000-01 में GDP_{FC} लगभग 17,00,000 करोड़ रुपये था। वर्ष 2000-01 में 'वस्तुओं एवं सेवाओं' के उत्पादन के प्रवाह को मूल्य के रूप में मापा गया है। हम यह जानने में भी इच्छुक होंगे कि इस वर्ष का प्रवाह पिछले वर्ष के प्रवाह से अधिक है या कम? इसके लिए हमें पिछले वर्ष के प्रवाह को भी मापना आवश्यक है। प्रवाह में वास्तविक (real) परिवर्तन जानने के लिए हमें दोनों वर्षों के प्रवाह के परिमाण की गणना समान कीमतों के आधार पर करनी चाहिए। ये कीमतें वर्ष 2000-01 अथवा 1999-2000 या 1993-94 की हो सकती हैं। मुख्य बात यह है कि कीमतें किसी एक समान वर्ष (common year) की होनी चाहिए जिससे हम निर्गत के प्रवाह के परिवर्तन को माप सकें न कि निर्गत तथा कीमतों के परिवर्तन के मिश्रण को। ऐसे सकल देशीय उत्पाद के ऐसे माप को स्थायी मूल्यों (constant prices) पर GDPs कहा जाता है।

यदि आप राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी (National Accounts Statistics), जो कि केंद्रीय सांख्यिकी संगठन (Central Statistical Organization) से प्रकाशित होती हैं, की नवीन प्रति को देखें तो मालूम होगा कि 1993-94 मूल्यों पर GDP_{FC} वर्ष 1999-2000 तथा 2000-01 के लिए क्रमशः 10,00,000 करोड़ रुपये एवं 10,60,000 करोड़ रुपये था। प्रवाह में वृद्धि को निरपेक्ष रूप से GDP_{FC} कहते हैं, जो 60,000 करोड़ रुपये है। तुलनात्मक रूप में यह वृद्धि 6 प्रतिशत है। इसे वृद्धि दर कहेंगे। यदि हम पूरी शृंखला (series) 10, 20, या 50 वर्षों के लिए तैयार करते तो हम संवृद्धि दर में 'प्रतिवर्ष' शब्द जोड़ते हैं। 'संवृद्धि-दर' को बहुधा प्रतिशत प्रतिवर्ष रूप में दर्शाया जाता है। यह सकारात्मक या नकारात्मक परिवर्तन हो सकता है।

यदि हम 20 वर्ष की अवधि के लिए वस्तुओं के उत्पादन के प्रवाह के वार्षिक आँकड़ों को देखें, जो GDP_{FC} स्थायी कीमतों पर मापे गए हैं, तो 'वृद्धि दर', जिसकी गणना वार्षिक आधार पर की गयी है, प्रतिवर्ष भिन्न होगी। क्या हमें 19 वर्षों के आँकड़ों का प्रयोग प्रतिवर्ष 'वृद्धि दर' निकालने के लिए करना चाहिए अथवा प्रारंभिक तथा अंतिम वर्ष के आँकड़ों की तुलना करनी चाहिए? यदि हम पहला तरीका अपनाते हैं, तो प्रश्न है कि 19

वर्षों के आँकड़ों का सारांश कैसे करें? यदि हम दूसरा तरीका अपनाते है तो इसमें यह संभावना है कि इन आँकडों में से कोई एक संख्या (अगली अथवा पिछली) 'असाधारण' हो सकती क्योंकि यह सामान्य प्रवृत्ति से अलग हटकर है। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि हम साधारण प्रवृत्ति की बात करें और इसके आस-पास के असाधारण उतार-चढाव पर ध्यान न दें? इसीलिए 'आर्थिक वृद्धि' लंबी अवधि की प्रवृत्ति को कहते हैं, जिसमें अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं के प्रवाह में बढ़ोत्तरी को दर्शाया जाता है।

यद्यपि साधारण प्रवृत्ति वृद्धि की ही होती है किंतु कभी-कभी पतन की घटना भी होती है। उन वर्षों में नकारात्मक संवृद्धि होती है। क्या हम ऐसा कह सकते हैं कि अर्थव्यवस्था में उत्पादन की संभावना लगातार बढ़ रही है परंतु कभी-कभी उत्पादन संभावनाएँ साकार नहीं हो पातीं। अनियमित पतन के कई कारण हो सकते हैं। यदि अर्थव्यवस्था जरूरत से ज्यादा विदेशी व्यापार पर निर्भर करती है, तो दूसरे देशों की स्थिति भी इसे प्रभावित कर सकती है। यदि मानसून बुरी तरह असफल हो जाता है तो अर्थव्यवस्था कुछ समय के लिए पटरी से नीचे उतर जाती है। कई अन्य कारणों से आंतरिक माँग क्षमता का पूर्णरूपेण प्रयोग करने में असफल रहती है। कई अर्थशास्त्री आपूर्ति-क्षमता पर ज्यादा जोर देते हैं और मांग की स्थिति की उपेक्षा करते हैं। ये 'आर्थिक संवृद्धि को लंबी समयावधि में अर्थव्यवस्था में उत्पादन संभाव्यता में बढोत्तरी' के रूप में परिभाषित करते हैं।

कुछ अर्थशास्त्री ऐसा महसूस करते हैं कि प्रति व्यक्ति GDP_{FC} में वृद्धि ही संवृद्धि है न कि GDP_{FC} में वृद्धि तथा इसी आधार पर एक

'संवृद्धि दर' 't' समयावधि के लिए नीचे दिए गए तरीके से परिभाषित कर सकते हैं :

$$g_t \frac{Q_t - Q_{-t}}{Qt-1} = \frac{Q_t}{Q_{t-1}} - 1 \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(1)$$

जहाँ —

g_t = GDP वृद्धि दर (तुलनात्मक) 't' समयावधि के लिए।

Q_t = t समयावधि के लिए GDP_{FC}

$Q_{t-1} = t_{-1}$ समयावधि के लिए GDP_{FC}

माना कि GDP_{FC} वर्ष 1990-00 में 1993-94 की कीमतों पर 11,52,000 करोड़ रुपये है तथा GDP_{FC} 1998-99 वर्ष में 1993-94 की कीमतों पर 10,83,000 करोड़ रुपये है। हम संवृद्धि-दर इस प्रकार मालूम कर सकते हैं :

$$g_t \frac{\text{Rs } 1{,}15{,}000 - \text{Rs } 10{,}83{,}000}{10{,}83{,}000} = 1.0637 - 1 = 0.0637$$

इसलिए वृद्धि दर 0.0637 होगी। हालाँकि, वृद्धि दर को प्रतिशत रूप में दर्शाते हैं, अतः वृद्धि दर को 6.37 प्रतिशत लिखेंगे।

कभी-कभी लोग ऐसी वृद्धि दरों का निश्चित समयावधि (दशक या पंचाब्द) के औसत (average) लेकर इसे औसत वार्षिक वृद्धि दर भी कहते हैं (AAGR)।

अर्थव्यवस्था की संवृद्धि को मापते है। किंतु यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'आर्थिक संवृद्धि' एक लंबी समयावधि का दृश्य (घटना) है जो एक अर्थव्यवस्था में होने वाली आर्थिक गतिविधियों के परिवर्तनों को दर्शाता है।

आर्थिक विकास (Economic Development)

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक विकास और आर्थिक संवृद्धि में ज्यादा अंतर नहीं है। उनके लिए दोनों लंबी समयावधि में प्रतिव्यक्ति आय में बढ़ोतरी की प्रक्रियाएँ हैं। कुछ दूसरे अर्थशास्त्री ऐसा विश्वास रखते हैं कि 'विकास' निश्चित रूप से 'संवृद्धि' से एक भिन्न प्रक्रिया है, तथा यहाँ वृद्धि के अतिरिक्त परिवर्तन के दूसरे पहलू (आयाम) भी सम्मिलित करता है। फिर भी दूसरे ऐसा मानते हैं कि विकास कुछ नहीं यह केवल किसी विशेष वर्ष में प्रतिव्यक्ति आय के स्तर को दर्शाता है।

पूरे मानव इतिहास को, सकारात्मक दिशा में होने वाले परिवर्तन या विकास का एक अनुक्रमण माना जा सकता है। दूर से देखने पर मालूम होता है कि अर्थव्यवस्था की उत्पादन संरचना में परिवर्तन हुआ है– शिकार-संग्रहण से स्थायी कृषि, कृषि से विनिर्माण, विनिर्माण से स्वचालित उत्पादन, वस्तुओं के उत्पादन से सेवाओं का उत्पादन। इसका आशय यह नहीं है कि 1000 वर्षों पहले सेवाओं का उत्पादन नहीं होता था। इसका आशय केवल यह है कि इनके तुलनात्मक महत्त्व में परिवर्तन हुआ है तथा ऐसा व्यापक रूप से सभी क्रिया-कलापों में बढ़ोत्तरी के कारण संभव हुआ है। पिछली दो शताब्दियों से हम अर्थशास्त्र के ज्यादातर संकेत पश्चिम के अर्थशास्त्र के इतिहास से लेते हैं। इस समयावधि के दौरान यूरोप में कई प्रकार के प्रभावशाली परिवर्तन हुए जिन्हें हम व्यापक रूप से तकनीकी और संस्थागत श्रेणी में वर्गीकृत कर सकते हैं। पहले के अर्थशास्त्री जो '**विकास अर्थशास्त्र**' (Development Economics) के क्षेत्र में कार्यरत थे, उन्होंने उत्पादन के संघटन तथा श्रम के नियोजन में होने वाले परिवर्तनों पर ध्यान दिया। उन्होंने इसे संरचनात्मक-परिवर्तन कहा। संरचनात्मक परिवर्तन का आशय गैर-कृषि/गैर-प्राथमिक उत्पाद में परिवर्तन के अनुपात के साथ-साथ गैर-कृषि क्षेत्र (पूंजी और भूमि के बंटवारे में भी) में तथा श्रम नियोजन के अनुपात में होने वाला परिवर्तन है। तथापि इस संरचनात्मक परिवर्तन को सभी वस्तुओं के उत्पाद में वृद्धि के साथ जोड़ा जाता है, न कि ह्रास के साथ। उन्होंने आर्थिक विकास को गैर-कृषि क्षेत्र के पक्ष में संरचनात्मक परिवर्तन के साथ आर्थिक संवृद्धि के रूप में परिभाषित किया है। उन्होंने सकल देशीय उत्पाद के संयोजन एवं श्रम के औद्योगिक वितरण को ही संरचनात्मक परिवर्तन माना है। यह एक तरफ वस्तुओं एवं सेवाओं की बदलती हुई मांग तथा दूसरी ओर विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन-तकनीक में श्रम की बदलती हुई मांग का द्योतक है।

मुख्यधारा से जुड़े हुए अधिकांश अर्थशास्त्रियों का मानना है कि पश्चिम की सभी अर्थव्यवस्थाएँ एक ही रास्ते पर चल रही हैं और उन्हें विश्वास है कि अन्य सभी अर्थव्यवस्थाएँ भी उसी रास्ते पर चलेंगी। जब उन्होंने देखा कि ऐसा नहीं हो रहा है तो उन्होंने संस्थागत परिवर्तन को समान रूप से महत्त्वपूर्ण बताया। संस्थागत परिवर्तन का तात्पर्य पूंजी बाजार तथा मुद्रा बाजार के साथ-साथ शासन में नयी संस्थाओं का उभरना है। कुछ अर्थशास्त्रियों ने लोगों की प्रवृत्ति में परिवर्तन की आवश्यकता की चर्चा की, जिसका तात्पर्य परंपरागत मान्यता

पद्धति से आधुनिक मान्यता पद्धति की ओर झुकाव से था। इस विचार के साथ आर्थिक विकास को **आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक संवृद्धि से भी कुछ अधिक** के रूप में परिभाषित करते हैं। विकास के तकनीकी आयाम पर भी बल डालने का प्रयास किया गया। इस ओर ध्यान दिया गया कि 'आर्थिक संवृद्धि' के साथ उत्पादकता में बढोत्तरी को भी लिया जाए। अतः **आर्थिक संवृद्धि के साथ-साथ उत्पादकता में बढोत्तरी को आर्थिक विकास कहा जा सकता है ।**

आर्थिक इतिहास के वर्णन से विकास का कोई सरोकार नहीं है। यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास लोगों को कम समय में गरीबी एवं निष्क्रियता से मुक्ति दिलाने की सुविचारित प्रक्रिया है। पचास तथा साठ के दशकों में इन दोनों क्षेत्रों के परिदृश्य में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इससे कई अर्थशास्त्रिओं का मोहभंग हुआ और उन्होंने अपना रोष दिखाना आरंभ किया। ऐसे ही पश्चिमी देश के एक अर्थशास्त्री, जो कि विकास की समस्याओं से संबंध रखते थे, दिल्ली में एक विश्व-सम्मेलन में कहा कि किसी देश के विकास के बारे में पूछे जाने वाले प्रश्न हैं– गरीबी के विषय में क्या हुआ? बेरोजगारी के विषय में क्या हुआ? असमानता के विषय में क्या हुआ? यदि किसी देश में इन तीनों समस्याओं का स्तर ऊपर से नीचे हुआ है तो यह निश्चित ही उस देश के विकास का समय है। यदि इनमें से एक या दो मुख्य समस्याएँ अथवा तीनों बदतर हो रही हैं, तो इसे विकास कहना विचित्र होगा, यदि प्रतिव्यक्ति आय दुगनी भी हो गयी हो तो भी।

यहाँ एक ऐसा संदर्भ है जिसमें एक रण-नीति के तहत अर्थव्यवस्था को विकसित करने का प्रयास किया गया है। यदि इस युक्ति से उत्पादन-क्षमता तथा वास्तविक उत्पादन में वृद्धि होती है तो वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन के संयोजन या श्रम-शक्ति के नियोजन की दृष्टि से अर्थव्यवस्था की संरचना में परिवर्तन, विभिन्न बैंकों के रूप में नई संस्थाओं का प्रादुर्भाव, प्रौद्योगिकी के द्वारा मानव व पशु की जगह विद्युत शक्ति के प्रयोग आदि के द्वारा भी यदि कोई अर्धविकसित देश अपनी मूल समस्याओं का समाधान नहीं कर सके तो इन प्रयासों और नीतियों का कोई अर्थ नहीं है।

अर्धविकसित अर्थव्यवस्थाएं (Underdeveloped Economies)

विकास-अर्थशास्त्र के साहित्य में गरीब देशों का वर्णन कई प्रकार से किया गया है, जैसे पिछड़े देश, अर्धविकसित देश, विकासशील देश, निम्न-आय वाले देश तथा तीसरे विश्व के देश। इन भिन्न-भिन्न शब्दों की उत्पत्ति ही किसी अन्य शब्द पर आपत्ति के कारण हुई। यदि कोई हमारी अर्थव्यवस्था को पिछड़ी अर्थव्यवस्था कहे तो यह हमें अच्छा नहीं लगता है, क्योंकि अर्थव्यवस्था शब्द का प्रयोग प्रायः किसी राष्ट्र या देश के स्थान पर ही किया जाता है, क्योंकि हम एक ही प्राचीन सभ्यता के अंग हैं।

भारत के एक प्रमुख अर्थशास्त्री जगदीश भगवती ने कहा था कि शब्दों का चुनाव ज्यादातर श्रोताओं की अति-संवेदनशीलता तथा विश्लेषक की समझदारी पर निर्भर करता है।

तीसरे विश्व में वे देश शामिल हैं जो न तो पूंजीवादी समूह में हैं, न समाजवादी समूह में और न ही निर्गुट-आंदोलन के सदस्य हैं। कुछ ने इन न्यूनतम विकसित देशों को, गैस-तेल निर्यातक विकासशील देशों, पेट्रोलियम-धनी ओपेक देशों आदि के रूप में वर्गीकृत किया है। ओपेक (OPEC) का अर्थ है– पेट्रोलियम निर्यातक देशों का संगठन।

चौथे विश्व शब्द का प्रयोग गरीब अर्धविकसित देश तथा न्यूनतम विकसित देशों के लिए किया जाता है।

इसका तात्पर्य यह है कि विकास लोगों के कल्याण से संबंधित है। बहुत पहले यह सुझाव दिया गया था कि लोगों का कल्याण कुल उपलब्धता (size of cake) तथा इसके वितरण पर निर्भर करता है। यदि कोई नौकरी करता है तो उसे मजदूरी पाने का अधिकार है। यदि कोई नियोजित है तो उसे पर्याप्त मजदूरी मिलनी चाहिए अथवा यदि कोई स्व-नियोजित (self-employed) है तो अपने उत्पादन करने की पूरी कीमत मिलनी चाहिए। सामूहिक गरीबी एक विशेष समस्या है जिसे हमने औपनिवेशिक शासन से जोड़ा था तथा इसके निवारण के लिए स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे। यदि वही समस्या बड़े पैमाने पर बनी रहे तो यह हमारे लिए चिंता का विषय है। संक्षेप में, यह सुझाव है कि आय का पुनर्वितरण तुलनात्मक रूप से गरीबों के पक्ष में हो। इसे ध्यान में रखते हुए कुछ अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास को इस प्रकार परिभाषित किया — आर्थिक संवृद्धि के साथ-साथ संसाधनों का वितरण उनके पक्ष में हो जो अपेक्षाकृत गरीब हैं। इस संकल्पना में ऐसा विश्वास किया जाता है कि असमानता में कमी से गरीबी में कमी आएगी तथा बेरोजगारी में भी कमी होगी।

सतत विकास (Sustainable Development)

पिछले कुछ वर्षों में एक महत्त्वपूर्ण विषय उठाया गया। विषय यह था क्या विकास का स्तर, किसी विकासशील देश में भी जहाँ यह पहले ही काफी नीचे होता है, सतत (sustainable) है? विकसित देशों में विकास की सततता (sustainability of development) के संबंध में मुख्य चिंता का कारण उनकी खर्चीली उपभोग पद्धति है तथा कई विकासशील देशों में इस प्रकार की चिंता का कारण अधिक और बढ़ती हुई जनसंख्या है।

इस संदर्भ में दो तथ्य हैं जिन पर विचार किया गया। एक तो उत्पादन तकनीक है जिसमें अ-नवीनीकरण योग्य (Non-renewable) प्राकृतिक संसाधनों जैसे जीवाश्म् ईंधन (fossil fuel), कोयला, गैस व पेट्रोलियम तथा कुछ नवीनीकरण योग्य (renewable) प्राकृतिक संसाधनों (जैसे जंगल, पशु एवं पानी) का इस सीमा तक प्रयोग किया जाता है कि इनका पुनरुत्पादन कठिन है।

दूसरा, वर्तमान उत्पादन तकनीक (अपशिष्टों का निपटान करने की प्रथा सहित) जो कचरे, कूड़े, धुएँ तथा अन्य जहरीली गैसों से वातावरण तथा जल-स्रोतों (नदी, तालाब आदि) को प्रदूषित करती है। जितनी अधिक वस्तुओं का उत्पादन होता है उतना ही अधिक प्रदूषण होता है तथा उतने ही अ-नवीनीकरण योग्य प्राकृतिक संसाधन प्रयुक्त होते हैं। प्रकृति की कुछ स्वांगीकारी क्षमताएँ होती हैं। यदि प्रदूषण का स्तर अत्यधिक ऊंचा है तो प्रकृति इसे स्वांगीकार नहीं कर पाएगी। आपको स्वच्छ हवा एवं स्वच्छ पानी सुलभ नहीं होगा। हमारे आस-पास पर्याप्त पेड़-पौधे नहीं होंगे, जो वातावरण को स्वच्छ रख सकें। परिणाम वर्तमान पीढ़ी को भुगतना पड़ेगा।

यदि अ-नवीनीकरण योग्य प्राकृतिक संसाधान तेजी से प्रयुक्त होते हैं तो भावी पीढ़ी के प्रयोग के लिए पर्याप्त स्टॉक नहीं बच पाएगा। तात्पर्य है कि यदि हम अपनी अर्थव्यवस्थाओं की वृद्धि इसी प्रकार करते रहे, जिस प्रकार कर रहे हैं, तो एक ऐसी स्थिति आएगी जहाँ विकास के स्तर को और बढ़ाना असंभव हो जाएगा। सतत विकास के लिए संसाधनों के स्टॉक (पर्यावरण संसाधन तथा समाप्त हो जाने वाले प्राकृतिक संसाधन सहित) को सुरक्षित रखने की आवश्यकता है। वर्ष 1972 में एक अध्ययन

में ऐसा बताया गया था कि यदि वर्तमान वृद्धि की प्रवृत्ति जिसमें विश्व जनसंख्या, औद्योगीकरण, प्रदूषण, खाद्यान्न उत्पादन, संसाधनों की खपत आदि में वृद्धि की वर्तमान प्रक्रिया चलती रहे, तो इस भूमंडल पर अगले 100 वर्षों में वृद्धि अपनी सीमा पर पहुँच जाएगी।

यहाँ प्रौद्योगिकी के विकास पर कम विश्वास रखा गया है जो भविष्य में कुशलता के माध्यम से उत्पादकता बढ़ा सकता है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि जब कोई उत्खनन नहीं होगा तो कोई उद्योग भी नहीं होगा। अतः सावधान रहना ही बुद्धिमानी है। इससे यह संदेश मिलता है कि कुछ अर्थव्यवस्थाओं में वृद्धि के तरीके में परिवर्तन आवश्यक है और कुछ अर्थव्यवस्थाओं में प्राप्त किए गए स्तर को बनाए रखना, न कि इसे और अधिक बढ़ाना।

कुछ विश्लेषक पर्यावरण को अलग से नहीं देखते क्योंकि उनके अनुसार यह राष्ट्रीय सीमाओं से परे है। कुछ स्थानों पर ग्रीन-हाऊस (green house) गैस की उत्पत्ति के बावजूद, विश्व में तापमान बढ़ता ही जाएगा। यदि ओजोन परत खत्म होगी तो इसका प्रभाव पूरी मानवता को भुगतना पड़ेगा। पर्यावरण के अवक्रमण को ध्यान में रखकर एक विश्व आयोग की स्थापना हुई जिसने 1987 में **हमारा समान भविष्य** (Our Common Future) नामक शीर्षक से अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपार्ट में सतत विकास की इस प्रकार परिभाषा दी गई– सतत विकास वह स्तर है जो भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं के साथ समझौता किए बिना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यताओं को ध्यान में रखे (उन्हें पूरा करे) । हम साधारणतया विकास को एक प्रक्रिया मानते हैं, न कि स्तर। अतः सतत विकास की परिभाषा को संशोधित कर इसे वर्तमान पीढ़ी द्वारा अपनाया गया विकास का वह पथ मान सकते हैं जिसमें भावी पीढ़ी के लिए उपलब्ध अवसरों से कोई समझौता नहीं करना पड़े। यह तय करना बहुत कठिन होगा कि कोई पथ सतत है या अनोखा यह हमारे उपभोग के तरीके, प्रौद्योगिकी एवं जनसंख्या वृद्धि को रोकने की दिशा में सावधान करता है।

जीवन की गुणवत्ता (Quality of Life)

पिछले अनुच्छेद 'सतत विकास' में जीवन की गुणवत्ता के बारे में थोड़ी चर्चा हो चुकी है। यदि स्वच्छ हवा, पानी तथा वातावरण न मिले, तो जीवन की गुणवत्ता भी अच्छी नहीं होगी। यदि आपके आसपास वातावरण गंदा हो, वायु प्रदूषित हो, पानी पीने योग्य तथा स्वच्छ न हो, तो आप एक अच्छा जीवन नहीं जी रहे हैं, चाहे आप बाजार से अपनी इच्छानुसार कितनी ही वस्तुएँ खरीद लें। जीवन की गुणवत्ता की परिभाषा में स्वच्छ पानी, स्वच्छ वायु तथा स्वच्छ वातावरण के साथ-साथ, खाद्यान्नों, वस्त्र, आवास, शिक्षा की सुविधाएँ, स्वास्थ्य-सुविधाएँ, कानूनी सहायता तथा सुरक्षा की उपलब्धता को भी सम्मिलित कर सकते हैं।

इसके अलावा एक और विचारधारा है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस विचारधारा वाले बताते हैं कि उपर्युक्त संकेत हमारी अच्छी स्थिति के निर्धारक हैं। हम जीवन की गुणवत्ता पर विचार इसके संघटकों के माध्यम से भी कर सकते हैं। ऊपर बताई गयी बातें जैसे **अच्छे स्वास्थ्य, कल्याण, चुनाव की स्वतंत्रता तथा मूलभूत आजादी** जो सभी कल्याण के संकेतक हैं।

लिंग, जाति, वर्ग या क्षेत्रीयता के आधार पर कल्याण का वितरण किया जा सकता है। बहुत

विश्लेषक यह मानते हैं कि किसी समाज में पूर्णतया साक्षरता भले ही कम हो परंतु पुरुषों और महिलाओं की साक्षरता-दरों में समानता उस स्थिति से अच्छी है जहाँ पर पूर्णतया साक्षरता तो हो, परंतु पुरुषों और महिलाओं की साक्षरता-दरों में बहुत अधिक असमानता हो।

कुछ लोग ऐसा भी सोचते हैं कि किसी समाज में कुछ अधिकार दिए गए हैं जो दूसरे समाज में नहीं दिए गए हैं। हालाँकि ये अधिकार आर्थिक वर्ग में नहीं आते फिर भी इन्हें कल्याणकारी संकेतकों की सूची में सम्मिलित किया जाना चाहिए। यह तर्क सत्य है क्योंकि हम जीवन को आर्थिक एवं गैर-आर्थिक दृष्टि से विभाजित नहीं कर सकते हैं। हम सभी लोग लंबी अवधि तक जेल में रहना पसंद नहीं करेंगे, चाहे वहाँ पर उपलब्ध भोजन, वस्त्र, आश्रय, स्वास्थ्य-सुविधाएँ बाहर मिलने वाली सुविधाओं से कितनी भी अच्छी क्यों न हों। इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि **राजनीतिक अधिकार तथा नागरिक अधिकार या इन अधिकारों को दर्शाने वाले अन्य सूचकों को जीवन की गुणवत्ता में सम्मिलित किया जाना चाहिए।**

मानवाधिकार की बढ़ती हुई चर्चा को ध्यान में रखते हुए इन कल्याणकारी संकेतों को सम्मिलित करना अच्छा रहेगा। समाज के विकास का उद्देश्य इनके सदस्यों की खुशहाली तथा कल्याण के स्तर को प्रयास पूर्वक ऊपर उठाना है। 'जीवन की गुणवत्ता' 'जीवन के स्तर' की अवधारणा को परिपुष्ट बनाती है, जिसे सामान्यतः कीमती कपड़ों, आरामदायक गाड़ियों तथा आलीशान महलों आदि सभी जो अधिक आय से प्राप्त हो सकते हैं, के रूप में जाना जाता है। किंतु जीवन की गुणवत्ता का आदर्श कुछ ऐसे आयामों को भी जोड़ता है जो मौद्रिक मूल्य द्वारा निर्धारित नहीं हो सकते।

अभ्यास

1. आर्थिक संवृद्धि के आशय को समझाइए। क्या यह लघु काल में कुछ वर्षों से संबंध रखती है?
2. आप आर्थिक संवृद्धि की दो विचारधाराओं के भेद को कैसे समझाएँगे? आप वास्तविक संवृद्धि तथा संभावित संवृद्धि में कैसे अंतर करेंगे?
3. हम साधारण तथा आर्थिक संवृद्धि को इनमें से किसके द्वारा मापते हैं — जनसंख्या में वृद्धि द्वारा या साधारण कीमतों पर सकल देशीय उत्पाद द्वारा या उपभोग व्यय द्वारा या देश के निर्यात (लघुकाल या दीर्घकाल में) द्वारा ।
4. आर्थिक विकास की विभिन्न परिभाषाओं के मूलभूत विचारों के बारे में लिखिए। क्या विकास के लिए वृद्धि होना एक आवश्यक शर्त है?
5. जहाँ आर्थिक विकास की अवधारणा 'संरचनात्मक परिवर्तन के साथ वृद्धि' वर्णनात्मक है, वहीं 'पुनर्वितरण के साथ वृद्धि' है। क्या आप इससे सहमत हैं? समझाइए?
6. आप विकास में संस्थागत तथा प्रौद्योगिक कारकों को कितना महत्त्व देते हैं?

7. सतत विकास से आपका क्या तात्पर्य है? क्या यह वर्तमान पीढ़ी को प्रभावित करने वाली प्रदूषण की समस्या है अथवा भावी पीढ़ी को प्रभावित करने वाली संसाधनों की समाप्ति की?

8. जीवन की गुणवत्ता के आवश्यक संघटक क्या हैं? यदि जीवन के स्तर को वस्तुओं के उपभोग से मापा जाए, तो आप जीवन की गुणवत्ता में वस्तुओं के उपभोग से कैसे अंतर करेंगे?

9. निम्नलिखित का संयोग करें —

अ. आर्थिक विकास	क. सकल देशीय उत्पाद
ब. आर्थिक संवृद्धि	ख. स्वास्थ्य
स. सतत विकास	ग. पर्यावरण
द. जीवन की गुणवत्ता	घ. संरचनात्मक परिवर्तन

10. निम्नलिखित का संयोग कीजिए —

अ. आर्थिक विकास	क. दीर्घकाल
ब. आर्थिक संवृद्धि	ख. पुनर्वितरण
स. सतत विकास	ग. भावी पीढ़ी
द. जीवन की गुणवत्ता	घ. संरचनात्मक परिवर्तन

11. निम्नलिखित का संयोग कीजिए —

अ. आर्थिक विकास	क. उत्पादकता
ब. आर्थिक संवृद्धि	ख. सकल देशीय उत्पाद में वृद्धि
स. सतत विकास	ग. मूलभूत स्वतंत्रता
द. जीवन की गुणवत्ता	घ. अ-नवीनीकरण योग्य संसाधन

12. इस अध्याय में दर्शाई गयी चारों अवधारणाओं के विकास का वर्णन कीजिए।

गतिविधि 1

एक सारणी बनाकर प्रचलित मूल्यों तथा स्थायी मूल्यों पर कारक लागत पर सकल देशीय उत्पाद (GDP_{FC}) की एक शृंखला बनाएँ। वार्षिक वृद्धि दर का गणन करें तथा प्रति दशक औसत वृद्धि दर का भी परिकलन करें।

गतिविधि 2

उन वस्तुओं, स्थानों, क्रिया-कलापों तथा संस्थाओं का वर्णन करें जो आर्थिक नहीं हों।

अध्याय 2

विकास के संकेतक

परिचय

आपको याद होगा कि हमने आर्थिक विकास को एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित तो किया था लेकिन इसे स्तर के रूप में भी बताया था। इस उप-इकाई में हम अपना ध्यान किसी एक वर्ष में निश्चित समय-बिंदु पर अर्जित विकास के स्तर पर केंद्रित करेंगे। वस्तुतः इस संकल्पना के अनुसार, विकास के दो स्तरों या दो समय-बिंदुओं पर विकास के स्तरों में मात्रात्मक परिवर्तन ही संवृद्धि है। वृद्धि मूलतः अंतःकालिक तुलना है। दो अर्थव्यवस्थाओं में तुलना करने के लिए, जैसा हमें अक्सर करना पड़ता है, ऐसे शब्द नहीं है। फिर भी तुलना प्रायः की जाती है।

अधिकतर लोग इस बात से सहमत होंगे कि विकास एक प्रक्रिया है, जो बहु-आयामी है। जब किसी प्रक्रिया को बहु-आयामी के रूप में संकल्पित करते हैं तो इसकी विशेषताओं को किसी सूचकांक के द्वारा दर्शाना बहुत कठिन हो जाता है। फिर भी स्तर को मापने के लिए कुछ प्रयास किए गए हैं। हम विकास के स्तर को मापने के लिए चार विकल्पों की चर्चा करेंगे – प्रतिव्यक्ति आय, जीवन की भौतिक गुणवत्ता का सूचकांक, मानव-विकास सूचकांक तथा जीवन की गुणवत्ता का सूचकांक।

प्रतिव्यक्ति आय

सकल घरेलू उत्पाद का मापन एक लेखा वर्ष में अर्थव्यवस्था द्वारा उत्पादित उत्पाद के स्तर के द्वारा किया जाता है। किंतु वस्तुओं पर लोगों का नियंत्रण सकल घरेलू उत्पाद से थोड़ा भिन्न है। हमारे देश के कुछ नागरिक दूसरे देशों में कार्यरत हैं। हमारी संपत्ति राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के बाहर भी हो सकती है। इस कारण हम देश के बाहर भी मजदूरी आय अथवा संपत्ति आय अर्जित करते हैं। इसी प्रकार विदेशी लोग हमारे देश में संपत्ति रखते हैं तथा यहाँ कार्य करते हैं। इन आयों को समायोजन करके हम सकल राष्ट्रीय उत्पाद की जानकारी करते हैं। बड़े देशों तथा ऐसे देश जो दूसरे देशों के उत्पादन के कारकों से संबंध रखते हैं, उनकी सकल घरेलू उत्पाद तथा सकल राष्ट्रीय उत्पाद नगण्य नहीं हैं। किंतु कुछ अर्थव्यवस्थाएँ ऐसी हैं जहाँ सकल घरेलू उत्पाद तथा सकल राष्ट्रीय उत्पाद में बहुत भिन्नता है। हमारी स्थिति में सकल घरेलू उत्पाद से सकल राष्ट्रीय उत्पाद थोड़ा कम है। यह ध्यान देने योग्य है कि देश के लोगों का (व्यक्तिगत तथा सामूहिक) अधिकार सकल राष्ट्रीय उत्पाद बेहतर ढ़ंग से प्रस्तुत करती हैं, जबकि सकल घरेलू उत्पाद वास्तव में देश की आर्थिक सीमाओं के अंतर्गत क्रिया-कलापों द्वारा किए गए उत्पादन को दर्शाती है।

हमें उत्पादन की प्रक्रिया में स्थायी पूँजी के उपभोग का लेखा भी रखना चाहिए। हम यह निश्चय कर लें कि वर्षभर में स्थायी पूँजी अक्षुण्ण रखी गई है अन्यथा एक दिन हम पूरी स्थायी पूँजी को समाप्त कर देंगे इसलिए हमें उत्पादन की प्रक्रिया में से पूँजी का उतना हिस्सा घटा देना चाहिए जितने का उपभोग (हमारे अनुसार) किया गया। तब हमें निवल राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होगा। निवल राष्ट्रीय उत्पाद को राष्ट्रीय आय भी कहा जाता है। हम निवल राष्ट्रीय उत्पाद के विशेष रूप का प्रयोग करेंगे, जिसे हम कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{FC}) कहेंगे।

अब यदि हम दो समय बिंदुओं अथवा दो अर्थव्यवस्थाओं में लोगों के कल्याण की तुलना करना चाहते हैं तो हमें जनसंख्या का आकार मालूम करना आवश्यक होगा। लोगों के, जिनके लिए विकास करना है, कल्याण की दृष्टि से ऐसा सुझाया गया है कि कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{FC}) को जनसंख्या के आकार से भाग देना चाहिए। कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद को जनसंख्या से भाग देने पर जो प्राप्त होता है, उसे प्रतिव्यक्ति आय कहते हैं।

विकास के स्तर, वर्ष 2001 में जब देश की जनसंख्या 100 करोड़ थी..तथा वर्ष 1961 में जब केवल 43 करोड़ थी, तुलना करने में सहायक है। अंतरराष्ट्रीय राष्ट्रीय आय की तुलना करना अर्थपूर्ण होगा यदि उन देशों की राष्ट्रीय आय को उनकी जनसंख्या से भाग दें। यदि ऐसा न करें तो कनाडा जैसा धनी देश भारत से भी गरीब होगा, क्योंकि भारत की जनसंख्या कनाडा से तीस गुनी ज्यादा है। ऐसा विभाजन प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए भी जरूरी है। उदाहरण के लिए, पिछले 50 वर्षों में कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{FC}) में वृद्धि आठ गुने से कुछ ज्यादा हुई किंतु उसी समयावधि में जनसंख्या की वृद्धि लगभग तीन गुनी हुई। इसलिए प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि तीन गुने से कम हुई। हमारे रहन-सहन के स्तर के आठ घटक की तुलना में तीन घटक ज्यादा अच्छी होने की आशा है।

प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि

आप प्रायः पढ़ते हैं कि प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि (a-b) प्रतिशत से हुई है, जबकि आय (अंश) में a प्रतिशत से वृद्धि होती है तथा जनसंख्या (हर) में b प्रतिशत से । यह केवल तब सही है जब a तथा b छोटे हों।

हम देख सकते हैं कि $(1 + 0.05)/(1 + 0.03) = 0.05 - 0.03 = 0.02$ किंतु $(1 + 0.5)/(1 + 0.3) \neq 0.2$, परंतु 0.154 केवल तथा $(1 + 5)/(1 + 3) = 1.5$ न कि 2 इसका कारण यह है कि $(1+a)/(1+b) \simeq (a-b)$, केवल तभी जब a तथा b छोटे अंक हों।

इस दृष्टि के अनुसार प्रतिव्यक्ति आय का प्रयोग लगातार बढ़ रहा है। संक्षेप में, इससे हम भारत के विकास की तुलना किसी दिए गए वर्ष के लिए अमेरिका अथवा पाकिस्तान अथवा अपने स्वयं के विकास से कर सकते हैं। यह भी जानना चाहिए कि केवल यही एक संकेतक है जिससे हम विकसित/अर्धविकसित देशों या उच्च/मध्यम/निम्न आय के देशों को वर्गीकृत कर सकते हैं। अंतराष्ट्रीय तुलना के लिए विभिन्न देशों की प्रति-व्यक्ति आय को समान मुद्रा (common currency) में बदलना होगा।

फिर भी बहुधा यह देखा गया है कि इसका क्षेत्र बहुत सीमित है। ज्यादा सीमितताएँ अंश (numerator) के कारण होती हैं चाहे यह GDP या GNP अथवा NNP हो। ये संकल्पनाएँ घरेलू

आर्थिक गतिविधियों पर लागू नहीं होती, क्योंकि ये बाजार से संबंधित नहीं हैं। महिलाओं के घरेलू कामों की उपेक्षा की जाती है जबकि लोगों के कल्याण की दृष्टि से यह समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। यही नहीं बल्कि घर से बाहर की हुई क्रियाओं का भी पूर्णरूप से लेखा नहीं किया जाता है। चूँकि, उत्पादों का मूल्यांकन बाजार कीमतों पर किया जाता है, अतः उन गतिविधियों जिनके लिए बाजार ही उपलब्ध नहीं है, उनका पूरी तरह लेखा नहीं हो सकता है। यह भी कहा गया कि आर्थिक कल्याण भी, जिसका माप यह कर सकता है, ऐसा पूर्ण आर्थिक-कल्याण नहीं है जिसकी कामना लोग करते हैं।

प्रतिव्यक्ति आय की माप की कमियों को दूर करने के लिए निम्नलिखित तीन सुझाव दिए गए हैं :

1. राष्ट्रीय आय को प्रत्येक व्यक्ति पर वितरण करना एक महत्त्वपूर्ण आयाम है जिसकी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय तथा इसका वितरण, दोनों पर एक साथ विचार करना चाहिए। ऐसा तर्क दिया गया है कि समाज का कल्याण इस बात पर निर्भर करता है कि कोष (केक) का आकार कितना है तथा इसका किस प्रकार वितरण होता है। हाल में, दोनों आयामों को सम्मिलित कर एक संयुक्त सूचक का भी निर्माण किया गया है।
2. समय के साथ लोग अधिक आराम का आनंद लेने लगे हैं। कई लोगों का मानना है कि सभी गतिविधियों का यही अंतिम उद्देश्य है। इसीलिए यह तर्क दिया गया कि कल्याण को अच्छी तरह मापने के लिए इसे राष्ट्रीय आय में जोड़ा जाना चाहिए।
3. एक सुझाव यह भी दिया गया था कि आर्थिक क्रिया-कलापों के कारण कई प्रकार के प्रदूषण होते हैं जिनके हानिकारक प्रभाव होते है, अतः सामाजिक लागतों को भी इसमें से घटाया जाए।

कल्याण का माप : असमानता-समायोजित प्रति-व्यक्ति आय

अमर्त्य सेन एक भारतीय अर्थशास्त्री है जिन्होंने 1998 में अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार अर्जित किया। उन्होंने कल्याण के माप बनाने के लिए आय के वितरण तथा स्तर के आयामों को संयुक्त किया। गणितीय विधि से,

$$W = \mu(I - G)$$

जहाँ W कल्याण है, μ प्रतिव्यक्ति आय, तथा G असमानता का नाप है। W बढ़ेगा जब μ बढ़ेगा तथा G घटेगा। आपको विदित होगा कि μ जनसंख्या से विभाजित NNP है, तो यह स्पष्ट है कि NNP में जनसंख्या की तुलना में ऊँची दर से वृद्धि होनी चाहिए। जितना ज्यादा अंतराल (gap) जनसंख्या की तुलना में NNP की वृद्धि दर में होगा, उतना ही ज्यादा अच्छा होगा।

वैकल्पिक मापों का विकास

ये संशोधन कई लोगों को संतुष्ट नहीं कर पाए और राष्ट्रीय आय या प्रतिव्यक्ति आय का प्रयोग, कल्याण के संकेतकों के रूप में, लंबे समय से हो रहा है, परंतु कुछ सीमितताओं सहित।

फिर भी पिछले कुछ दशकों में आर्थिक कल्याण और सामाजिक विकास के वैकल्पिक संकेतकों को विकसित करने के कुछ प्रयास किए गए हैं। सामाजिक विकास के अच्छे संकेतकों की खोज जारी है।

हम प्रायः समाचार-पत्रों में पढ़ते हैं कि श्रीलंका में लंबी जीवन प्रत्याशा, निम्न मृत्युदर तथा साक्षरता का उच्च स्तर है। श्रीलंका का स्तर विकसित देशों

से तुलना योग्य है। हमारे अपने केरल राज्य ने साक्षरता तथा जनांकिकी के विषयों में चमत्कार किया है। तमिलनाडु भी इस दिशा में प्रगति कर रहा है । इसलिए शोधकर्त्ताओं के लिए यह स्वाभाविक है कि ऐसे सूचकांकों को विकसित करें जो इन सामाजिक आयामों का अभिग्रहण कर सके।

संयुक्त राष्ट्र (यू.एन.) की एक संस्था है जिसको यूनाइटेड नेशनस् रिसर्च इन्स्टीट्यूट फॉर सोशल डवलपमेंट (UNRISD) कहते हैं। इस संस्था में लोगों ने सामाजिक, राजनीतिक, तथा आर्थिक सूचकांको को लेकर, जो औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा आधुनिकीकरण को प्रभावित करते हैं, विकास के संघटकों को विकसित करने का प्रयास किया। उन्होंने उन सभी सूचकांकों को लिया, जिसमें उनके अनुसार, विकास के किसी भी आयाम का आभास होता है। एक स्थिति में उन्होंने लगभग 73 सूचकांकों की सूची बनाई परंतु अंत में केवल 16 सूचकांकों का चयन किया क्योंकि ऐसा पाया गया था कि बहुत सारे सूचकांकों का आभास दूसरे सूचकांकों में मिलता है।

यू.एन.आर.आई.एस.डी. (UNRISD) के सामाजिक आर्थिक विकास के मूलभूत संकेतक
(Core indicators of socio-economic development)

1. जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा
2. 20,000 व इससे ऊपर जनसंख्या वाले इलाकों में जनसंख्या का प्रतिशत
3. प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन पशुओं के प्रोटीन का उपभोग
4. प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर पर संयुक्त नामांकन
5. व्यावसायिक (vocational) नामांकन का अनुपात
6. एक कमरे में औसतन लोगों की संख्या
7. प्रति 1000 जनसंख्या पर समाचार-पत्रों का वितरण
8. बिजली, गैस तथा पानी के संदर्भ में आर्थिक सक्रिय जनसंख्या का प्रतिशत
9. प्रति कृषि मजदूर द्वारा कृषि उत्पादन का प्रतिशत
10. कृषि में पुरुष कृषि मजदूर का प्रतिशत
11. प्रतिव्यक्ति विद्युत/बिजली की खपत (KWH)
12. प्रतिव्यक्ति इस्पात का उपभोग
13. ऊर्जा-उपभोग, प्रतिव्यक्ति एक किलो कोयले के समरूप
14. विनिर्माण से उत्पादित सकल देशीय उत्पाद का प्रतिशत
15. प्रतिव्यक्ति विदेश व्यापार 1960 US डॉलर
16. आर्थिक सक्रिय जनसंख्या में वेतन व मजदूरी पाने वालों का प्रतिशत।

यह जानना उपयोगी होगा कि ऐसे प्रयासों में किन चरों का समावेश हुआ है, यह जानना आवश्यक नहीं कि सूचकांकों के विकसित करने की बारीकियों को समझें। प्रतिव्यक्ति आय, अस्पताल में बिस्तरों की संख्या अथवा एक लाख जनसंख्या पर डाक्टरों की संख्या जैसे चर (variables) सम्मिलित किए गए हैं। नामांकन दर, प्रतिव्यक्ति विद्युत उपभोग या इस्पात उपभोग को भी संकलित किया है। पक्की सड़कों की लंबाई, विद्युतीकृत गांवों की संख्या तथा डाकघरों की सुविधा को भी इनमें स्थान मिला है। इस प्रकार कृषि संगठनों को भी इसमें जगह दी गयी है। ये महत्त्वपूर्ण संकेतक हैं तथा बहुत लोगों ने इन्हें आखिरी संकेतक माना है।

एक प्रश्न उठाया गया कि क्या आगतों (inputs) को विकास का संकेतक माना जा सकता है। जबकि नामांकन दर एक आगत है, साक्षरता दर निर्गत दर्शाती है। इसी प्रकार अस्पताल की सुविधाएँ आगतें हैं तथा जीवन-प्रत्याशा (life expectancy) एक निर्गत है। यदि आपके पास अच्छी सफाई की सुविधा है, तथा स्वास्थ्य भी अच्छा है तो अस्पताल की सुविधा की जरूरत कम होगी। एक प्रकार से आय भी आगत है।

राष्ट्रीय आय के स्थान पर कल्याण के ऐसे मापों से शोधकर्त्ता तथा नीति बनाने वाले खुश नहीं थे क्योंकि सामाजिक संकेतक बनाने का यह तरीका उन्हें उपयुक्त नहीं लगा। तब विकास के संयुक्त सूचक विकसित करने के प्रयास किए गए, जो विकास के उद्देश्यों व लक्ष्यों पर निर्भर हों न कि उन्हें प्राप्त करने के तरीकों पर।

जीवन की गुणवत्ता के सूचक (Quality of Life Indices)

आपको याद होगा कि हमने पिछले अध्याय में जीवन की गुणवत्ता के संघटकों के बारे में बताया था। साधारणतया ये संघटक स्वास्थ्य, स्वतंत्रता, शिक्षा, पर्यावरण इत्यादि, जिनका आप सीधी तरह आनंद लेते हैं, की ओर संकेत करते हैं। इन प्राचलों के अतिरिक्त पिछले कुछ समय में ऐसे सूचकों के निर्माण के प्रयास किए गए, जिन्हें जीवन की गुणवत्ता के सूचकांक कहा जा सकता है। लंबी आयु तथा साक्षरता को बिना वाद-विवाद के परिमापों/प्राचलों के प्रयोग के लिए स्वीकृत किया गया। हम आगे दो लोकप्रिय सूचकों, जैसे, जीवन की भौतिक गुणवत्ता का सूचक (PQLI) तथा मानव विकास सूचक (Human Development Index-HDI) के बारे में पढ़ेंगे, जिनका प्रयोग लंबी आयु तथा साक्षरता के मूलभूत संघटकों के रूप में होता है। वास्तव में यह जीवन की गुणवत्ता मापने का प्रयास है तथा हम इसके बारे में अंत में चर्चा करेंगे।

यहाँ यह याद दिलाना महत्त्वपूर्ण होगा कि ये सूचक अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में विकसित किए गए हैं तथा इनका प्रयोग कर उपलब्धि के संख्यात्मक मूल्य के अवरोही क्रम के आधार पर विभिन्न देशों को कोटिबद्ध किया गया है। ये संघटक समाज/समूह के लिए सरल अंकगणितीय औसत हैं।

जीवन की भौतिक गुणवत्ता के सूचक (Physical Quality of Life Index)

पिछली शताब्दी के 70 के दशक के अंत में मोरिस डी. मोरिस नाम के अर्थशास्त्री ने बहुत सी यू.एन.समितियों तथा यू.एन.आर.आई.एस.ई.डी. (UNRISED) तथा ओ.ई.सी.डी. (OECD) के विकास-अर्थशास्त्रियों द्वारा अपनाए गए संकेतकों को स्वीकार किया। उसने देखा कि ज्यादातर संकेतक विकास प्रक्रिया के आगत हैं न कि विकास प्रक्रिया के परिणाम। ये संकेतक ऐसा प्रतिबिंबित करते हैं कि विकास का केवल एक ही पथ है। इससे यह परिलक्षित होता है कि आर्थिक दृष्टि से कम विकसित देश औद्योगिकृत देशों का अविकसित रूपांतर है। यह विचार पूर्वग्राही है तथा यूरोप के पक्ष में है। इसमें अर्धविकसित देशों के बीच विभिन्नताओं तथा विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के सामाजिक संगठनों के अंतर को अनदेखा किया गया। ऐसे प्रयास विकास को एक क्रिया के रूप में मापते हैं न कि प्राप्त लक्ष्य की दृष्टि से। उसने इसीलिए विकास का संयुक्त सूचकांक विकसित करने के लिए मापदण्डों के एक समुच्चय का प्रस्ताव दिया है। इन चयनित संकेतकों द्वारा परिणामों तथा सामाजिक वितरणों के परिणाम प्रतिबिंबित होने चाहिए न कि किसी विशेष समाज (यूरोप-अमेरिका) की मान्यताओं को प्रतिबिंबित करें। संयुक्त सूचक ऐसे होने चाहिए कि उनका निर्माण सरल हो तथा उन्हें समझना आसान हो और वे अंतरराष्ट्रीय तुलना करने में सहायक हों।

संकेतकों का चयन (Choice of Indicators)

डेविड मोरिस ने इसीलिए उन संकेतकों को देखने की कोशिश की जो विकास के प्रयासों का परिणाम हों, न कि किसी विशेष समाज की मान्यताएँ हो क्योंकि इनको विकसित करने के तरीके गैर-बाजार (non-market), गैर-शहरीकरण (non-urban), गैर-औद्योगीकरण (non-industrial) या गैर योजना (non-plan) आधारित हो सकते हैं, जिससे अंतरराष्ट्रीय तुलना में कोई समस्या न हो। सैकड़ों संकेतकों में से केवल तीन संकेतक ऐसे मिले जो उन मापदण्डों को पूरा करते हों तथा अपने आप में सर्वव्यापक हो। ये संकेतक हैं :

1. जीवन-प्रत्याशा (Life Expectancy, LE)
2. शिशु मृत्युदर (Infant Mortality, IM), तथा
3. मौलिक साक्षरता (Basic Literacy, BL)

इन तीनों संकेतकों को विभिन्न तरीकों से संशोधित कर सकते हैं। कोई देश जीवन की ऊँची जीवन-प्रत्याशा की उपलब्धि अच्छी चिकित्सा-सुविधाओं, द्वारा अथवा अच्छी सफाई व्यवस्था द्वारा अथवा अच्छे पोषण द्वारा प्राप्त करे यह वास्तव में महत्त्वपूर्ण नहीं है। कोई देश उच्च साक्षरता औपचारिक तरीकों से या अनौपचारिक तरीकों से प्राप्त करता है यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। किंतु कोई देश साक्षरता के उच्च स्तर प्राप्त करने की कोशिश करे यह महत्त्वपूर्ण है। इसको व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है। जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है, परंतु जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु शिशु-अवस्था में नहीं होनी चाहिए। इस बात को साधारणतया स्वीकारा गया है।

अब एक तकनीकी मुद्दा है। साधारणतया जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा सूचक का प्रयोग हुआ है। शिशु मृत्यु दर का संदर्भ एक वर्ष से पहले मृत्यु होना है। इसीलिए मोरिस ने सुझाव दिया कि जीवन की प्रत्याशा एक वर्ष की आयु पर होनी चाहिए न कि जन्म के समय की हो। यदि एक वर्ष पर जीवन की प्रत्याशा के आंकड़े उपलब्ध न हो तो, इसको एक सूत्र का प्रयोग करके निकाला जा सकता है जो कि जन्म पर जीवन की प्रत्याशा, शिशु मृत्यु दर तथा बच्चों के अनुपात से संबंधित है।

सूचकों का सामान्यीकरण (Normalisation of Indicators)

हम जानते हैं कि जीवन की प्रत्याशा वर्षों में मापी जाती है। शिशु मृत्यु दर प्रति हजार में तथा मौलिक साक्षरता प्रतिशत के रूप में मापी जाती है। इनका प्रायः योग नहीं किया जा सकता। मौलिक साक्षरता प्राकृतिक तौर से न्यूनतम 0 (शून्य) तथा उच्चतम 100 हो सकती है जबकि दूसरे संकेतकों के लिए प्राकृतिक न्यूनतम तथा उच्चतम मूल्य (value) नहीं होते। तुलना करने के उद्देश्य से प्रत्येक स्तर का सामान्यीकरण जरूरी है। मोरिस ने तीन उदाहरणों में से प्रत्येक के लिए सबसे उत्तम (best) तथा बदतर (worst) स्तर चुना। यदि संकेतक (जीवन-प्रत्याशा तथा मौलिक साक्षरता) सकारात्मक हैं तो सबसे अच्छे को उच्चतम तथा बदतर को न्यूनतम से दर्शाया गया। किंतु नकारात्मक संकेतकों (जैसे शिशु मृत्यु दर) के लिए सबसे अच्छे को न्यूनतम तथा बदतर को उच्चतम से दर्शाते हैं। सकारात्मक चर के वास्तविक स्तर को सामान्यीकृत संकेतकों में परिवर्तित (convert) करने के लिए वास्तविक मूल्यों में से उनके न्यूनतम मूल्यों को घटाया जाता है तथा शेष को विस्तार (range) (उच्चतम तथा न्यूनतम के बीच) से विभाजित किया जाता है। दूसरे शब्दों में, सकारात्मक संकेतकों के लिए–

$$\text{उपलब्धि स्तर} = \frac{\text{वास्तविक मूल्य - न्यूनतम मूल्य}}{\text{उच्चतम मूल्य - न्यूनतम मूल्य}}$$

नकारात्मक संकेतक (शिशु मृत्यु दर) के लिए पहले उच्चतम मूल्य में से वास्तविक मूल्य को घटाया जाता है और फिर शेष को विस्तार से विभाजित किया जाता है। दूसरे शब्दों में–

$$\text{उपलब्धि स्तर} = \frac{\text{उच्चतम मूल्य - वास्तविक मूल्य}}{\text{उच्चतम मूल्य - न्यूनतम मूल्य}}$$

सूचकांक निर्माण (Index Construction)

ये अब ऐसे तीन संकेतक हैं, जिन्हें हम (i) जीवन-प्रत्याशा संकेतक (LEI), (ii) शिशु मृत्यु दर संकेतक (IMI), तथा (iii) मूलभूत साक्षरता संकेतक (BLI) कह सकते हैं।

इन तीनों संकेतकों का औसत लेकर हम जीवन की भौतिक गुणवत्ता का सूचक (PQLF) निकाल सकते हैं :

$$PQLI = (1/3)\ (LEI+IMI+BLI)$$

न्यूनतम तथा उच्चतम मूल्यों का चयन (Choice of Minimum and Maximum Value)

जीवन की प्रत्याशा तथा शिशु मृत्यु दर संकेतकों में कोई प्राकृतिक न्यूनतम तथा उच्चतम मूल्य नहीं होते हैं, बल्कि तर्कसंगत (reasonable) मूल्यों का चयन करना पड़ता है। बहुत सोच विचार करने पर मोरिस ने निम्नलिखित मूल्यों के समुच्चय का चयन किया। सारणी 2.1 देखें। देशों के हाल ही के अनुभवों के आधार पर इनमें संशोधन की जरूरत हो सकती है। उदाहरण के लिए अधिकतम जीवन-प्रत्याशा अब बढ़ाकर 85 वर्ष की जा सकती है।

सारणी 2.1

संघटक संकेतकों के उच्चतम तथा न्यूनतम मूल्य

आयाम	*उच्चतम*	*न्यूनतम*	*विस्तार*
मौलिक साक्षरता दर (BLR)	100	0	100
शिशु मृत्यु दर (IMR)	229	9	220
जीवन-प्रत्याशा, एक वर्ष पर (LEI)	77	38	39

मूल्यों के सूचकांकों में परिवर्तन रेखीय (linear) है। देश के वास्तविक आँकड़ों को नीचे दिए गए सूत्र में प्रतिस्थापित करने पर घटक सूचकांक तथा जीवन की भौतिक गुणवत्ता के सूचकांक प्राप्त किए जा सकते हैं। सूत्र (व्यंजक) नीचे दिए गए हैं :

$$LEI = \frac{\text{वास्तविक जीवन-प्रत्याशा, 1 वर्ष पर - 38}}{39}$$

$$IMI = \frac{\text{229 - वास्तविक मृत्यु दर}}{220}$$

$$BLI = \frac{\text{वास्तविक साक्षरता दर - 0}}{100}$$

मान लें कि भारत की एक वर्ष पर जीवन-प्रत्याशा 70 वर्ष है, शिशु मृत्यु दर प्रति एक हजार जीवित जन्म पर 70 है तथा कुल वयस्क जनसंख्या में 55 प्रतिशत वयस्क साक्षर हैं। प्रत्येक चरण की गणना करने पर आप पाएंगे कि $LEI = 0.82$, $IMI = 0.72$ तथा $BLI = 0.55$ हैं। इसीलिए PQLI लगभग 0.70 होगा।

मानव विकास सूचकांक (Human Development Index)

PQLI के विकसित होने के 10 वर्षों में एक-

दूसरा सूचकांक सामने आया। 1990 से लगातार संयुक्त राष्ट्र की एक संस्था (यू.एन.डी.पी.) प्रतिवर्ष एक मानव विकास रिपोर्ट प्रकाशित कर रही है। इस रिपोर्ट में मानव विकास के विभिन्न आयामों पर चर्चा के अलावा अतिरिक्त विभिन्न देशों को उनके मानव विकास सूचकांक के स्तर के अनुसार कोटिबद्ध किया है।

मानव विकास सूचक का विवरण करने से पहले यह अच्छा होगा कि हम सकल घरेलू उत्पाद/ सकल राष्ट्रीय उत्पाद को एक नवीन दृष्टिकोण से देखें। ऐसा बताया गया है कि ये माप क्रियाओं के माप हैं, अतः वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन पर केंद्रित हैं। ऐसा सुझाव दिया गया है कि हमें लोगों की क्षमताओं तथा क्षमताओं के मापों के सुधार पर ज्यादा ध्यान केंद्रित करना चाहिए। दीर्घ आयु तथा स्वस्थ जीवन क्षमताएँ हैं और इसी प्रकार पढ़ने लिखने की योग्यता भी क्षमता है। बढ़ती हुई योग्यता के साथ विकल्प का विस्तार होता है और विकल्पों का विस्तार ही विकास है। इसका एक और आयाम है कि इन योग्यताओं का संचय नहीं हो सकता है। एक प्रकार से यह PQLI के नजदीक है, अंतर केवल इतना है कि अब सैद्धांतिक पक्ष बहुत मजबूत है। किंतु इसी समय एक भौतिक अस्तित्व का प्रवेश सूचकांक निर्माण में होगा तथा अंतरराष्ट्रीय तुलना में बाधा उत्पन्न करेगा।

सूचकांक (The Index)

मानव विकास सूचकांक मोटेतौर पर लंबी आयु, ज्ञान तथा संसाधनों की प्राप्ति, इन सामाजिक समूहों का औसत है। ठोस रूप में इसको निम्नलिखित का सम-भारित (equi-weighted) औसत कहेंगें– (i) जीवन प्रत्याशा का सूचकांक (LEI), (ii) शिक्षा प्राप्ति का सूचकांक (EAI), तथा (iii) जीवन स्तर का सूचकांक (SLI)।

जहाँ पर उप-सूचकों की गणना PQLI वाली पुरानी विधि से ही करते हैं। दूसरे शब्दों में–

HDI=(1/3)(LRI+EAI+SLI)

संघटक (Components)

यहाँ पर जन्म पर जीवन-प्रत्याशा को ही जीवन-प्रत्याशा माना गया है न कि एक वर्ष की आयु पर, क्योंकि शिशु मृत्यु दर का उस सूचक में एक अलग संकेतक के रूप में प्रवेश नहीं हुआ है। शिक्षा उपलब्धि साक्षरता से अधिक (plus) है। शुरू में यह केवल प्रौढ़ शिक्षा थी। बाद में यह प्रौढ़ शिक्षा दर तथा विद्यालय जाने के औसत वर्षों (mean years of schooling) का मिश्रण हो गयी। उच्च विकसित देशों में प्रौढ़ साक्षरता पूर्ण हो गयी, किंतु शिक्षा का स्तर अभी भी बढ़ रहा है। इसको विद्यालय जाने के औसत वर्ष अथवा नामांकन अनुपात से दर्शा सकते हैं। अब विद्यालय जाने के औसत वर्ष को संयुक्त नामांकन अनुपात से प्रतिस्थापित कर दिया गया है। प्रौढ़ साक्षरता दर (ALR) को 2/3 भार दिया गया है, जबकि संयुक्त नामांकन अनुपात (CER) को 1/3 भार। इसलिए, शिक्षा-उपलब्धि सूचक को निम्न रूप में दर्शा सकते हैं—

$$EAI = (2/3)\ ALR + (1/3)\ CER$$

जीवन स्तर को यहाँ प्रतिव्यक्ति आय के रूपांतरण से दर्शाया गया है। यह तर्क दिया गया है कि दीर्घ आयु तथा ज्ञान के अलावा अन्य कई वस्तुएँ हैं, जिन्हें प्राप्त करने की इच्छा होती है। इन सब की गणना करना मुश्किल है। अच्छा जीवन जीने के लिए संसाधनों की आवश्यकता

होती है। प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय संसाधनों का एक सीधा-साधा नाप है। क्योंकि यह अभ्यास मूलरूप से अंतरराष्ट्रीय तुलना की दृष्टि से है, इसलिए विभिन्न राष्ट्रों की प्रतिव्यक्ति आय को किसी समान हर (denominator) में लाना जरूरी है। प्रतिव्यक्ति आय का पहले परचेजिंग पावर पेरीटी डॉलर (PPP$) में बदलना जरूरी है।

दूसरा चरण इस बात से संबंध रखता है कि डालर की आय का प्रतिफल पूरी आय के विस्तार के समान नहीं है। प्रतिफल की बढ़ोत्तरी आयु के बढ़ने से गिरनी चाहिए तथा अंत में शून्य हो जानी चाहिए। इस विचार को यू.एन.डी.पी. (UNDP) ने विभिन्न तरीकों से समझाने का प्रयास किया। वर्तमान में, जीवन स्तर प्रतिव्यक्ति (PPP$) की आय को लॉग (log) के रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में–

जीवन स्तर = log (PCI in PPP$)

आप अच्छी तरह जानते हैं कि 10, 100, 1000 तथा 10,000 का लघुगुणक 10 के आधार पर क्रमशः 1, 2, 3, तथा 4 होगा। अतः (जैसे-जैसे आय बढ़ेगी) आय में बढ़ोत्तरी से प्रतिफल घटेगा । इस विशेषता को कई अन्य तरीकों से निष्पादित कर सकते हैं। यू.एन.डी.पी. ने पहले कई अन्य सूत्रों को आजमाया किंतु साधारण लघुगुणक में परिवर्तन को ही सरल पाया।

सामान्यीकरण (Normalization)

चूँकि हम संकेतकों में केवल सकारात्मक संकेतकों का प्रयोग कर रहे हैं अतः हम संघटक सूचकांक (component index) का गणन करने के लिए केवल एक सूत्र का ही प्रयोग कर सकते हैं—

$$CI = \frac{\text{संघटक का वास्तविक मूल्य - संघटक का न्यूनतम मूल्य}}{\text{संघटक का उच्चतम मूल्य - संघटक का न्यूनतम मूल्य}}$$

यहाँ पर CI, LEI, ALRI, CERI तथा SLI है। यह उल्लेखनीय है कि ALRI तथा CERI को 100 द्वारा विभाजित करने पर ये क्रमशः ALR तथा CER हैं।

न्यूनतम तथा उच्चतम मूल्य (Minimum and Maximum Value)

कई वर्षों तक वाद-विवाद करने के बाद तथा संघटकों के कई मानक (norms) मूल्य लेने के बाद यू.एन.डी.पी. ने मानव विकास सूचकांक के संघटकों का न्यूनतम तथा उच्चतम मूल्य निम्नलिखित रूप में निर्धारित किया है–

सारणी 2.2
संकेतकों के संघटकों का उच्चतम तथा न्यूनतम मूल्य

संघटक	*इकाई*	*उच्चतम*	*न्यूनतम*
जन्म पर जीवन-प्रत्याशा (LEB)	वर्ष	85	25
प्रौढ़-साक्षरता दर (ALR)	प्रतिशत	0	100
संयुक्त-नामांकन अनुपात (CER)	प्रतिशत	0	100
जीवन स्तर (SL)	PPP$	100	40000
जीवन का स्तर (SL)	PPP$	2	4 + 2
	लघुगुणक		लघुगुणक 2

मानव विकास सूचकांक तथा भारत (HDI and India)

विभिन्न देशों के लिए यू.एन.डी.पी. मानव विकास सूचकांकों का संकलन करती है। इसके लिए विश्वसनीय आँकड़े सुगमता से प्राप्त हो जाते हैं। इन सूचकांकों को (वार्षिक यू.एन.डी.पी. द्वारा प्रकाशित) मानव विकास रिपोर्ट में प्रकाशित करते हैं।

विभिन्न मानव विकास रिपोर्टों में दिए गए राष्ट्रों में भारत की स्थिति नीचे दी गयी 2.3 सारणी में आंकड़ों के आधार पर दर्शायी गयी है।

सारणी 2.3

भारत का HDI (मानव विकास सूचकांक) का मूल्य तथा विश्व में इसका स्थान

HDR वर्ष	*आंकड़ों का वर्ष*	*मूल्य*	*कोटि (Rank)*	*HDR वर्ष*	*आंकड़ों का वर्ष*	*मूल्य*	*कोटि (Rank)*
1990	1987	0.439	94(130)	1996	1993	0.436	135(174)
1991	1988	0.308	123(160)	1997	1994	0.446	138(175)
1992	1990	0.297	121(160)	1998	1995	0.451	139(175)
1993	1990	0.309	134(173)	1999	1997	0.458	132(174)
1994	1992	0.382	135(173)	2000	1998	0.456	128(174)
1995	1992	0.439	134(174)	2001	1999	0.571	115(162)

स्रोतः *मानक विकास रिपोर्ट, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1990 से 2001 तक।*

हम यह देख सकते हैं कि आंकड़ों के संकलन में समय लगता है तथा यह भी पता लगता है कि जिन देशों के लिए ये आँकड़े निकाले गए हैं, उनकी संख्या वर्ष-दर-वर्ष बदलती रहती है। सम्मिलित देशों की संख्या के कारण भी कोटि में उतार-चढ़ाव होता है। पिछले दो वर्षों में भारत का स्थान 13 अंकों से सुधर गया है जबकि देशों की संख्या 12 अंकों से कम हो गयी। यह काफी संभव है कि छोड़े गए देशों का स्थान भारत से ऊपर हो। हमें यह भी जानना चाहिए कि भारत का स्थान दो अंकों से सुधर गया है जबकि HDI का मूल्य वास्तव में कम हुआ है। यह विधि संघटकों के बदलने से भी संभव है। इन सभी कमजोरियों के बावजूद 1990 के बाद से भारत के मानव विकास सूचकांकों (HDI) के मूल्य में सुधार हुआ है, जब इसका मूल्य सबसे नीचे दर्ज किया गया था।

भाग्यवश, 2001 में मानव विकास रिपोर्ट (HDR) में विभिन्न देशों तथा विभिन्न समयों में तुलना करने की दृष्टि से एक समान आधार पर समान विधि (methodology) से एच.डी.आई. के मूल्यों की गणना की गई है। गणना 1975 से 5 वर्ष के अंतराल में की गयी है। सारणी 2.4 देखें।

हमें ध्यान देना चाहिए कि 70 के मध्य से मानव विकास सूचकांकों में सुधार हो रहा है। जीवन-प्रत्याशा (जो कुछ हद तक स्वास्थ्य को दर्शाती है), शिक्षा (साक्षरता के साथ) तथा जीवन स्तर (प्रतिव्यक्ति आय के रूप) में सभी दृष्टियों से शायद हमारा सुधार हो रहा है। एच.डी.आई. (HDI) ने इन वर्गों के आधार पर देशों का वर्गीकरण किया है– उच्च मानव विकास वाले देश, मध्यम मानव विकास वाले देश तथा निम्न मानव विकास वाले देश जो क्रमशः निम्नलिखित मूल्यों के आधार

सारणी 2.4

1975 से भारत के मानव विकास संघटक का मूल्य

वर्ष	*1975*	*1980*	*1985*	*1990*	*1995*	*1999*
HDI मूल्य	0.406	0.433	0.472	0.510	0.544	0.571
HDI मूल्य*				0.297	0.439	0.571

** सारणी 2.3 से*

स्रोतः *मानव विकास रिपोर्ट, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2001।*

पर किए गए हैं– (i) 0.8 मूल्य से ऊपर, (ii) 0.5 मूल्य तथा 0.8 मूल्य के बीच, तथा (iii) 0.5 मूल्य से नीचे। कम से कम 1990 से भारत मध्यम मानव विकास वाला देश है। सारणी 2.4 में देखने से पता चलता है कि भारत वर्ष 2000 तक निम्न मानव विकास वाला देश घोषित किया गया था।

यहाँ यह सूचित करना अनुचित नहीं होगा कि कुछ विद्वानों ने भारत के लिए अंतरराज्यीय तुलना की है। जबकि कुछ राज्य सरकारों ने मानव विकास सूचकांक का राज्य स्तर सरकारों पर अभ्यास किया है। मानव विकास सूचकांक HDI के संकलन की तुलना में इन रिपोर्टों में ज्यादा सूचना मिलती है। अब हमारे योजना आयोग ने भी राष्ट्रीय मानव विकास रिपोर्ट (मार्च 2002) निकाली (प्रकाशित) है।

जीवन सूचक की गुणवत्ता

कुछ अर्थशास्त्री अभी भी ऐसा महसूस करते हैं कि यद्यपि मानव विकास प्रस्ताव बहुत से आयामों की बात करता है परंतु मानव विकास सूचकांक उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण आयामों को ही सम्मिलित करता है। वे महसूस करते हैं कि राजनीतिक तथा नागरिक आयामों (पर्यावरण को छोड़कर) को सम्मिलित किया जाना चाहिए। जीवन क्रियाशीलता का नाम है तथा क्रियाशीलता में 'होना और करना' दोनों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

ऐसा एक योगदान जीवन की गुणवत्ता मापने में दासगुप्ता तथा वील का है, जिन्होंने छः परिमापों को लिया है तथा उन्हें जीवन-स्तर या कल्याण के संकेतक कहा है। वे परिमाप हैं–

(i) PPP$ में प्रति व्यक्ति आय, (ii) जन्म पर जीवन-प्रत्याशा, (वर्षों में), (iii) शिशु मृत्यु दर, (प्रति हजार जीवित जन्म दर), (iv) प्रौढ साक्षरता-दर, (वयस्क जनसंख्या के प्रतिशत में), (v) सात-बिंदुओं के पैमाने पर राजनीतिक अधिकारों का सूचक, तथा (vi) सात बिंदुओं के पैमाने पर नागरिक अधिकारों का सूचक। हम ध्यान दें कि नागरिक अधिकार व्यक्तिगत या राज्य के हो सकते हैं जबकि राजनीतिक अधिकार केवल नागरिकों के अधिकार हैं जो देश के शासन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए हैं। शासन का तात्पर्य है — कौन शासन करेंगे तथा किन कानूनों के अंतर्गत करेगा। जब कि पहले चार को 'सामाजिक-आर्थिक' संकेतक कहा जा सकता है, अंतिम दो को 'राजनीतिक एवं नागरिक' संकेतक कह सकते हैं। इन संकेतकों का विशेष तरीके से समुच्चय (aggregate) किया जाता है। प्रथम, देशों को आरोही क्रम में, बदतर से अच्छे संकेतकों के आधार पर क्रमबद्ध करते हैं। दूसरा, देश के विभिन्न संकेतकों की कोटियों को जोड़कर प्रत्येक देश के लिए एक कोटि-अंक प्राप्त करते हैं। तीसरा, देशों को फिर से कोटियों के आधार पर क्रमबद्ध किया जाता है।

यद्यपि यह कार्य नब्बे के दशक में शुरू हुआ था परंतु आंकड़े 1979/1980 से संबंधित थे। परिणाम रोचक रहे। 48 देशों की सूची में मौरिशस का स्थान सर्वोत्तम तथा श्रीलंका का स्थान दूसरा सर्वोत्तम रहा। चीन व भारत ऊपर से 10वें तथा 12वें सर्वोत्तम स्थान पर, जबकि बंगलादेश तथा पाकिस्तान ऊपर से 26वें तथा 30वें स्थान पर आते हैं। दोनों जोड़ों में 'सामाजिक-आर्थिक' (socio-economic) संकेतकों के अंक 'राजनीतिक-नागरिक' (political and civil) संकेतकों से भिन्न हैं। 'सामाजिक-आर्थिक' संकेतकों में चीन ने भारत से ज्यादा और पकिस्तान ने बांगलादेश से ज्यादा अंक प्राप्त किए हैं लेकिन 'राजनीतिक और नागरिक' संकेतकों में भारत को चीन से ज्यादा अंक मिले हैं, तथा बांगलादेश को पाकिस्तान से ज्यादा। यद्यपि यह वर्णन थोड़ा पुराना है फिर भी अभी भी लागू होता है।

निष्कर्ष

विद्वान तथा नीति-निर्धारक सकल घरेलू उत्पाद अथवा प्रतिव्यक्ति आय के कल्याण या विकास के संकेतक के रूप में प्रयोग से बहुत संतुष्ट नहीं है। कुछ अर्थशास्त्रियों ने वितरण के पक्षों को ध्यान में रखकर संयुक्त सूचकांक विकसित किए हैं। दूसरों ने भी उन वस्तुओं के मूल्यों को सकल घरेलू उत्पाद में जोड़कर, जिनके मूल्य सम्मिलित नहीं किए गए थे तथा कल्याण के उन मूल्यों को सकल घरेलू उत्पाद में से घटाकर, जिनका इसमें योगदान नहीं है, संशोधित करने का प्रयास किया।

कुछ अन्य विद्वानों तथा ऐजेंसियों ने सोचा कि विकास को विशेषकर सामाजिक विकास को सीधे मापें। उन्होंने उन सभी संभावित चरों जो आधुनिकीकरण, शहरीकरण तथा औद्योगीकरण पर अतिक्रमण करते हैं, पर विचार किया। ज्यादातर ये चर आगत-पक्ष में थे। उन्होंने आगत तथा निर्गत को मिला दिया। परिणाम अच्छे थे।

मोरिस डी. मोरिस ने जीवन की भौतिक गुणवत्ता के सूचक (PQLI) को विकसित किया। उसने सोचा कि यह विकास के परिणाम का प्रतिनिधित्व करेगा। वे यह भी जानते थे कि अनेक मनोवैज्ञानिक पक्षों, जो कम महत्त्वपूर्ण नहीं थे, को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया था। उसने जान बूझकर इन मौद्रिक पक्षों को इसमें सम्मिलित नहीं किया, क्योंकि वे अंतरराष्ट्रीय तुलना में बाधा उत्पन्न कर सकते थे।

पी.क्यू.एल.आई. में एक बड़ा तकनीकी दोष है। शिशु मृत्यु दर तथा जीवन-प्रत्याशा दोनों को समान जनसंख्या आधार के संदर्भ में लिया है। बाद में पता चला कि इस संकल्पना में दीर्घ आयु तथा ज्ञान के अन्य पक्षों व उद्देश्यों को सम्मिलित नहीं किया गया था। इस प्रकार मानव विकास सूचकांक (Human Development Index) हमारे सामने प्रस्तुत हुआ जिसमें दीर्घायु तथा ज्ञान (शिक्षा उपलब्धि के रूप में परिभाषित) के साथ प्रतिव्यक्ति आय को सम्मिलित किया गया। आय को पी.क्यू.एल.आई. में सम्मिलित करने पर कई बिंदुओं पर आपत्ति की गयी। फिर भी यू.एन.डी.पी. इसको कल्याण के असम्मिलित पक्षों के प्रतिनिधित्व के रूप में मानती है।

बहुत सारे विद्वान इससे खुश नहीं हैं परंतु उनमें से शायद ही किसी ने इसके विकल्प के चयन का एक संकेत दिया है। पार्थसारथी दासगुप्ता (जाने-माने भारतीय अर्थशास्त्री) तथा मार्टिन वील ने कुछ पक्षों को जीवन की गुणवत्ता के सूचक में शामिल करने का सुझाव दिया है, जिसे जीवन की गुणवत्ता का सूचक कह सकते हैं।

अभ्यास

1. प्रतिव्यक्ति आय से आपका क्या अभिप्राय है। प्रतिव्यक्ति घरेलू आय अथवा प्रतिव्यक्ति राज्य की आय को मिलाकर क्या इसे प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय कहना उचित होगा?
2. कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{FC}) को प्राप्त करने के लिए सकल घरेलू उत्पाद में से किन कारकों को घटाना चाहिए। यदि हमें एक समय पर किसी देश के विकास का स्तर मालूम करना हो तो हम कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद की गणना प्रचलित कीमतों पर करनी चाहिए अथवा स्थिर कीमतों पर?

3. यदि हम दूसरे देश से तुलना नहीं करना चाहते हैं तो हमें कारक लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद को जनसंख्या से क्यों विभाजित करना चाहिए? व्याख्या करें।
4. एक विकास के संघटक के रूप में PQLI में क्या कमियाँ हैं। इन कमियों को दूर करने के लिए तीन सुझाव दीजिए।
5. यू.एन.आई.एस.आर.डी. के प्रयासों में मुख्य क्या समस्याएं थीं?
6. जीवन की भौतिक गुणवत्ता सूचक (PQLI) के तीन संघटकों की सूची बनाएँ।
7. ए.एल.आर., एल.ई.आई. तथा आई.एम.आर. द्वारा पी.क्यू.एल.आई. का निर्माण कैसे होता है?
8. PQLI को भौतिक सूचक क्यों कहते हैं? इसके निर्माण में मनोवैज्ञानिक कारकों तथा मौद्रिक कारकों को क्यों दूर रखा जाता है?
9. मानव विकास सूचकांक का औचित्य (rationale) क्या है।
10. एच.डी.आई. के निर्माण में जिन तीन तत्वों का प्रयोग होता है, उनकी चर्चा कीजिए।
11. जीवन की गुणवत्ता का सूचक विकास के परिणाम को सम्मिलित करने पर बल देता है। आय कल्याण का एक आगत है, इसको एच.डी.आई. में सम्मिलित करने के पक्ष में आप क्या कहेंगे?
12. संघटक सूचक का सूत्र बताइए।
13. प्रतिव्यक्ति आय को "परचेजिंग पावर पेरिटि डालर" में क्यों मापा जाता है? इसकी विवेचना कीजिए?
14. PPP$ आय को जीवन स्तर सूचक में कैसे परिवर्तित कर सकते हैं?
15. लेखकों द्वारा विचाराधीन "जीवन की गुणवत्ता मापने" के छः संघटकों की सूची (इकाई के साथ) बनाइए।
16. राजनीतिक तथा नागरिक अधिकारों से आपका क्या तात्पर्य है? इनको विकास के संकेतकों के रूप में स्वीकारने के पक्ष में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
17. विकास के सूचकों के क्रमिक विकास की विवेचना करें।

गतिविधियाँ

मान लें कि यूरोपीय देश के लिए मानव विकास सूचकांक के विभिन्न संघटनों का मूल्य पुरुष तथा महिलाओं के लिए नीचे दिए गए अनुसार है :

संघटन	*पुरुष*	*महिलाएं*
जीवन-प्रत्याशा (वर्षों में)	60	65
प्रौढ़ साक्षरता दर (%)	66	30
संयुक्त नामांकन अनुपात (%)	70	60
प्रतिव्यक्ति आय ($PPP में)	2500	2000

सारणी 2.2 में दिए गए उच्चतम एवं निम्नतम मूल्यों का प्रयोग करते हुए आंकड़ों का अध्ययन करके पुरुष व महिला के लिए HDI की संगणना करें।

आगे मान लें कि आपके अध्यापक बताते हैं कि महिलाएं जीव विज्ञान की दृष्टि से मजबूत होती हैं तथा उनका उच्चतम तथा निम्नतम जीवन-प्रत्याशा को क्रमशः 30 तथा 90 के रूप में संशोधित कर सकते हैं। HDIP की पुनर्संगणना करके इसके प्रभाव की अपने सहपाठियों के साथ चर्चा करें।

इकाई II

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन

इस इकाई में आप स्वतंत्रता के समय से भारतीय अर्थव्यवस्था में मुख्यतः वृद्धि तथा संरचनात्मक परिवर्तन का अध्ययन करेंगे। अधिकतर आँकड़े 1950-51 से उपलब्ध हैं अतः परिवर्तन का अध्ययन 1950-51 से वर्तमान तक सीमित रहेगा। एक स्थिति विशेष में निश्चित आँकड़े 1960-61 से उपलब्ध हैं। अंत में एक भाग में हम 1972-73 से आँकड़ों का प्रयोग करेंगे। शृंखला के अंतिम वर्ष में आँकड़े देकर इकाई की समाप्ति करेंगे।

वृद्धि के साथ प्रत्येक अर्थव्यवस्था में विभिन्न आर्थिक गतिविधियों के योगदान से भिन्नता आती है। विभिन्न क्षेत्रों के योगदान से अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन होता है। आपको जानकारी मिलेगी कि विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में किस प्रकार श्रम-शक्ति कार्यरत है।

ऐसा देखा गया है कि यदि ऊर्जा, परिवहन तथा संचार आदि के रूप में हमारी आर्थिक आधारिक संरचना कमजोर होगी तो वृद्धि में रुकावट आती है। हम देखेंगे कि इस दृष्टि से हमारी अर्थव्यवस्था की कितनी प्रगति हो रही है। हम अपनी शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आवास की स्थिति से चिंतित हैं। अतः आपको इन सामाजिक क्षेत्रों की समस्याओं का बोध हो जाएगा। वर्ष 1991 से उदारीकरण, निजीकरण तथा विश्वीकरण के कारण हमारी नीतियों में एक बड़ा परिवर्तन आया है। अतः हम 1991 के पूर्व तथा बाद की मुख्य नीतियों पर विचार कर, नीतियों के दो समुच्चयों में भिन्नता देखेंगे।

अध्याय 3

भारतीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि तथा संरचनात्मक परिवर्तन

इस अध्याय में आप 1950-51 से पिछले 50 वर्षों में, जिसके लिए अधिकतर समष्टिगत समूहों पर वार्षिक आँकड़े उपलब्ध हैं, भारतीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि तथा संरचनात्मक परिवर्तन के बारे में अध्ययन करेंगे। इसमें हम कारक लागत पर सकल घरेलू उत्पाद तथा 1993-94 की कीमतों पर वृद्धि पर अपना ध्यान केंद्रित करेंगे। हम प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय (1993-94 की कीमतों) पर भी विचार करेंगे जिसको विकास अथवा जीवन-स्तर का संकेतक माना गया है।

पिछले अध्याय में संरचनात्मक परिवर्तन तथा वृद्धि को विकास का एक संकेतक माना गया है। संरचना से हमारा क्या अभिप्राय है? बहुत लोग इससे उत्पादन की संरचना मानते हैं, जो कि अर्थव्यवस्था द्वारा उत्पादित निर्गत का संघटन है। कुछ लोग जानना चाहेंगे कि हमारे श्रम का समावेशन कहाँ तथा कैसे होता है। भूमि तथा पूंजी जैसे अन्य करकों को समान महत्त्व नहीं दिया जाता है। कुछ लोग यह जानना चाहेंगे कि निर्गत के उत्पादन का विभाजन देश के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र या अर्थव्यवस्था के सरकारी एवं गैर-सरकारी क्षेत्र या संगठित एवं गैर-संगठित क्षेत्र में कैसे होता है? हम इन सभी पर विचार करेंगे। हम स्वतंत्रता के बाद से विकास को अच्छी तरह समझ सकते हैं यदि हमें स्वतंत्रता की पूर्व संध्या के समय के दृश्य का थोड़ा संकेत मिल जाए।

स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या के समय की अर्थव्यवस्था

हमें विरासत में ऐसी अर्थव्यवस्था मिली जिसका उद्देश्य साम्यवाद के मालिकों पर निर्भर था। स्वतंत्रता के पूर्व 100 वर्षों में प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि दर (जहाँ से भी सूचना मिली हो) केवल 0.5 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। आगे जाकर पता चलता है कि लंबी अवधि में वास्तव में अर्थव्यवस्था में स्थिरता अथवा गिरावट आयी है।

पहले हमें महीन सूती धागे, हस्तशिल्प तथा अन्य माल पैदा करने वालों में जाना जाता था। ब्रिटिश राज के आरंभ में यानि ब्रिटेन में क्रांति के समय, हमारी अर्थव्यवस्था औद्योगिक थी (उस समय के मानदण्डों के आधार पर जब यूरोपीय अर्थव्यवस्था में आधुनिक सभ्यता की शुरुआत हुई थी)। आजादी के समय हमारी अर्थव्यवस्था कृषि-अर्थव्यवस्था बनकर रह गयी तथा हम ब्रिटिश उद्योगों के लिए मुख्य आगतें तथा कच्चा माल तथा खनिज निर्यात करते थे, यहाँ तक कि खाद्यान्नों का भी निर्यात करते थे भले ही हम भूखे रहें।

वर्ष 1950-51 में हमारी प्रतिव्यक्ति आय 3700 रुपये से अधिक नहीं थी (1993-94 कीमतों पर) । (जबकि 1999-2000 में यह 10,000 रुपये से कुछ अधिक है) । सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र (पशु-पालन, पशुधन सहित) का योगदान

प्रचलित कीमतों पर लगभग 54 प्रतिशत तथा स्थिर कीमतों (1993-94) पर 50 प्रतिशत था। यदि हम इस क्षेत्र में वानिकी, लट्ठे बनाना, मत्स्य पालन को सम्मिलित करें तो योगदान 57-58 प्रतिशत होगा। और यदि हम इसमें खनन एवं उत्खनन को मिला दें तो इसको प्राथमिक क्षेत्रक कहते हैं और प्राथमिक क्षेत्रक का योगदान करीब 60 प्रतिशत होगा।

विनिर्माण क्षेत्रक का योगदान केवल 10 प्रतिशत था। सेवा-क्षेत्रक का योगदान लगभग 30 प्रतिशत था। ज्यादातर लोग कृषि-क्षेत्रक में कार्यरत थे, खेतीहर-किसान अपने छोटे खेतों पर तथा मजदूर दूसरों के खेतों पर।

वर्ष 1950-51 से सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि

अर्थव्यवस्था में वृद्धि सकल घरेलू उत्पाद स्थिर कीमतों पर वृद्धि से जानी जाती है। अब हमारे पास 1950-51 से सकल घरेलू उत्पाद 1993-94 की कीमतों की पूरी शृंखला है, परंतु हम यहाँ पर प्रति पाँच वर्ष के अंतराल से सकल घरेलू उत्पाद की शृंखला देगें (सारणी 3.1)। (1993-94 कीमतों पर GDP_{FC} की पूरी शृंखला परिशिष्ट में दी गयी है)।

आपको आँकड़ों के बढ़ने की साधारण प्रवृत्ति, कुछ वर्षों में कभी-कभी गिरावट तथा पिछले कुछ वर्षों में उनकी तुलना के लिए हम यहाँ पर पूरी शृंखला का रेखाचित्र प्रस्तुत करेंगे । इस आरेख में सकल घरेलू उत्पाद में कभी-कभी गिरावट देखेंगे, जो कि नीचे दी गयी संक्षिप्त सारणी में नहीं दिखायी देती है, यद्यपि सामान्यतः इसमें वृद्धि होती है।

पिछले पचास वर्षों के दौरान यह आठ गुना से ज्यादा बढी है। किंतु हम यह जानने के इच्छुक हैं तथा होने चाहिए, कि क्या पूरे समय में वृद्धि दर में बढ़ोतरी हुई है या नहीं।

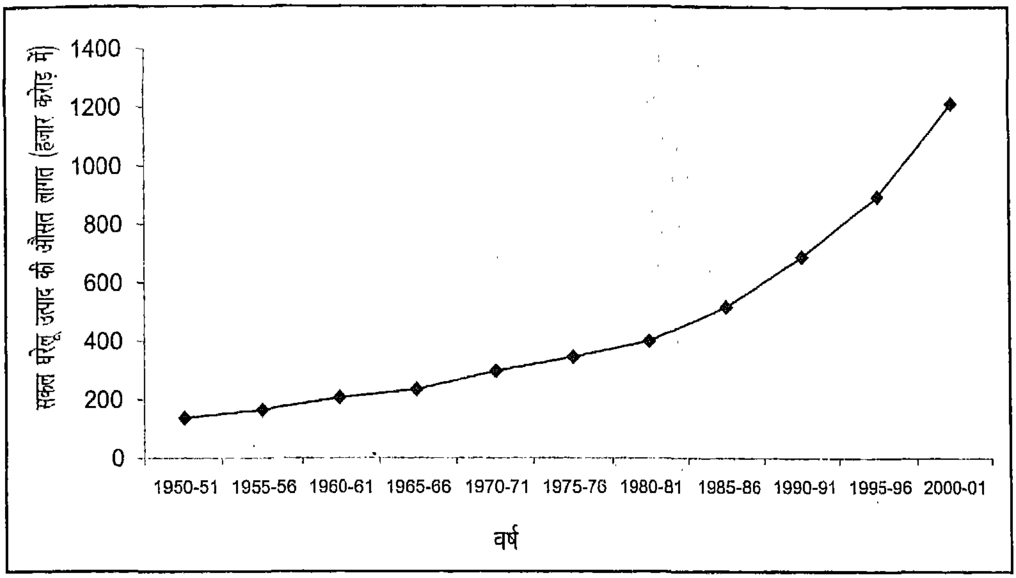
परिशिष्ट में दी गयी शृंखला से हम वार्षिक वृद्धि की संगणना कर सकते हैं। हम विभिन्न योजना-अवधियों अथवा विभिन्न दशकों अथवा (समयावधि) विशेष घटनाओं से संबंधित समयावधियों की वृद्धि की संगणना कर सकते हैं। विद्वानों द्वारा इन सब समयावधियों के प्रयोग किए जा चुके हैं। हम दशकों के लिए प्रतिवर्ष वृद्धि-दर की

सारणी 3.1

वर्ष 1950-51 से 2000-01 तक स्थिर कीमतों (1993-94) पर सकल घरेलू उत्पाद

राजस्व वर्ष	*सकल घरेलू उत्पाद (करोड़ रुपये)*	*राजस्व वर्ष*	*सकल घरेलू उत्पाद (करोड़ रुपये)*
1950-51	140446	1980-81	401128
1955-56	167667	1985-86	513990
1960-61	206103	1990-91	692871
1965-66	236306	1995-96	899563
1970-71	296278	2000-01	1211747
1975-76	343924		

स्रोत : राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी : पिछली शृंखला 1950-51, 1993-94 तथा राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी 2001, दोनों केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन द्वारा प्रकाशित।



चित्र 3.1: सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि

संगणना करेंगे। हम लंबी समयावधि में वार्षिक वृद्धि दर की संगणना के लिए दो लोकप्रिय संगणना की विधियों का प्रयोग करेंगे जैसे, औसतन वार्षिक वृद्धि तथा चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि-दर (एक परिशिष्ट में जिसकी चर्चा की गयी है) ।

हम आगे दी गयी सारणी में प्रत्येक दशक के लिए तथा अर्द्ध-शताब्दी के लिए सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि-दर प्रस्तुत करेंगे। सारणी 3.2 से यह मालुम होता है कि पूरी समयावधि के लिए वृद्धि-दर 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष से निश्चित रूप से ज्यादा है। सत्तर के दशक में वृद्धि दर में गिरावट आयी किंतु अस्सी तथा नब्बें के दशकों में निश्चित तौर से सुधार हुआ है। इस समय यह निश्चित रूप से स्वीकार सकते हैं कि वृद्धि-दर 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष के निकट है। वृद्धि का कुछ श्रेय हम अस्सी तथा नब्बे के दशकों में अपनायी गयी नीतियों को दे सकते हैं, किंतु पचास-साठ तथा सत्तर के दशकों में बनाए गए आधार को भी कुछ श्रेय दिया जाना चाहिए, जिसने कृषि अर्थव्यवस्था की उत्पादकता को तथा देश की औद्योगिक अर्थव्यवस्था की विविधता को बदला है।

प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि

प्रतिव्यक्ति आय, निवल राष्ट्रीय उत्पाद को जनसंख्या (मध्यवर्गीय) के आकार से विभाजित करने पर प्राप्त होती है। निवल राष्ट्रीय उत्पाद के, सकल घरेलू उत्पाद के आदर्श को अपनाने की पूरी संभावना है, क्योंकि कुल आय की तुलना में विदेशों से निवल कारक आय बहुत कम होती है। पिछले 50 वर्षों में जनसंख्या लगातार बढ़ रही है, बहुत समय

सारणी 3.2
विभिन्न दशकों में सकल देशीय उत्पाद में वार्षिक वृद्धि दर
(प्रतिशत प्रतिवर्ष)

समयावधि	*वार्षिक औसत*	*चक्रवृद्धि दर*
1950-51 से 1959-60	3.59	3.56
1960-61 से 1969-70	3.95	3.89
1970-71 से 1979-80	2.94	2.86
1980-81 से 1989-90	5.79	5.78
1990-91 से 1999-00	5.80	5.78
1950-51 से 2000-01	**4.43**	**4.11**

पश्चात् उपलब्ध जनसंख्या वृद्धि दर गिरनी शुरू हुई है। हमें याद है कि हमारे पास जनसंख्या के दसवर्षीय आँकड़े ही उपलब्ध हैं अतः हम जनसंख्या की केवल एक वृद्धि-दर की ही संगणना कर सकते हैं। इस तकनीकी का प्रयोग कर प्रत्येक मध्यवर्ष के लिए जनसंख्या के आकार का अंतर्वेशन कर सकते हैं। निवल राष्ट्रीय आय को जनसंख्या के आकार से विभाजित कर प्रतिव्यक्ति आय की संगणना कर सकते हैं। प्रत्येक पांच वर्षों के अंतराल में इसको सारणी 3.3 में प्रस्तुत किया गया है।

आप देख सकते हैं कि प्रतिव्यक्ति आय तीन गुने से थोड़ी कम दर से बढ़ रही है। वर्ष 1950-51 में यह 3700 रुपये थी जो बढ़कर वर्ष 2000-01 में स्थिर कीमतों पर 10,000 रुपये हो गयी।

इन दिखाए गए वर्षों में किसी भी वर्ष में पिछले वर्ष की तुलना में इसमें गिरावट नहीं आयी है। किंतु यह भी देखते हैं कि वर्ष 1960-61 की तुलना में वर्ष 1965-66 में (5 वर्षों का अंतराल)

सारणी 3.3
प्रतिव्यक्ति आय स्थिर कीमतों पर (1993-94) 1950-51 से 2000-01

राजस्व वर्ष	*प्रतिव्यक्ति आय (रुपयों में)*	*राजस्व वर्ष*	*प्रतिव्यक्ति आय (रुपयों में)*
1950-51	3687	1980-81	5352
1955-56	4020	1985-86	6082
1960-61	4429	1990-91	7321
1965-66	4459	1995-96	8498
1970-71	5002	2000-01	10561
1975-76	5167		

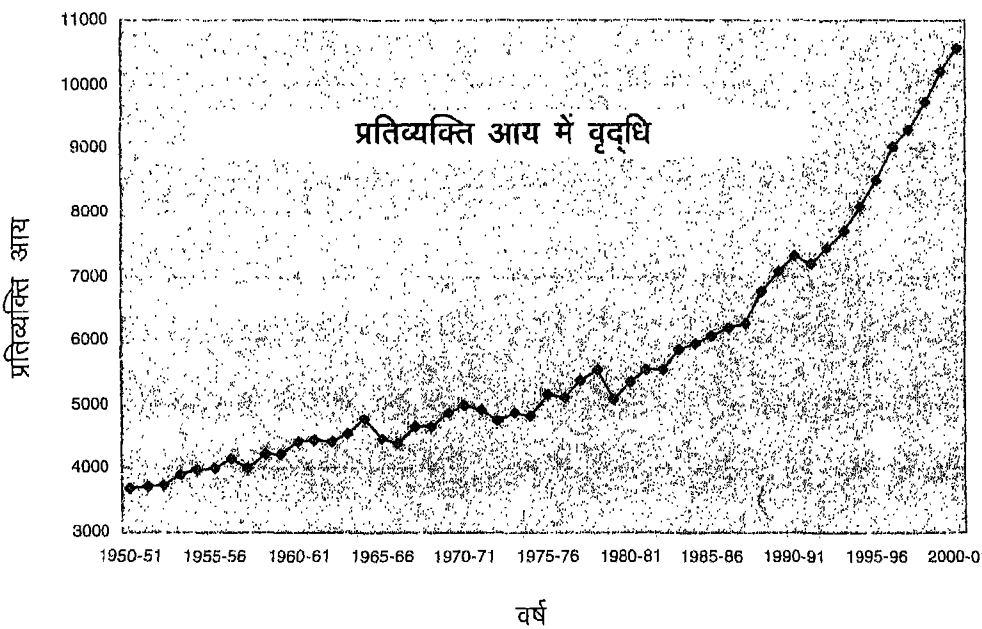
स्रोतः *सारणी 3.1 के अनुसार*

मुश्किल से कोई बढ़ोतरी हुई है। सामान्यतः इन वर्षों में कुछ वृद्धि हुई है, परंतु वर्ष 1965-66 बुरा वर्ष था। हालांकि वर्ष 1965-66 तथा 1966-67 ने हमें हरित क्रान्ति दी परंतु वास्तव में वर्ष 1965-66 तथा 1966-67 भंयकर अकाल के थे। प्रति-व्यक्ति आय के उतार-चढाव के बारे में विचार करने की दृष्टि से हम पूरी शृंखला जो कि अध्याय के परिशिष्ट में दी गयी है का रेखा चित्र यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

सारणी 3.4 में प्रतिव्यक्ति वार्षिक वृद्धि-दर, प्रत्येक दशक के लिए तथा पूरे पचास वर्षों के लिए दिखायी गयी है। इसकी संगणना दो विधियों, औसत वार्षिक वृद्धि दर तथा चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर से कर सकते हैं। हम यह देख सकते हैं कि पूरे पचास वर्षों में वार्षिक वृद्धि दर 2 प्रतिशत थी। सत्तर के दशक में वृद्धि-दर न्यूनतम थी । यहाँ आप इस अंतर को अनदेखा कर सकते हैं। (परिशिष्ट देखें) ।

अर्थव्यवस्था की उत्पादन-संरचना में परिवर्तन

यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि हम तब क्या उत्पादन करते थे तथा अभी क्या उत्पादन करते हैं। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था में वृद्धि होती है इसके उत्पादन-संरचना में भी परिवर्तन होता है। यह कृषि से विनिर्माण तथा सेवाओं की ओर अग्रसर होती है। आप देखेंगे कि अपेक्षाकृत सम्पन्न परिवार खाद्यान्नों की अपेक्षा विनिर्मित वस्तुओं पर अधिक व्यय करती हैं। आप अपने परिवार में भी देखेंगे कि जैसे-जैसे आय बढ़ती है खाद्य पदार्थ की तुलना में दूसरे पदार्थों पर अनुपाततः अधिक व्यय होता



चित्र 3.2: प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि

सारणी 3.4

विभिन्न दशकों में कारक लागत प्रतिव्यक्ति आय की वार्षिक वृद्धि-दर

(प्रतिशत प्रतिवर्ष)

समयावधि (वर्ष)	*वार्षिक औसत*	*वार्षिक चक्रवृद्धि*
1950-51 से 1959-60	1.53	1.35
1960-61 से 1969-70	1.51	0.94
1970-71 से 1979-80	0.55	0.17
1980-81 से 1989-90	3.89	2.85
1990-91 से 1999-00	3.73	3.37
1950-51 से 1999-00	**2.16**	**2.05**

है। किंतु आप यह भी देखेंगे कि साधारण तथा निरपेक्ष व्यय की धनराशि मोटेतौर पर कम नहीं होती है। इसका तात्पर्य यह है कि उत्पादन संरचना कृषि से बदल रही है। अब तक जितने कृषि पदार्थ, जो सीधे परिवारों के पास पहुँचते थे, अब वितरण की दूसरी लंबी प्रक्रियाओं के बाद पहुँचते हैं। ब्रेड, नूडलस् तथा फलों के रस इसके अच्छे उदाहरण हैं। इसका तात्पर्य है कि विनिर्माण तथा व्यापार की गतिविधियाँ बढ़ेंगी। अतः हमें देखना चाहिए कि किस प्रकार उत्पादन-संरचना में परिवर्तन होता है।

हम जानते हैं कि किसी आधुनिक अर्थव्यवस्था में से सैकड़ों तथा हज़ारों गतिविधियाँ हमेशा चलती रहती हैं। बहुत सी गतिविधियाँ आरंभ तो होती हैं, परंतु उनमें से कुछ समाप्त हो जाती हैं। कुछ संशोधित रूप में पुनः आरंभ होती हैं। किंतु प्रत्येक वस्तु के बारे में विचार विमर्श करना मुश्किल है। हम उनको उत्पाद की समानता अथवा गतिविधियों की प्रकृति के आधार पर समूहबद्ध कर लेते हैं। हमारा केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन मोटेतौर पर 9 वर्गों का प्रयोग करता है, जिन्हें क्षेत्र कहा जाता है। इनमें से 6 वर्गों को 2/3/4 उपवर्गों में विभाजित किया गया है। उद्योग, क्षेत्र के रूप में, इसमें नहीं आता है। इसको खनन तथा उत्खनन, विनिर्माण व विद्युत में समायोजित किया गया है। कुल मिलाकर इसमें 18 वर्ग, क्षेत्र तथा उप-क्षेत्र हैं, जो देश की कुल आर्थिक गतिविधियों को राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी में प्रस्तुत करता है।

अर्थशास्त्री उत्पादन संरचना में परिवर्तन के लिए 2-3 स्तरीय वर्गीकरण में चर्चा करते हैं। एक कृषि विनिर्माण/उद्योग तथा सेवाओं के रूप में और दूसरा प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक के रूप में है। कृषि में साधारणतया पशुधन सम्मिलित हैं। किंतु बड़े वर्ग में कृषि, वानिकी एवं लट्ठे बनाना तथा मत्स्य पालन को सम्मिलित किया गया है। यदि हम इस क्षेत्र में खनन एवं उत्खनन को जोड़ें तो इसे 'प्राथमिक क्षेत्र' कहेंगे, क्योंकि ये गतिविधियाँ प्रकृति से जुड़ी हुई हैं।

फैक्टरी नियम के अनुसार विनिर्माण इकाई के पंजीकरण के आधार पर विनिर्माण क्षेत्र को पंजीकृत तथा गैर-पंजीकृत इकाइयों में फिर विभाजित किया गया है। उद्योग में विनिर्माण, खनन तथा उत्खनन को सम्मिलित कर सकते हैं। यदि हम विद्युत, गैस व जल आपूर्ति एवं निर्माण को विनिर्माण में सम्मिलित कर देते हैं तो इसे द्वितीयक क्षेत्र कहते हैं। तृतीयक क्षेत्र में उन

केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन (CSO) द्वारा अपनाए गए क्षेत्रीय वर्गीकरण

1. कृषि, वानिकी तथा मत्स्य पालन
   - 1.1 कृषि
   - 1.2 वानिकी एवं लट्ठे बनाना
   - 1.3 मत्स्य पालन
2. खनन तथा उत्खनन
3. विनिर्माण
   - 3.1 पंजीकृत
   - 3.2 गैर-पंजीकृत
4. विद्युत, गैस तथा जल आपूर्ति
5. निर्माण
6. व्यापार, होटल व रेस्तराँ
   - 6.1 व्यापार
   - 6.2 होटल रेस्तराँ
7. परिवहन, संग्रहण व संचार
   - 7.1 रेलवे
   - 7.2 परिवहन के अन्य साधन
   - 7.3 संग्रहण
   - 7.4 संचार
8. वित्त, बीमा, स्थावर सम्पदा तथा व्यावसायिक सेवाएँ
   - 8.1 बैंकिंग एवं बीमा
   - 8.2 स्थावर सम्पदा, आवासों का स्वामित्व एवं व्यावसायिक सेवाएँ
9. सामुदायिक, सामाजिक तथा निजी सेवाएँ
   - 9.1 लोक प्रशासन, रक्षा एवं अर्ध-सरकारी निकाय
   - 9.2 अन्य सेवाएँ

सभी गतिविधियों के साथ विद्युत, गैस व जल आपूर्ति एवं निर्माण सम्मिलित होते हैं। यह केवल परंपरागत है। समयावधि में वर्गीकरण में परिवर्तन हो सकते हैं। हमेशा एक जैसा वर्गीकरण नहीं रहता है। राष्ट्रीय लेखा में बड़े संशोधनों के साथ नये उत्पादों का प्रवेश होता है तथा कुछ गतिविधियों को निकाला भी जा सकता है। उदाहरण के लिए, पहले एल.पी.जी. को विद्युत गैस तथा जल आपूर्ति क्षेत्र में सम्मिलित करते थे परंतु अब यह विनिर्माण का भाग है। सारणी 3.5 में पचास वर्षों की स्थिर कीमतों (1993-94) पर सकल घरेलू उत्पाद में 11 मुख्य क्षेत्रों का योगदान 6 वार्षिक बिंदुओं में प्रस्तुत किया गया है। इस सारणी से हम दो और सारणियाँ बनाएँगें। एक सारणी सकल घरेलू उत्पाद का संघटन दर्शाएगी तथा दूसरी सारणी में प्रत्येक दशक व अर्द्ध-शताब्दी में विभिन्न क्षेत्रों में वृद्धि को प्रस्तुत किया जाएगा।

अब हम उत्पादन संरचना की मुख्य बातों पर प्रकाश डालेंगे अतः आप के लिए रुचिकर होगा कि आप कुछ अभ्यास कर विभिन्न क्षेत्रों के

योगदान के बारे में अपने विचार विकसित करें।

विभिन्न क्षेत्रों का निरपेक्ष योगदान

यह सरलता से देख सकते हैं कि कृषि उत्पादन लगातार बढ़ रहा है तथा अब यह चार गुना बढ़ चुका है। हमें उत्पादन में गिरावट नहीं दिखाई देती क्योंकि हमारी सारणी में सभी वर्ष नहीं हैं, कई ऐसी कालावधियाँ जब कृषि उत्पादन में वास्तव में गिरावट आयी है। जब हमें सकल घरेलू उत्पाद में गिरावट दिखती है तो इसका मुख्य कारण कृषि उत्पादन में गिरावट हो सकता है क्योंकि सकल घरेलू उत्पाद में इसका बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान है। वर्ष 1965-66 से 1966-67 में लगातार कृषि क्षेत्र में हानि हुई। इन्हीं वर्षों में **हरित-क्रान्ति** हुई। अब कृषि क्षेत्र में हमारी स्थिति काफी आरामदायक है। फिर भी प्रत्येक दशक के दौरान कृषि क्षेत्र में 2 या 3 वर्षों में अवश्य निराशा हाथ लगती है। हमें याद रखना चाहिए कि कृषि हमें खाद्य, दूध, मांस तथा उद्योगों को कच्चा माल तथा विशेषकर उपभोक्ता-वस्तुएं बनाने वाले उद्योगों को कच्चा माल देती हैं। कृषि की तुलना में प्राथमिक क्षेत्र में सम्मिलित दूसरे क्षेत्र बहुत छोटे हैं; प्राथमिक क्षेत्र का योगदान केवल चार गुना बढ़ा है।

विनिर्माण क्षेत्र का योगदान वर्ष 1950-51 में 12,500 करोड़ रुपये था जो बढ़कर 1999-2000 वर्ष में 2,00,000 करोड़ रुपये हो गया। इस समयावधि में यह 16 गुना बढ़ा है। वार्षिक निर्माण गतिविधि भी 10 गुना बढ़ गयी है। निर्माण के केवल आवास ही नहीं बल्कि सड़कें, रेलें, बांध, नहरें, पुल तथा उपरिगामीसेतु व झोंपड़ियाँ भी सम्मिलित हैं। आजादी के समय विद्युत, गैस तथा जल आपूर्ति की स्थिति आरम्भिक अवस्था में थी तथा इसका योगदान 1993-94 कीमतों पर 500 करोड़ रुपये से कम ही था। पचास वर्षों में इसका योगदान 60 गुना बढ़ा।

द्वितीयक क्षेत्र का योगदान कुल मिलाकर 15 गुना बढ़ा है। व्यापार, होटल तथा रेस्तराँ का योगदान इस समयावधि में 14 गुना बढ़ा है, जबकि परिवहन, संग्रहण तथा संचार का योगदान 18 गुना बढ़ा। वित्तीय तथा व्यावसायिक सेवाएँ बीमा तथा स्थावर संपदा को मिलाकर, 15 गुना बढ़ा है जबकि सरकारी प्रशासन को मिलाकर सामुदायिक,

सारणी 3.5

विभिन्न क्षेत्रों का स्थिर कीमतों पर सकल घरेलू उत्पाद

(1993-94 की कीमतों पर) 1950-51 से 1999-2000 अवधि में योगदान

(करोड़ रुपयों में)

गतिविधि का क्षेत्र	*1950-51*	*1960-61*	*1970-71*	*1980-81*	*1990-91*	*1999-00*
कृषि	70456	97412	121356	143431	200634	266848
वानिकी एवं लट्ठा उद्योग	9456	9704	13086	11910	11751	12542
मत्स्य पालन	1249	2124	3197	3952	6943	10944
खनन एवं उत्खनन	2085	3594	5261	8477	19819	26446
प्राथमिक क्षेत्र	*83246*	*112834*	*142900*	*167770*	*239147*	*316780*
विनिर्माण	12491	22465	37389	55436	115282	196763

गतिविधि का क्षेत्र	*1950-51*	*1960-61*	*1970-71*	*1980-81*	*1990-91*	*1999-00*
विद्युत, गैस व जल आपूर्ति	457	1217	3501	6774	16203	28225
निर्माण	5722	10558	18107	24395	38218	58728
द्वितीयक क्षेत्र	*18670*	*34240*	*58997*	*86605*	*169703*	*283716*
व्यापार, होटल व रेस्तराँ	12137	20254	32324	48883	86892	168355
परिवहन, संग्रहण व संचार	4645	8064	13759	24963	42894	84477
वित्तीय, बीमा, स्थावर सम्पदा तथा व्यावसायिक सेवाएँ	9380	12568	17588	26156	66990	146546
सामुदायिक, सामाजिक व निजी सेवाएँ	13215	18908	316600	46751	84380	152117
तृतीयक क्षेत्र	*39377*	*59794*	*95331*	*146753*	*281156*	*551495*
सकल घरेलू उत्पाद	*140466*	*206103*	*296278*	*423073*	*692871*	*1151991*

***स्रोत :** सारणी 3.1 देखें।*

सामाजिक व निजी सेवाओं का योगदान 15 गुना बढ़ा।

विभिन्न क्षेत्रों का सापेक्ष योगदान

क्षेत्र का सापेक्ष योगदान उसके अपने निष्पादन तथा अन्य क्षेत्रों के निष्पादन पर भी निर्भर करता है। परिणामतः सकारात्मक योगदान के बावजूद क्षेत्र अपनी सापेक्ष स्थिति गँवा सकते हैं। इसी प्रकार हालांकि वर्ष 1950-51 में कृषि का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान 50 प्रतिशत था, परंतु शताब्दी के अंत तक चार गुना वृद्धि के बावजूद इसका योगदान 25 प्रतिशत ही रहा। इस समयावधि में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान 60 प्रतिशत से घट कर 30 प्रतिशत से कम हो गया। इसी समयावधि में विनिर्माण का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान 9 प्रतिशत से बढ़कर 17 प्रतिशत हो गया। विद्युत, गैस तथा जल आपूर्ति का हिस्सा जो एक प्रतिशत का एक तिहाई था बढ़कर 2.5 प्रतिशत के निकट हो गया। निर्माण गतिविधि में निरपेक्ष रूप में अच्छी बढ़ोत्तरी हुई, फिर भी पहले 20 वर्षों में इसकी मंदी की अवधि माना जाता है। इस दौरान इसका हिस्सा 4 प्रतिशत से बढ़कर 6 प्रतिशत हो गया, अंतिम 30 वर्षों में यह गिरकर 5 प्रतिशत हो गया। पूर्ण द्वितीयक क्षेत्र 14 प्रतिशत से बढ़कर 24 प्रतिशत हो गया। सकल घरेलू उत्पाद में योगदान की दृष्टि से द्वितीयक क्षेत्र प्राथमिक क्षेत्र का निकटतम प्रतियोगी रहा। देखें सारणी 3.6 ।

अब हम तृतीयक क्षेत्र को देखें। व्यापार, होटल तथा रेस्तराँ व्यवसाय की गतिविधियों का हिस्सा 8.6 प्रतिशत से बढ़कर 14.6 प्रतिशत हो गया जबकि परिवहन, संग्रहण तथा संचार का हिस्सा अर्द्ध शताब्दी में 3.3 प्रतिशत से बढ़कर 7.3 प्रतिशत हो गया। वित्तीय तथा व्यावसायिक सेवाओं का योगदान 6.7 प्रतिशत से बढ़कर 12.7 प्रतिशत हो गया जबकि सामुदायिक, निजी सेवाओं का योगदान 9.4 प्रतिशत से बढ़कर 13.4 प्रतिशत हो गया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि वर्ष 1950-51 में, तृतीयक क्षेत्र के विभिन्न क्षेत्रों में से सामुदायिक तथा सामाजिक सेवाओं का योगदान काफी प्रबल रहा। इसने धीरे-धीरे व्यापार क्षेत्र के

सारणी 3.6
निर्गत का संघटन तथा सकल घरेलू उत्पाद में क्षेत्रीय निर्गत
स्थिर कीमतों (1993-94) पर

(प्रतिशत में)

गतिविधि का क्षेत्र	*1950-51*	*1960-61*	*1970-71*	*1980-81*	*1990-91*	*1999-00*
कृषि	50.16	47.26	40.96	35.76	28.96	23.16
वानिकी एवं लट्ठे बनाना	6.73	4.71	4.42	2.97	1.70	1.09
मत्स्य पालन	0.89	1.03	1.08	0.99	1.00	0.95
खनन एवं उत्खनन	1.48	1.74	1.78	2.11	2.86	2.30
प्राथमिक क्षेत्र	*59.26*	*54.75*	*48.23*	*41.82*	*34.52*	*27.50*
विनिर्माण	8.89	10.90	12.62	13.82	16.64	1708
विद्युत,गैस व जल आपूर्ति	0.33	0.59	1.18	1.69	2.34	2.45
निर्माण	4.07	5.12	6.11	6.08	5.52	5.10
द्वितीयक क्षेत्र	*13.29*	*16.61*	*19.91*	*21.59*	*24.49*	*24.63*
व्यापार, होटल व रेस्तराँ	8.64	9.83	10.91	12.19	12.54	14.61
परिवहन, संग्रहण व संचार	3.31	3.91	4.64	6.22	6.19	7.33
वित्तीय,बीमा,स्थावर सम्पदा तथा व्यावसायिक सेवाएँ	6.68	6.10	5.94	6.52	9.67	12.72
समुदायिक, सामाजिक व निजी सेवाएँ	9.41	9.17	10.69	11.65	12.18	13.20
तृतीयक क्षेत्र	*28.03*	*29.01*	*32.18*	*36.59*	*40.58*	*47.87*
सकल घरेलू उत्पाद	*100.00*	*100.00*	*100.00*	*100.00*	*100.00*	*100.00*

लिए रास्ता दिया परंतु नब्बे के दशक में वित्तीय तथा व्यावसायिक सेवाएँ निकट प्रतियोगी के रूप में उभर कर आईं। फिर भी यह ध्यान देना चाहिए कि लोक प्रशासन तथा रक्षा क्षेत्रों ने 1950-51 में 3 प्रतिशत का योगदान दिया जो अब 6 प्रतिशत हो गया। सामुदायिक व सामाजिक सेवा के व्यापक रूप में लोक प्रशासन तथा रक्षा का योगदान इस समयावधि में एक तिहाई (1/3) से बढ़कर (1/2) आधा हो गया। (सारणी 3.6 देखें)।

विभिन्न क्षेत्रों की वृद्धि

हम सारणी 3.5 में से एक और सारणी बना सकते हैं जो हमें विभिन्न क्षेत्रों में वृद्धि दर बताएगी। हमने केवल चक्रवृद्धि दर की संगणना की है। हमें इसे कठिनाई से सहन करना होगा कि यह वृद्धि दर शुरू और अंत के आँकड़ों पर निर्भर करेगी। साठ तथा सत्तर के दशकों में कृषि की स्थिति काफी खराब थी। वृद्धि दर जनसंख्या वृद्धि दर से भी नीचे गिर गयी। कृषि में खाद्य पदार्थ मुख्य

है तथा हम इसके आयात का भार वहन नहीं कर सकते हैं। बड़े देश होने की वजह से, हम कृषि उत्पाद आयात करें, तो भी हमें काफी मात्रा में खाद्यान्नों का उत्पादन स्वयं करना पड़ेगा। नब्बे के दशक में खाद्यान्नों की वृद्धि में कुछ मंदी रही। भविष्य में हम कुछ कम वृद्धि दर तब तक सहन कर सकते हैं जब तक कि उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति होती रहे तथा खाद्यान्नों की आपूर्ति घरेलू माँग से कम नहीं हो। प्राथमिक क्षेत्र की वृद्धि-दर द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र से हमेशा कम होती रही, तथा इसके योगदान में कमी होते रहने का यही एक मुख्य कारण है।

विनिर्माण क्षेत्र में वृद्धि कृषि से दुगुनी रही है। सत्तर का दशक सभी क्षेत्रों के लिए खराब था। इसी दशक में विद्युत, गैस तथा जल आपूर्ति क्षेत्र केवल 4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर ही उपलब्ध कर सका। यही स्थिति निर्माण क्षेत्र की थी। नब्बे के दशक की तुलना में अस्सी के दशक में द्वितीयक क्षेत्र का योगदान सराहनीय था।

नब्बे का दशक तृतीयक क्षेत्र के पक्ष में रहा, तथा इसकी वार्षिक वृद्धि पर 7.8 प्रतिशत बढ़ी। सभी सेवाओं में अस्सी के दशक की तुलना में

सारणी 3.7

दशकों के दौरान विभिन्न क्षेत्रों की वृद्धि-दर

(प्रतिशत प्रतिवर्ष)

गतिविधि का क्षेत्र	*1950-51 से 1960-61*	*1960-61 से 1970-71*	*1970-71 से 1980-81*	*1980-81 से 1990-91*	*1990-91 से 1999-00*	*1950-51 से 1999-2000*
कृषि	3.29	2.22	1.68	3.41	3.22	2.70
वानिकी व लट्ठे बनाना	0.26	3.03	-0.94	-0.13	0.73	0.57
मत्स्य पालन	5.45	4.17	2.14	5.80	5.19	4.43
खनन एवं उत्खनन	5.59	3.88	4.89	8.86	3.26	5.21
प्राथमिक क्षेत्र	*3.09*	*2.39*	*1.62*	*3.61*	*3.17*	*2.71*
विनिर्माण	6.05	5.23	4.02	7.60	6.12	5.67
विद्युत, गैस व जल आपूर्ति	10.29	11.14	6.82	9.11	6.36	8.56
निर्माण	6.32	5.54	3.03	4.59	4.89	4.77
द्वितीयक क्षेत्र	*6.25*	*5.59*	*3.91*	*6.96*	*5.88*	*5.59*
व्यापार, होटल व रेस्टराँ	5.25	4.78	4.22	5.92	7.62	5.40
परिवहन, संग्रहण व संचार	5.67	5.49	6.14	5.56	7.82	5.97
वित्तीय, बीमा, स्थावर-संपदा तथा व्यावसायिक सेवाएँ	2.97	3.42	4.05	9.86	9.09	5.65
समुदायिक, सामाजिक व निजी सेवाएँ	3.65	5.29	3.97	6.08	6.77	5.01
तृतीयक क्षेत्र	*4.27*	*4.77*	*4.41*	*6.72*	*7.77*	*5.42*
सकल घरेलू उत्पाद	*3.91*	*3.69*	*3.07*	*5.61*	*5.81*	*4.30*
जनसंख्या	*1.91*	*2.23*	*2.30*	*2.14*	*1.87*	*2.05*

नब्बे के दशक में तेज गति से वृद्धि हुई जबकि वृद्धि की दृष्टि से सत्तर के दशक की तुलना में इसका योगदान काफी अच्छा था। इस अवलोकन में कुछ अपवाद भी हो सकते हैं।

आर्थिक क्रियाओं की प्रवृत्ति प्राथमिक/ कृषि क्षेत्र से दूर द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र की ओर गतिमान प्रतीत होती है। कृषि में गिरावट को द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र ने मिलकर बाँट लिया तथा समय के साथ द्वितीयक क्षेत्र की तुलना में तृतीयक क्षेत्र में बढ़ोत्तरी काफी तेज हो रही है।

उत्पादन के पृथक्करण द्वारा परिवर्तन

विद्वानों ने उत्पादन संरचना संबंधी गतिविधियों के तीन महत्त्वपूर्ण विभाजन के बारे में ज्यादातर चर्चा की है। एक विभाजन, गतिविधियों के स्थान निर्धारण से संबंधित है, स्थान निर्धारण ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में विभाजित है। दूसरा विभाजन, उत्पादन के संस्थान के स्वामित्व के ऊपर निर्भर करता है, जो कि सरकारी तथा गैर-सरकारी में विभाजित है। तीसरा, संगठित और गैर-संगठित क्षेत्र के बारे में है।

ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में विभाजन

एड्म स्मिथ ने कहा था कि कृषि देश का उद्योग है तथा विनिर्माण शहर का विनिर्माण है। जैसे-जैसे प्रकृति-वासी अपनी आर्थिक गतिविधियों में विविधता लाते हैं, वैसे-वैसे इनकी स्थिति ग्रामीण से शहरी की निश्चित परिभाषाओं के दायरे में बदल जाती है। भारत में पिछले पचास वर्षों में शहरों की संख्या 2800 से बढ़कर 3600 हो गयी तथा इनमें रहने वालों की जनसंख्या लगभग 6 करोड़ से बढ़कर 26 करोड़ हो गयी है। शहरी क्षेत्रों में रहने वालों की जनसंख्या 25 प्रतिशत से कुछ ज्यादा है जो कि 1950-51 में 16 प्रतिशत होती थी। दूसरी तरफ गांवों की संख्या करीब 6 लाख है। प्राकृत-वास की जनसंख्या 10 लाख से ज्यादा है। ग्रामीण क्षेत्र में केवल कृषि तथा पशुओं को चराने की गतिविधियाँ नहीं होती हैं, बल्कि विनिर्माण (हस्तशिल्प), व्यापार (खुदरा), परिवहन (बैलगाड़ी तथा ट्रैक्टर) भी ग्रामीण गतिविधियों का हिस्सा है तथा ग्रामवासियों को इससे लाभ होता है। हमारे पास गतिविधियों के निर्गतों की लगातार शृंखला, ग्रामीण-शहरी विभाजन के अनुसार है। CSO ने ऐसे विभाजन में यह शृंखला केवल निवल घरेलू उत्पाद के लिए, प्रचलित कीमतों (current prices) पर, वर्ष 1970-71, 1980-81 तथा 1993-94 के लिए, उपलब्ध करायी है। इन आँकड़ों की सहायता से हमें गतिविधियों में बदलाव के बारे में कुछ जानकारी मिलती है।

इन आँकड़ों की सहायता से हम यह जान सकते हैं कि वर्ष 1970-71 में ग्रामीण क्षेत्र से 62.5 प्रतिशत निवल घरेलू उत्पाद प्राप्त हुआ, जहाँ 80 प्रतिशत से ज्यादा जनसंख्या रहती (काम करती) थी, जबकि शहरी क्षेत्र में जहाँ 20 प्रतिशत से कम जनसंख्या रहती थी (काम करती थी), वहाँ से 37.5 प्रतिशत निवल घरेलू उत्पाद प्राप्त हुआ था। इसलिए शहरी क्षेत्रों में प्रतिव्यक्ति आय ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में करीब 2.5 गुना (वास्तव में 2.45 गुना) ज्यादा थी। जब हम 1993-94 के आँकड़े देखते हैं तो हमें मालुम होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में जनसंख्या का अनुपात 6.7 प्रतिशत प्वाइंट (points) से कम हुआ है, निवल घरेलू उत्पाद में इसका योगदान 8.6 प्रतिशत प्वाइंट से कम हुआ है। शहरी क्षेत्र में बिलकुल इसके विपरीत स्थिति है। किंतु 80.2 प्रतिशत प्वाइंट में 6.7 प्रतिशत प्वाइंट का नुकसान (loss), 19.8 प्वाइंट में 6.7

प्वाइंट के लाभ (gain) के समान नहीं है। अतः दोनों क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति आय यह बताती है कि शहरी क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति निवल घरेलू उत्पाद, ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में 2.5 गुना (वास्तव में 2.39 गुना) ज्यादा है। समयावधि में इस अनुपात में कोई गिरावट नहीं आयी है, शहरी क्षेत्र में बेरोजगारी दरें कुछ ज्यादा हैं। अतः लोगों का शहरी क्षेत्रों की ओर आकर्षण कोई बड़ी बात नहीं!

सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र में विभाजन

जब से देश है तब से सार्वजनिक क्षेत्र है। राज्य में सरकारी क्षेत्र है। किंतु स्वतंत्रता से पहले उत्पादन में सार्वजनिक क्षेत्र की उपस्थिति लोक-प्रशासन तथा नियंत्रण से अधिक नहीं थी। विभिन्न कारणों से विभिन्न क्षेत्रों में सरकारी हस्तक्षेप हमारी नीतियों के कारण इस समयावधि में बढ़ा है। आर्थिक गतिविधियों का कोई भी ऐसा बड़ा क्षेत्र नहीं है, जहाँ सार्वजनिक क्षेत्र पूरी तरह अनुपस्थित हो।

वर्ष 1960-61 से हमारे पास विभिन्न उत्पादन क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र के योगदान के आँकड़े हैं। यदि हम एक सरसरी निगाह से देखें तो ऐसा मालूम होता है कि इस समयावधि में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्त्व लगभग सभी क्षेत्रों में बढ़ा है। सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा जो वर्ष 1960-61 में केवल 9 प्रतिशत से बढ़कर 27 प्रतिशत हो गया, यद्यपि बाद में बढ़ने की गति कम हो गयी।

लोक-प्रशासन एक विशुद्ध सार्वजनिक क्षेत्रीय गतिविधि है, तथा मत्स्य पालन में इसकी उपस्थिति देखी जा सकती है। कृषि में उसकी उपस्थिति बढ़ गयी है, किंतु यहाँ इसकी प्रबलता सिंचाई के कारण है, क्योंकि कृषि-क्षेत्र में सिंचाई ही मुख्य गतिविधि है। इसका योगदान वानिकी एवं लट्ठे बनाने के क्षेत्र में अत्यधिक कम हो रहा है। अधिकतर खनन गतिविधि सार्वजनिक क्षेत्र में है तथा इसका योगदान लगभग 80 प्रतिशत है। विनिर्माण क्षेत्र में इसका हिस्सा धीरे-धीरे बढ़ा। यह वर्ष 1960-61 में 7 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 1998-99 में 20 प्रतिशत हो गया। निर्माण क्षेत्र में इसका हिस्सा जो वर्ष 1960-61 में 5 प्रतिशत से कम था, 1998-99 में बढ़कर 16 प्रतिशत हो गया। व्यापार क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र वर्ष 1980-81 से पीछे हट गया तथा इसका हिस्सा 8.5 प्रतिशत ही रह गया। परिवहन क्षेत्र में इसकी भूमिका कम होने के बाद भी महत्त्वपूर्ण है। रेलवे पूरी तौर से भारत सरकार के पास है। सड़क परिवहन में राज्य निगम की एक सार्थक भूमिका है, कम से कम यात्री-परिवहन में। वित्तीय क्षेत्र में भी सरकारी क्षेत्र की उपस्थिति सार्थक रूप से बढ़ी है, जो वर्ष 1960-61 में 6.5 प्रतिशत से बढ़कर 17 प्रतिशत हो गयी। ऐसा 14 मुख्य बैंकों के राष्ट्रीयकरण के कारण हुआ। वर्ष 1975-76 में राष्ट्रीयकरण की एक और खुराक की वजह से यह वर्ष 1980-81 में बढ़कर 27 प्रतिशत हो गयी। वर्ष 1960-61 में इसके 6.5 प्रतिशत होने का मुख्य कारण इम्पीरियल बैंक का स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के रूप में राष्ट्रीयकृत होना था।

संगठित तथा गैर-संगठित क्षेत्र में विभाजन

संगठित क्षेत्र में सभी सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र की संस्थापनाएँ किसी एक नियम जैसे कंपनी एक्ट, सोसायटी एक्ट अथवा कोऑपरेटिव एक्ट के अधीन पंजीकृत है। उनको अपने लेखों को बनाना पड़ता है। वर्ष 1960-61 में संगठित तथा गैर-संगठित का निवल घरेलू उत्पाद में अनुपात 25 : 75 था। समय के साथ संगठित क्षेत्र का अनुपात कुछ उतार-चढ़ाव के साथ बढ़ता गया

तथा वर्ष 1980-81 में यह 30 प्रतिशत के आस-पास पहुँच गया। तभी से इसका हिस्सा लगातार बढ़ रहा है तथा शताब्दी के अंत तक इसके 40 प्रतिशत के आसपास पहुँचने की संभावना है। संगठित क्षेत्र में विनिर्माण का अनुपात 40 प्रतिशत है, तथा सामुदायिक व निजी सेवाओं का अनुपात 30 प्रतिशत, जबकि व्यापार तथा वित्त का अनुपात 25 प्रतिशत रहा।

रोजगार की औद्योगिक संरचना

सभी योग्य लोगों को काम करना चाहिए। बच्चों को काम करने की अनुमति नहीं होनी चाहिए। वृद्ध, बीमार तथा कमजोर लोगों को काम करने की अनुमति नहीं होनी चाहिए। उत्पादन का मशीनीकरण होने पर भी मशीनों को चलाने के लिए मानव की आवश्यकता होती है। लोग जो नियोजित (employed) हैं तथा जो नियोजक (employer) हैं तथा जो स्वयं नियोजित (self-employed) हैं, सभी को श्रमिक माना जाना चाहिए। उनकी संरचनात्मक शक्ति को श्रम-शक्ति कहते हैं। लोग, जो वर्तमान मजदूरी पर काम करने के इच्छुक होते हुए भी अनियोजित हैं, तो उन्हें बेरोजगार समझना चाहिए। यह बोध होते हुए भी कि बहुत सारे लोग अ-नियोजित (unemployed)

सारणी 3.8

श्रमिकों का औद्योगिक वर्गीकरण 1972-73 से 1999-2000

(प्रतिशत में)

	1972-73	*1977-78*	*1983*	*1987-88*	*1993-94*	*1999-00*
कृषि इत्यादि*	74.0	72.0	68.4	64.1	63.9	59.8
खनन व उत्खनन	0.4	0.5	0.6	0.7	0.7	0.6
प्राथमिक क्षेत्र	*74.4*	*72.5*	*69.0*	*64.8*	*64.6*	*60.4*
विनिर्माण	8.8	10.2	10.7	11.3	10.6	12.1
विद्युत, गैस व जल आपूर्ति	0.2	0.2	0.3	0.4	0.4	0.3
निर्माण	1.8	1.7	2.3	3.8	3.2	4.4
द्वितीयक क्षेत्र	*[illegible].8*	*12.1*	*13.3*	*15.5*	*14.2*	*16.8*
व्यापार व वाणिज्य	5.0	5.8	6.9	7.3	7.6	9.4
परिवहन संग्रहण व संचार	1.8	1.9	2.5	2.7	2.8	3.7
अन्य सेवाएँ	8.0	7.7	9.2	9.7	10.5	9.6
तृतीयक क्षेत्र	*14.8*	*14.4*	*18.6*	*19.7*	*20.9*	*22.7*
कुल नियोजन (करोड़)	*23.6*	*27.1*	*30.3*	*32.2*	*37.2*	*39.7*

** पशुधन, वानिकी, मत्स्य पालन, शिकार तथा बागान को मिलाकर।*

स्रोत : *मेन पावर प्रोफाइल इंडिया 1999, इन्स्टीट्यूट ऑफ एप्लाईड मेन पावर रिसर्च, नई दिल्ली। 1999-2000 के लिए पूर्ण ऑकड़े जो कि टास्क फोर्स ऑन एम्लायमेंट ओपरच्यूनीटी, योजना आयोग, भारत सरकार (जून 2001) में दिए गए।*

हैं फिर भी बेरोजगार लोगों की संख्या का प्रतिशत ज्यादा नहीं है (यद्यपि बेरोजगारी के संघटन में अधिकतर लोग शिक्षितों की श्रेणी में आते हैं)। इसका कारण यह है कि गरीब लोग बेरोजगार रहने में असमर्थ हैं। वे लोग किसी दूसरे के खेत, दुकान, फैक्टरी में काम करते हैं अथवा अपने आप को स्वयं किसी भी गतिविधि में व्यस्त रखते हैं। हमें ध्यान रखना चाहिए कि हमारी सांख्यिकी में वे लोग सम्मिलित नहीं हैं जो अपनी घरेलू गतिविधियों में व्यस्त हैं अथवा उनके घर के सदस्य घरेलू गतिविधियों में कार्यरत हैं। हमारे देश की पूरी जनसंख्या के 40 प्रतिशत लोग कार्यरत हैं। इसमें पुरुष-सदस्यों तथा ग्रामीण लोगों का अनुपात अधिक है।

नियोजन के आँकड़े विभिन्न विधियों से प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इनका वर्गीकरण दो वर्गों में किया जा सकता है-- क्षेत्रीय (अथवा औद्योगिक) तथा व्यावसायिक। ये मुख्यतः चार श्रेणियों के लिए हैं, जैसे-- ग्रामीण-पुरुष, ग्रामीण-महिलाएँ, शहरी-पुरुष तथा शहरी महिलाएँ। नियोजन के ऑकड़े जनगणना (Census) तथा राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (NSS) में उपलब्ध हैं। 2001 की जनगणना में विस्तृत आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं जिनकी हमें इस अध्याय के लिए जरूरत है। अतः हम NSS के आँकड़ों का प्रयोग करेंगे। यद्यपि एन.एस.एस. आँकड़े वर्ष 1972-73 से पांच वर्ष के अंतराल में उपलब्ध हैं। सारणी 3.8 देखें। यह कहना आसान होगा कि सत्तर के दशक की शुरुआत से 3/4 श्रमिक प्राथमिक गतिविधियों/कृषि क्षेत्र में कार्यरत थे। शताब्दी के अंत तक उनकी संख्या घटकर 3/5 हो गयी। विनिर्माण में श्रमिकों का अनुपात धीरे-धीरे 9.00 प्रतिशत से बढ़कर 12.00 प्रतिशत से कुछ ज्यादा हो गया। निर्माण गतिविधि काफी तेजी से बढ़ी। परिणामतः विचाराधीन अवधि में 10.8 प्रतिशत में 6 प्रतिशत प्वाइंट की बढ़ोत्तरी हो गयी। व्यापार तथा वाणिज्य तथा परिवहन गतिविधियाँ भी काफी तेजी से बढ़ी, उनका योगदान (अनुपात) दुगुना हो गया।

यह याद रखना महत्त्वपूर्ण होगा कि हमारा कुल नियोजन भी बढ़ रहा है। इन दिए गए प्रतिशत में कुल नियोजन को गुणा करने पर हमें प्रत्येक क्षेत्र में लोगों के नियोजित होने की संख्या मिलती है। इस समयावधि में कुल नियोजन 16 करोड़ बढ़ गया (लगभग 70 प्रतिशत); जो पिछले 6 वर्षों में 2.5 करोड़ बढ़ा। यह जानने को मिलेगा कि वर्ष 1999-2000 में पहली बार कृषि क्षेत्र में नियोजन घटा तथा 1993-94 की तुलना में यह 50 प्रतिशत से घट गया। इन 6 वर्षों में करीब 3 करोड़ लोग गैर-कृषि क्षेत्र में विलीन हुए। व्यापार विनिर्माण तथा निर्माण क्षेत्र ही मुख्य विलीन करने वाले क्षेत्र थे।

निष्कर्ष

इस अध्याय में हमने स्वतंत्रता प्राप्ति के आरंभ के वर्षों में अर्थव्यवस्था के बारे में एक विचार करने का प्रयास किया तथा देखा कि 20वीं शताब्दी का पहला आधा भाग अर्थव्यवस्था की वृद्धि तथा विविधता की दृष्टि से काफी खराब था। फिर हमने सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि तथा प्रतिव्यक्ति आय के बारे में विचार विमर्श किया। हमने देखा कि 50 वर्षों की समयावधि में सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर 4 प्रतिशत से कुछ ज्यादा थी। विशेषकर 70 के दशक में वृद्धि की दर कम थी। अस्सी तथा नब्बे के दशक में हमारी वार्षिक वृद्धि दर 6 प्रतिशत थी। पूरे 50 वर्षों की समयावधि में प्रतिव्यक्ति आय की वृद्धि दर 2 प्रतिशत से कुछ ज्यादा बढ़ी।

अस्सी तथा नब्बे के दशकों में वृद्धि दर 3.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ़ी। फिर हमने सकल घरेलू उत्पाद का संघटन तथा विभिन्न क्षेत्रों के योगदान में परिवर्तन जानने के लिए विभिन्न क्षेत्रों का पूर्ण योगदान तथा तुलनात्मक योगदान तथा विभिन्न क्षेत्रों के वृद्धि दर का अध्ययन किया। हमने देखा कि कृषि का योगदान सकल घरेलू उत्पाद में चार गुना बढने के बावजूद वर्ष 1950-51 में 50 प्रतिशत से घटकर 1999-2000 में 24 प्रतिशत हो गया। प्राथमिक क्षेत्र का योगदान 60 प्रतिशत से घटकर 27.5 प्रतिशत रह गया। द्वितीयक क्षेत्र का योगदान 13 प्रतिशत से बढ़कर 25 प्रतिशत हो गया, जबकि उसी समयावधि के लिए तृतीयक क्षेत्र का योगदान 28 प्रतिशत से 48 प्रतिशत बढ़ गया।

हमने ग्रामीण तथा शहरी, सार्वजनिक तथा निजी, संगठित तथा असंगठित क्षेत्र के योगदान के बारे में भी चर्चा की। ग्रामीण क्षेत्र का योगदान 1970-71 में 62 प्रतिशत से घटकर 1993-94 में 54 प्रतिशत हो गया जबकि इन क्षेत्रों की जनसंख्या 80 प्रतिशत से घटकर 75 प्रतिशत हो गयी। सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान जो वर्ष 1960-61 में 10 प्रतिशत से कम था, बढ़कर 1998-99 में 25 प्रतिशत से काफी ऊपर हो गया। संगठित क्षेत्र का योगदान वर्ष 1960-61 में 25 प्रतिशत था जो बढ़कर 40 प्रतिशत होने की संभावना है।

अंत में हमने श्रमिकों के विभिन्न क्षेत्रों में विलीन होने के बारे में विचार-विमर्श किया। हमें जानकारी मिली कि कृषि में कार्यरत श्रमिकों का प्रतिशत *लगातार घट रहा है, वर्ष 1972-73* में 3/4 से घटकर 1999-2000 में 3/5 हो गया। निरपेक्ष संख्या भी 1999-2000 में कम हो गई। प्राथमिक क्षेत्र की गिरावट द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्रों में बराबर में बंट गयी।

अभ्यास

1. स्वतंत्रता के समय अथवा कुछ बाद के समय में भारतीय अर्थव्यवस्था की क्या स्थिति थी? संक्षेप में चर्चा कीजिए।
2. वर्ष 1950-51 से पूरे पचास वर्षों के लिए तथा प्रत्येक दशक के लिए सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि की चर्चा कीजिए। बढ़ने-घटने का लेखा दीजिए।
3. प्रत्येक दशक में प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि का आशुचित्र दीजिए। चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि-दर की विधि से सत्तर के दशक में वृद्धि दर काफी कम थी, क्यों?
4. एक अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन से आपका क्या तात्पर्य है, समझाइए।
5. साधारण तथा प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र में सम्मिलित गतिविधियों की गणना कीजिए।
6. सारणियों की सहायता से बताइए कि कृषि उत्पादन (विशेषकर खाद्यान्न) में आधिक्य (surplus) तथा हरित क्रान्ति की सफलता के बावजूद कृषि का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान बहुत ज्यादा घट गया।

7. आजादी के बाद की समयावधि में द्वितीयक क्षेत्र तथा इसके उप-क्षेत्रों का कैसा व्यवहार रहा?
8. वर्ष 1950-51 से तृतीयक क्षेत्र की वृद्धि तथा सकल घरेलू उत्पाद में इसके योगदान की मुख्य विशेषताएँ बताइए।
9. सकल घरेलू उत्पाद में क्षेत्रीय संघटन के बारे में चर्चा कीजिए।
10. सार्वजनिक क्षेत्र को आप कैसे परिभाषित करेंगे? वर्ष 1960-61 से इसमें कैसे वृद्धि हुई?
11. ग्रामीण क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान में गिरावट, जो कि जनसंख्या में गिरावट से ज्यादा है, के आशय पर चर्चा कीजिए।
12. संगठित क्षेत्र के योगदान के पार्श्वचित्र (profile) में कैसे बदलाव हो रहा है?
13. नियोजन के औद्योगिक तथा व्यावसायिक वितरण में अंतर कीजिए।
14. वर्ष 1972-73 में भारतीय अर्थव्यवस्था में श्रमिकों के औद्योगिक वितरण के बारे में चर्चा कीजिए।

अध्याय 4

आर्थिक आधारिक संरचना

परिचय

आधारिक संरचना का तात्पर्य मूलभूत ढाँचे से है जिसका मतलब नींव है। इसको सभी आर्थिक गतिविधियों का आधारभूत कहा जा सकता है, चाहे यह कृषि से संबंधित हो या उद्योग अथवा पर्यटन से। संरचना का प्रयोग किसी प्रकार के स्थायी संस्थापन की मूलभूत आगतों की आपूर्ति के लिए लंबी समयावधि में प्रयोग होता है, जैसे रेल लाइनें, सड़कें, बाँध, नहर प्रणाली, विद्युत स्टेशन, उपग्रह व पाइपलाइनों, विद्यालय, विश्वविद्यालय व संस्थान, औषधालय तथा अस्पताल, राज्यों की सेवाओं के विभिन्न अंगों, जैसे– पुलिस तथा कानून व्यवस्था के लिए भवन इत्यादि।

सभी आर्थिक गतिविधियों में आगतों को निर्गतों में परिवर्तित करने के लिए शक्ति की जरूरत होती है। शक्ति की जरूरत कुछ समय में वस्तुओं को परिरक्षित करने के लिए भी होती है। इसका प्रयोग कम समय में उत्पादनों को परिपक्व करने के लिए भी होता है। घरों में भी शक्ति ऊर्जा का प्रयोग करने की जरूरत होती है। सभी गतिविधियों के लिए परिवहन की जरूरत होती है। कच्चा माल उत्पादन स्रोतों से काफी दूर हो सकता है। उत्पादन इकाई तथा उपभोग इकाई बाजार से दूर हो सकती है। एक उत्पाद को उत्पादन तथा उपभोग दोनों के लिए प्रयोग किया जा सकता है। एक उत्पादन इकाई से दूसरी उत्पादन इकाई तक माल ढुलाई की आवश्यकता हो सकती है। लोगों को भी आर्थिक तथा सामाजिक कारणों से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की जरूरत होती है। परिवहन तथा आराम के लिए भी किसी न किसी प्रकार की ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

आज हम संचार व्यवस्था से न जुड़े हुए होने की बात सोच भी नहीं सकते हैं। डाक व तार के अतिरिक्त लोग तथा गतिविधियाँ दूर-संचार के माध्यम से जुड़ी हुई हैं। हम दूर-संचार में क्रान्ति के दौर से गुजर रहे हैं। चाहे व्यवसाय हो अथवा मनोरंजन, सूचना तकनीकी में एक बड़ी क्रान्ति आई है। हम देख सकते हैं कि बैंकिंग, वित्त व बीमा गतिविधियों में जिसमें बचत तथा निवेश करने वाले लोग एक दूसरे से एक अथवा अन्य तरीकों से जुड़े हुए हैं। यद्यपि इन गतिविधियों में बहुत समस्याएँ हैं फिर भी इन गतिविधियों के बिना रहने की सोच भी नहीं सकते हैं।

अतः हम देखते है कि घरेलू उपकरणों में घरों में प्रकाश करने के लिए, गर्म व ठंडा करने के लिए तथा अन्य घरेलू उपकरणों के लिए और अधिक शक्ति ऊर्जा की आवश्यकता होती है। वस्तुओं की ढुलाई के लिए बहुत सारे उपकरण तथा मशीनों का प्रयोग होता है। यही बात दूर-

संचार के लिए भी लागू होती है। बैंकिंग तथा वित्तीय गतिविधियों में व्यावसायिक लेन-देन की प्रबलता होती है। संपत्ति का बीमा करने का व्यवसाय, जीवन के बीमा करने की तुलना में अधिक होता है।

इन सभी संरचनाओं में विकास मानव शक्ति के विकास के बिना संभव नहीं है, जिसके आधारभूत में शिक्षा है। हम जो उत्पादन करते हैं उसका आनंद नहीं ले सकते यदि हमारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं हो तो। यदि हम स्वस्थ नहीं रहेंगे तो उत्पादन नहीं कर सकते हैं। एक अस्वस्थ जनसंख्या उपलब्ध तकनीकी से कम उत्पाद करती है, जबकि अधिक उपभोग की जरूरत होती है। किसी भी मानव के लिए कम से कम अच्छी छत की जरूरत होती है। घटिया किस्म के मकान के कारण काफी संघर्ष करना पड़ता है जो हमारे उत्साह को कम कर देता है।

आधारिक संरचना को हम दो वर्गों, आर्थिक व सामाजिक में विभाजित कर सकते हैं। शक्ति ऊर्जा, परिवहन तथा संचार को आर्थिक वर्ग में तथा शिक्षा, स्वास्थ्य व आवास को सामाजिक में रखते हैं। यह विभाजन संतोषजनक नहीं है, क्योंकि पहला वर्ग प्रायः प्रत्यक्ष रूप से अच्छे जीवन स्तर में योगदान देता है तथा दूसरा वर्ग उच्च उत्पादकता के लिए उत्तरदायी है। फिर भी शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आवासों का उपभोग लोगों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होता है तथा वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन में अप्रत्यक्ष रूप से उपयोगी होता है। अतः इनका सामाजिक आधारिक संरचना के रूप में उल्लेख करने का कुछ आधार है।

इस अध्याय में हम आर्थिक आधारिक संरचना के तीन क्षेत्रों का वर्णन करेंगे, ये क्षेत्र हैं– ऊर्जा, परिवहन तथा संचार। अगले अध्याय में सामाजिक आधारिक संरचना तीन अन्य क्षेत्रों–शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आवासे– के बारे में अध्ययन करेंगे।

ऊर्जा

बिना ऊर्जा के कोई भी मानव गतिविधि नहीं हो सकती है। मानव इतिहास में लंबे समय में मानव की पेशीय शक्ति को लगातार घरेलू पशुओं की शक्ति से सहायता मिलती थी। बहुत से कृषि क्रिया-कलाप तथा ढुलाई का काम जैसे कृषि-उत्पादन खाद्यान्न तथा गैर-खाद्यान्न फसलों का बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, ऊँटगाड़ी तथा गधों की सहायता से होता था। जल-प्रवाह भी कई प्रकार से सहायक था, जैसे लकड़ी के लट्ठों से लेकर, नावों तथा जहाजों को बहाकर ले जाने में। जब भी तथा जहाँ भी संभव हुआ सूर्य के प्रकाश, हवा तथा गिरते हुए पानी का उपयोग किया जाता था।

यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि ईंधन की लकड़ी, कृषि अपशिष्ट तथा गोबर, तीन ऊर्जा स्रोत हैं। इनका उपयोग हमारे गाँवों तथा कस्बों में आज भी खाना पकाने में प्रयोग होता है। वर्तमान में हम ईंधन की लकड़ी का 50 मिलियन टन, कृषि अपशिष्ट 66 मिलियन टन प्रयोग करते हैं, जिनका प्रतियोगी रूप में प्रयोग, पशुओं के लिए दाना, घास, छत की लकड़ी, खाद के रूप में होता है। हमारे पशु लगभग 325 मिलियन टन गोबर का उत्पादन करते हैं जिसमें से 75 मिलियन टन खाद के रूप में प्रयोग होता है तथा शेष गोबर, खाना पकाने के काम आता है। इनको साधारणतया गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा स्रोत के रूप में जाना जाता है। ऐसा माना जाता है कि पचास के दशक के पूर्वार्ध में गैर-वाणिज्य ऊर्जा का अनुपात कुल ऊर्जा में 74 प्रतिशत था, जो कि नब्बे के दशक के उत्तरार्ध में घटकर 34 प्रतिशत रह गया। ईंधन की लकड़ी

का अनुपात कुल गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा में लगभग 2/3 है। यह ध्यान देना चाहिए कि पूरी गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा का उपयोग घरेलू क्षेत्र में किया जाता है।

बाद में लोगों ने विनिर्माण क्षेत्र में भाप शक्ति का प्रयोग करना सीख लिया। ईंधन का प्रयोग पानी के वेग में भाप बनाने में होता था जिससे (भाप) से अंततः यांत्रिक शक्ति उत्पन्न करने के काम आता था। जब यूरोप में जंगलों की कमी हो गयी थी तो उन्होंने जंगलों से लकड़ी ले जाना बंद कर दिया तथा कोयले की खुदाई भी बन्द कर दी। कुछ समय तक रेलगाड़ियाँ भाप-ऊर्जा से चलती थीं। भाप के ईंजन का आविष्कार तथा पेट्रोलियम की खोज ने परिवहन में प्रयोग होने वाली शक्ति का दृश्य बदल दिया, जबकि दूसरी ओर विद्युत शक्ति ने विनिर्माण का दृश्य बदल दिया।

ऊर्जा के प्रयोग के प्रतिरूप (Pattern of Energy Use)

आधुनिक वाणिज्यिक ऊर्जा पर विस्तृत चर्चा करने से पहले यह अच्छा होगा कि हम ऊर्जा उपभोग के प्रतिरूप में परिवर्तन के बारे में जानें। यह ध्यान देना चाहिए की सभी ऊर्जा का कुल जोड़ करने के लिए हमें उनको एक समान इकाई में बदलना होगा। ऐसी एक इकाई मिलियन टन तेल के तुल्यमान (MTOE अर्थात् मिलियन टन ऑफ आइल इक्विलेंट) है। एक बार जब इनको समान इकाई में परिवर्तित कर देते हैं तो उनके प्रतिशत की संगणना कर सकते हैं। कोयला, भूरा कोयला, पेट्रोलियम तथा गैस, ऊर्जा के प्राथमिक स्रोत हैं। इनका (ऊर्जा) विनिर्माण प्रक्रिया तथा विद्युत शक्ति के उत्पादन में प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग होता है। किंतु शक्ति के उत्पादन में इनका प्रयोग वाणिज्यिक ऊर्जा के अंतिम स्रोत के रूप में होता है। हमने पहले से भी देखा है कि लकड़ी, कृषि अवशेष तथा पशु अपशिष्ट का अब गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा के रूप में प्रयोग होता है। हमें ध्यान देना चाहिए कि सूर्य के प्रकाश, हवा, लहरें, बायोमास तथा जैविक पदार्थों पर आधारित ऊर्जा को वाणिज्यिक माना जाता है। अतः हम प्रारंभिक ऊर्जा को वाणिज्यिक तथा गैर-वाणिज्यिक में बाँटेंगे।

सारणी 4.1
ऊर्जा के उपभोग के प्रतिरूप

(मिलियन टन तेल तुल्यमान प्रतिशत में)

वर्ष	*प्राथमिक उर्जा*		*अंतिम वाणिज्यिक उर्जा*			
	वाणिज्यिक	*गैर-वाणिज्यिक*	*कोयला*	*पेट्रोलियम पदार्थ*	*प्राकृतिक गैस*	*विद्युत*
1953-54	28.4	71.6	80.1	16.7	—	03.2
1960-61	34.7	65.3	75.3	19.9	—	04.8
1970-71	40.6	59.4	56.1	34.1	0.6	09.2
1980-81	46.9	53.1	47.9	40.3	1.1	10.7
1990-91	59.3	40.7	35.9	43.6	5.5	15.0
1996-97	65.9	34.1	28.9	47.7	6.3	17.1

स्रोत : नौवीं पंचवर्षीय योजना 1997-2002, भाग II , योजना आयोग, भारत सरकार।

वाणिज्यिक ऊर्जा को कोयला, पेट्रोलियम पदार्थ, प्राकृतिक गैस तथा विद्युत में विभाजित करेंगे। सारणी 4.1 देखें।

सारणी मुख्यतः समयावधि में अंशतः ऊर्जा के प्रयोग में तकनीकी बदलाव तथा आधुनिकीकरण तथा वातावरण से जुड़ी जागरूकता के बारे में दर्शाती है। सापेक्ष परिवेश में वाणिज्यिक ऊर्जा के प्रयोग में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। यद्यपि पचास के दशक की शुरूआत से कोयले का उपभोग दस गुना बढ़ा है परंतु इसका अंतिम प्रत्यक्ष उपभोग अनुपात के रूप में बहुत कम हुआ। पेट्रोलियम की कमी के बावजूद इसका अंतिम वाणिज्यिक ऊर्जा के रूप में प्रयोग लगभग 50 प्रतिशत है।

इसके बाद हम वाणिज्यिक ऊर्जा के प्रत्येक रूप जिसमें कोयला तथा भूरा कोयला, पेट्रोलियम (और गैस) तथा विद्युत सम्मिलित हैं, की चर्चा करेंगे।

कोयला

कोयले का वाणिज्यिक दोहन वर्ष 1774 में दामोदर घाटी के निकट रानीगंज में शुरू हुआ था। यह देश के कई भागों मुख्यतः बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा आंध्रप्रदेश में मिलता है। वर्तमान में हमारे पास 2,00,000 मिलियन टन कोयला, जिसमें 80,000 मिलियन टन प्रमाणित तथा 80,000 मिलियन टन सांकेतिक तथा 40,000 मिलियन टन अनुमानित है।

वर्ष 1853 में रेलवे के आगमन से जिसमें भाप के इंजन का प्रयोग होता था, कोयले का प्रयोग लगातार बढ़ता गया तथा पचास वर्षों में इसका प्रयोग 1 मिलियन टन से बढ़कर 6 मिलियन टन हो गया। अगले पचास वर्षों में (1950-51 से) यह बढ़कर 32-33 मिलियन टन हो गया जबकि स्वतंत्रता के बाद के पचास वर्षों में कोयले का उपभोग (भूरे कोयले को मिलाकर) 10 गुने से ज्यादा बढ़कर 332 मिलियन टन हो गया। आजकल, कोयला भारत में वाणिज्यिक ऊर्जा का एक प्रमुख प्राथमिक स्रोत है। सारणी 4.2 देखें।

कोयला कई उद्योगों में प्रक्रिया तथा ऊर्जा दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। ऊर्जा के लिए इसका प्रयोग सीधे किया जाता है तथा, यदि यह अच्छे किस्म का होता है तो इसे कोक में परिवर्तित कर दिया जाता है। गैर-कोकिंग कोयले का प्रयोग समय के साथ बढ़ गया है, क्योंकि थर्मल पावर स्टेशन इस पर फीड स्टॉक के लिए निर्भर हैं, जैसा सत्तर के दशक में सोचा गया था। इसके लिए जहाँ सत्तर के दशक के आरंभ में कुल कोयले के एक-तिहाई भाग का प्रयोग होता था वहीं इसके लिए कुल कोयले के दसवें भाग का प्रयोग होता है। कोक (कच्चा व पक्का) का प्रयोग

सारणी 4.2
कोयले तथा भूरे कोयले का उत्पादन

(मिलियन टनों में)

	1950-51	*1960-61*	*1970-71*	*1980-81*	*1990-91*	*2000-01*
कोयला	32.20	55.23	72.95	113.91	211.73	309.63
भूरा कोयला	—	—	03.39	5.11	13.77	22.95
कुल योग	**32.20**	**55.23**	**76.34**	**119.02**	**225.50**	**332.58**

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 2001-02, आर्थिक विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।

मूलतः धातु-कर्म (metallurgical) उद्योगों जैसे लौह तथा इस्पात संयंत्र (पिग आयरन के उत्पादन के लिए) तथा गैर-धातु कर्म (non-metallurgical) प्रतिशत हिस्सा कोक की भट्टी में सख्त उत्पादन में प्रयोग होता है। हार्डकोक फिर इस्पात संयंत्र प्लान्ट में प्रयोग होता है। पचास के दशक के

सारणी 4.3

विभिन्न क्षेत्रों के अनुसार कोयले का उपभोग

(मिलियन टनों में)

	पावर	इस्पात	सीमेंट	रेलवे	अन्य	कुल
1980-81	34.5	17.6	4.3	10.9	27.7	95.0
1885-86	72.9	24.5	7.9	9.1	40.7	155.1
1990-91	116.6	24.5	10.1	5.0	47.0	205.2
1995-96	184.5	26.4	11.0	0.3	48.9	271.1
2000-01						

स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट, 2000-01, कोयला मंत्रालय, भारत सरकार।

उद्योगों में होता है। गैर-कोकिंग कोयले का प्रयोग अन्य उद्योगों में भी होता है। इसका प्रयोग खाना बनाने (घरेलू तथा व्यावसायिक) में होता है। इसके उपभोग-आँकड़ों के लिए सारणी 4.3 देखें।

लिगनाइट (भूरा कोयला) कोयले के समान होता है, जिसे भूरा कोयला कहते हैं। इसमें कोयले की तुलना में कम ऊर्जा होती है। इसका उत्पादन लगभग 20 मिलियन टन होता है। भूरे कोयले के पिट-हेड स्टेशन के निकट वाले थर्मल पावर स्टेशन इसे फीड स्टॉक के रूप में प्रयोग करते हैं। भूरे कोयले की चूरी के गोले बनाकर इनको घरेलू ईंधन के रूप में प्रयोग करते हैं। भूरा कोयला गुजरात तथा तमिलनाडु में मिलता है।

लगभग 66 प्रतिशत तक कोयले का उपभोग थर्मल पावर स्टेशन पर फीड स्टॉक के रूप में होता है। सत्तर के दशक में यह सर्वसम्मति से निर्णय किया गया था कि कोयले का प्रयोग विद्युत उत्पादन, थर्मल पावर के रूप में बढ़ाया जाए, परंतु इसमें कुछ निश्चित सीमाएँ हैं। कोक का 10

शुरुआत में रेलवे इसका मुख्य उपभोक्ता था परंतु अब इसका प्रयोग नगण्य हैं। 5 प्रतिशत तक कोयले का प्रयोग कोयले की खानों में होता है। यह वास्तव में चिंता का विषय है कि कोयले का स्टाक समाप्त होने पर क्या होगा। उपभोग की वर्तमान दर से प्रमाणित स्टॉक शायद 250 वर्षों तक रहेगा। हमारी मांग के बढ़ने की आशा है तथा ऐसी भविष्यवाणी की जाती है कि यह स्टॉक 125 वर्षों से ज्यादा नहीं रहेगा।

पेट्रोलियम

भारत में तेल की खुदाई डिगबोई में वर्ष 1901 में हुई। इसकी मात्रा बहुत कम थी। उस समय इसकी आवश्यकता उतनी नहीं थी जितनी आज है। मोटर परिवहन उतना दिखाई नहीं देता था, जिसमें बहुत पेट्रोल/डीज़ल की जरूरत हो। घरों में प्रकाश के लिए मिट्टी के तेल का प्रयोग होता था। उस समय रेलगाड़ियाँ भाप के इंजन से चलायी जाती थीं।

मध्य पूर्व के बहुत से देश इसलिए धनी नहीं हैं क्योंकि उनकी अर्थव्यवस्था विकसित है बल्कि इसलिए कि उनके पास तेल के भंडार हैं। वर्तमान प्रौद्योगिकी ऊर्जा के लिए तेल पर निर्भर है तथा कुछ हद तक प्रक्रिया के लिए भी निर्भर है। हम बहुत से पेट्रोलियम पदार्थों का प्रयोग करते हैं यह बिना जाने कि ये किन पदार्थों से बने हैं। कच्चे पेट्रोलियम से हमें पेट्रोल, डीज़ल, केरोसिन, गेसोलिन, मिट्टी का तेल, बिटूमेन, पेराफिन, मोम तथा कोलतार मिलता है। पहले यह प्रतीत होता था कि तेल का भंडार केवल असम में है। स्वतंत्रता के बाद वर्ष 1956 में हमने तेल व प्राकृतिक गैस निदेशालय की स्थापना की। बाद में 1959 में इसका परिवर्तन तेल व प्राकृतिक गैस आयोग में कर दिया गया। आयोग ने इसमें बहुत रुचि दिखाई तथा असम में और भंडारों की खोज की। 1961 अंकलेश्वर (गुजरात) में तेल निकला तथा बाद में कैम्बे बेसन (महाराष्ट्र) में। तथापि वर्ष 1960-61 तक हम 0.5 मिलियन टन से ज्यादा तेल का उत्पादन नहीं कर सके। किंतु 20 वर्ष बाद 1980-81 में हमने 20 गुना अधिक 10.5 मिलियन टन तेल का उत्पादन किया। अगले 20 वर्षों में अर्थात् शताब्दी के अंत तक हमारे कच्चे तेल का उत्पादन अभी भी 32 मिलियन टन के लगभग था। यह ध्यान देने योग्य महत्त्वपूर्ण बात है कि हमारे तेल के उपभोग की गति हमारे तेल के घरेलू उत्पादन से अधिक है। जब हम 10 मिलियन टन उत्पादन करते थे तब हमारा उपभोग 25 मिलियन टन होता था। जब हम 30 मिलियन टन उत्पादन करते हैं तो 85 मिलियन टन उपभोग करते हैं। इस दबाव से हमें लगभग 45-50 मिलियन टन आयात करना पड़ता है। हमने अपना स्वयं उत्पादन स्तर भविष्य में बचत के लिए संरक्षित कर दिया है। शताब्दी के पहले वर्ष में हमारा आयात बढ़कर 74 मिलियन टन हो गया। कच्चे तेल के अलावा हम अन्य पेट्रोलियम पदार्थों का भी आयात करते हैं। इस क्षेत्र में आयात तथा उत्पादन की दृष्टि से विकास के लिए सारणी 4.4 देखें।

प्राकृतिक गैस हमारा नया संसाधन है, तथा इसके उत्पादन के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकी का विकास हो गया है। सत्तर के दशक की शुरुआत में वार्षिक उत्पादन 1.5 बिलियन क्यूबिक मीटर था, अब हम लगभग 30 बिलियन क्यूबिक मीटर का उत्पादन करते हैं। इसको द्रवित (liquified) करके इसका प्रयोग घर में खाना पकाने की गैस तथा थर्मल प्लांट में ईंधन के रूप में करते हैं। पहले इसको जला दिया जाता था क्योंकि इसका

सारणी 4.4

पेट्रोलियम सांख्यिकी : उत्पादन, उपलब्धता तथा शोधन

(मिलियन टनों में)

	1950-51	*1960-61*	*1970-71*	*1980-81*	*1990-91*	*2000-01*
उत्पादन	0.3	0.5	6.8	10.5	33.0	32.4
आयात		6.0	11.7	16.2	20.7	74.1
उपलब्धता		6.5	18.5	26.7	53.7	106.5
रिफाइनरी	0.3	6.6	18.4	25.8	51.8	103.4

स्रोत : *आर्थिक सर्वेक्षण 2001-02, आर्थिक विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।*

उत्पादन करने के लिए हमारे पास कोई प्रौद्योगिकी नहीं थी।

कच्चे तेल तथा प्राकृतिक गैस दोनों के भंडार के बारे में जानना चाहिए। हमारे पास पुनः प्राप्त करने योग्य कच्चे तेल 650 मिलियन टन तथा प्राकृतिक गैस 625 मिलियन क्यूबिक मीटर का भंडार शेष है। कच्चे तेल तथा प्राकृतिक गैस के वर्तमान उत्पादन दर से हमारा स्टॉक 20-25 वर्षों में समाप्त हो जाएगा। इसीलिए हम अपना उत्पादन स्तर नहीं बढ़ा रहे हैं तथा आयात पर निर्भर हैं। तेल के नये भंडार के खोज की संभावना है, फिर भी वैकल्पिक प्रौद्योगिकी विकसित करने की तथा पेट्रोलियम बचाने की जरूरत है।

विद्युत

आज जो कस्बों, शहरों, महानगरों में रहते हैं वे विद्युत के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। अधिक कोयला तथा प्राकृतिक गैस का प्रयोग विद्युत उत्पादन में हो जाता है। जल विद्युत तथा परमाणु नाभिकीय शक्ति थर्मल पावर के सहयोगी के रूप में प्रयोग होती है। यह किलोवाट आवर्स् (KWH) में उत्पादित होती है। एक 1000 वाट का बल्ब एक घंटे जलने से एक किलोवाट-आवर ऊर्जा का उपभोग करता है। एक 1000 वाट क्षमता वाला जनरेटर जब पूरी क्षमता से चलता है तो एक घंटे में एक किलोवाट ऊर्जा का उत्पादन करता है। सामान्य भाषा में इसको यूनिट कहते हैं। 1950 में हमने 6.6 बिलियन KWH विद्युत पैदा की थी। आज हम 80 गुना अधिक, 527 बिलियन KWH विद्युत पैदा करते हैं। विद्युत का कुछ हिस्सा उद्योगों द्वारा अपने उपभोग के लिए होता है। ऐसे प्लांट को केपटिव प्लांट तथा ऐसी विद्युत को गैर-उपयोगिता (non-utility) उत्पादन कहेंगे।

विद्युत उत्पादन के तीन आधारभूत स्रोत हैं- तापीय (थर्मल), जलीय (हाइड्रो) तथा नाभिकीय (न्यूक्लियर)। स्वतंत्रता के बाद हमने जलीय विद्युत उत्पादन पर अधिक बल दिया जिसे हम हाइडिल (जलीय विद्युत का संक्षिप्त रूप) कहते हैं। किंतु, सत्तर के दशक के मध्य से हमने कोयले का उपभोग कर थर्मल विद्युत उत्पादन करने का निर्यण लिया। नाभिकीय शक्ति का भी इसमें थोड़ा योगदान है। लगभग 10 प्रतिशत विद्युत का उत्पादन उद्योगों द्वारा स्वयं-उपभोग के लिए किया जाता है। सारणी 4.5 देखें।

कौन इस विद्युत का उपभोग करता है? निश्चित ही गैर-उपयोगिता के द्वारा उत्पादित विद्युत का उद्योगों द्वारा उपभोग होता है। किंतु उपयोगिता द्वारा उत्पादित विद्युत का उपभोग उद्योगों कृषि, रेलवे, वाणिज्यिक संस्थापनाओं तथा घरों के द्वारा किया जाता है। इन वर्गों में विद्युत वितरण नीचे सारणी 4.5 में प्रस्तुत किया गया है।

हम देखते हैं कि जैसे-जैसे जोतों की संख्या बढ़ रही है, यद्यपि वे बहुत छोटे हैं, वैसे-वैसे विद्युत का प्रयोग कृषि के विभिन्न प्रचालनों में बढ़ रहा है। वास्तव में 50 वर्षों में विद्युत का उपयोग कृषि प्रचालनों में 500 गुना बढ़ा है। घरेलू उपभोग भी अत्यधिक बढ़ा है। विद्युत का उपभोग उद्योगों में तुलनात्मक घटा है फिर भी यह (उपभोग) सबसे अधिक है। यदि हम बिना-उपयोगिता की गणना करें, जो केवल उद्योगों के लिए है, तब उद्योगों में इसका उपभोग लगभग 37 प्रतिशत होगा तथा कृषि में 30 प्रतिशत से कुछ कम होगा। हम यह देखकर संतोष करते हैं कि 5 लाख से अधिक गांवों का विद्युतीकरण हुआ है तथा 1.27 करोड़ से अधिक पम्पसेटों को विद्युत ऊर्जा देकर चालू किया गया है, हमें यह याद रखना चाहिए

सारणी 4.5

विद्युत उत्पादन (सकल) बिलियन KWH में

वर्ष	उपयोगिता					
	थर्मल	हाइड्रो	न्यूक्लियर	कुल	गैर-उपयोगिता	कुल
1950-51	2.6	2.5	—	5.1	1.5	6.6
1960-61	9.1	7.8	—	16.9	3.2	20.1
1970-71	28.2	25.2	2.4	55.8	5.4	61.2
1980-81	61.3	46.5	3.0	110.8	8.4	119.3
1990-91	178.7	71.7	6.1	264.3	25.1	289.4
2000-01	386.8	80.6	13.3	480.7	46.0	526.7

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 2001-02, आर्थिक विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।

सारणी 4.6

उपभोक्ता-श्रेणी अनुसार उपयोगिता में विद्युत का उपभोग

(प्रतिशत में)

वर्ष	औद्योगिक	कृषि	वाणिज्यिक	संकर्षण	घरेलू	अन्य
1950-51	62.6	3.9	7.5	7.4	12.6	6.0
1960-61	69.4	6.0	6.1	3.3	10.7	4.5
1970-71	67.6	10.2	5.9	3.2	8.8	4.3
1980-81	58.4	17.6	5.7	2.7	11.2	4.4
1990-91	44.2	26.4	5.9	2.2	16.8	4.5
2000-01	33.9	31.2	6.4	2.3	21.2	5.0

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 2001-02, आर्थिक विभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।

कि 60 प्रतिशत ग्रामीण परिवार तथा 20 प्रतिशत शहरी परिवार विद्युत शक्ति से जुड़े हुए नहीं हैं।

गैर-परंपरागत ऊर्जा

जीवाश्म ईंधनों से संबंधित समस्याओं, जैसे रिक्तीकरण (depletion) तथा प्रदूषण के बढ़ने के कारण गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों को विकसित करने पर बहुत बल दिया जा रहा है। इनमें से कुछ स्रोतों के परंपरागत प्रयोग की तकनीक विकसित नहीं थी। फिर भी सौर-ऊर्जा के सहित ऊर्जा के सभी रूपों को पहले विद्युत में परिवर्तित करना पड़ता है। बॉयोमास, वायु, जलीय अपशिष्ट का परिवर्तन, ज्वार/लहरें (waves) समुद्र के ऊपर तापमान के तथा भूतापीय ऊर्जा सभी इस तरह की ऊर्जा के रूप हैं। इनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है कम से कम उपयोगी संपूरक के रूप में। रासायनिक स्रोत जैसे ईंधन कोशिका और हाइड्रोजन का जलना भी इसके रूप हैं। फिर भी बहुत से संदर्भ में पर्याप्त प्रौद्योगिकी को विकसित करने की जरूरत है। हवा में ऊर्जा की उत्पत्ति पहले से ही

कई जगहों पर हो रही है। लगभग 204 ऐसी जगहें हैं, जहाँ पर विद्युत ऊर्जा उत्पादन के लिए हवा का प्रयोग होता है। निम्नलिखित राज्यों में घूमते हुए हवा के टरबाइन देखे जा सकते हैं, जैसे– आंध्रप्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु तथा राजस्थान। सौर तापीय ऊर्जा का प्रयोग सौर-कूकर में होता है। फिर भी इसकी सफलता सीमित है। वर्तमान में हम ज्ञात क्षमता का केवल 3 प्रतिशत ही ऊर्जा उत्पादन करते हैं।

परिवहन

बहुधा वस्तुओं का उत्पादन तथा उपभोग विभिन्न जगहों पर होता है। उत्पादन प्रक्रिया के लिए कच्चा माल विभिन्न स्थानों पर मिलता है। कुछ वस्तुओं का स्टॉक बिक्री के स्थान से अलग होता है। लोग रहते एक जगह तथा काम दूसरी जगह पर करते हैं। लोग एक जगह से दूसरी जगह समारोह में सम्मिलित होते हैं तथा तीर्थयात्रा पर घूमने जाते हैं। लोग लगातार किसी न किसी प्रकार के वाहन का प्रयोग करते हैं, जो बैलगाड़ी से नाव तक, रेलवे से सड़क तक, हवाई जहाज से जलयान तक हो सकता है। हमें विशेषकर दो वस्तुओं की आवश्यकता होती है एक, माध्यम तथा दूसरा, वाहक। पानी के रास्तों–नदियों, नहरों, झीलों तथा समुद्र को नाव व जलयान की आवश्यकता होती है। वायु मार्गों को वायुयान तथा हेलीकाप्टर, रेलवे को गाड़ियों की, तथा आजकल सड़क को रिक्शा, तांगो के अलावा ट्रक, बस, कार की आवश्यकता होती है। पानी के पाइप लाइन की तरह अब हम कच्चे तेल, पेट्रोलियम पदार्थों तथा प्राकृतिक गैस को पाइपलाइन का परिवहन करते हैं।

रेलवे

रेलवे, माल तथा यात्रियों के परिवहन का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। 150 वर्ष पहले, वर्ष 1853 में, इसकी साधारण शुरुआत हुई थी जब पहली रेलगाड़ी 16 अप्रैल को बम्बई (अब मुम्बई) तथा थाणे के बीच 20 मील चली थी। 19वीं शताब्दी में यह एक बहुत बड़े नेटवर्क के रूप में विकसित हो गयी है। भारत में वर्ष 1900 तक 25000 मील (40000 km) की रेल लाइनें हो गयी थीं, जिसमें वर्तमान पाकिस्तान, बांगलादेश तथा बर्मा सम्मिलित थे। अगले 50 वर्षों में केवल 10,000 मील (16000 kms) ही और जुड़ीं तथा वर्तमान भारत में 1950 तक 54,000 कि.मी हो गयीं।

अंग्रेजों ने रेलवे का विकास प्रशासनिक तथा वाणिज्यिक (व्यावसायिक) उद्देश्य से किया था। इससे उनको संख्या नियंत्रण में सहायता मिली तथा देश के रास्ते अंग्रेजों के लिए खाद्य पदार्थ तथा कच्चा माल लाने तथा अपने उत्पादनों के बिक्री के लिए खुल गए। यदि हम रेलवे के निर्माण को विस्तार से देखें तो मालूम होगा कि इसकी शुरुआत बन्दरगाह शहरों से हुई तथा अन्दर के हिस्सों में फैल गयी। इसका मुख्य उद्देश्य कृषि उत्पादों, विशेषकर कपास, के निर्यात को सुविधा देना था। इसका विकास विदेशी व्यापार के लिए

अंग्रेजों की रुचि का प्रमाण

यदि आप एक साधारण डिब्बे में बैठे हैं तथा आपकी गाड़ी किसी रेल पुल पर रुकती है तो आप ब्रिटिश कंपनियों के नाम पढ़ सकते हैं जिन्होंने पुल बनाने के लिए इस्पात के गर्डर की आपूर्ति की थी।

ज्यादा था न कि आंतरिक व्यापार अथवा देश में उद्योगों के विकास के लिए। रेलवे का विकास अंग्रेजों के इस्पात तथा अभियांत्रिक उद्योगों के कीमती मालों के बाजार तथा ब्रिटिश कंपनियों के लाभदायक निवेश के लिए था।

भारत सरकार ने निजी रेलवे कंपनियों को बहुत सी सुविधाएँ जैसे मुफ्त जमीन तथा पूंजी पर कम से कम प्रतिफल की गांरटी दी थी। इसका उद्देश्य अधिक-से-अधिक क्षेत्र में रेल लाइनें बिछाना था। निजी स्वामित्व तथा प्रबंधन की आलोचना के कारण भारत सरकार ने निजी कंपनियों को अपने नियंत्रण में वर्ष 1925 में ले लिया। उसी वर्ष पहले विद्युत इंजन का प्रवेश भारतीय रेलवे में हुआ। वास्तव में इसी समय रेलवे बजट मुख्य वित्त बजट से अलग हुआ। रेलवे बजट भारत सरकार के मुख्य (वित्त) बजट से कुछ दिन पहले संसद में प्रस्तुत किया जाता है। वर्ष 1950 से पूर्व सरकार द्वारा राजाओं के राज्य रेलवे अपने नियंत्रण में लेने के बाद रेलवे के राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया पूरी हुई।

भारत की रेलवे प्रणाली प्रबंधन, पटरियों, स्टॉक तथा कर्मचारियों के संदर्भ में विश्व में सबसे बड़ी है। यह देश का सबसे बड़ा सार्वजनिक उपक्रम है। इसमें करीब 16 लाख कर्मचारी स्थायी तथा 2 लाख से ज्यादा अस्थायी कर्मचारी हैं। यात्री गाड़ियों के सहित यहाँ 13500 रेल गाड़ियाँ चलती हैं जो लगभग 7000 छोटे बड़े स्टेशनों को जोड़ती हैं। ये 1.2 करोड़ यात्रियों को प्रतिदिन लाती-ले जाती हैं तथा ये वास्तव में देश की जीवन रेखा कहलाती हैं। वर्ष 1950-51 में हमारे पास 53,600 कि.मी. लंबा मार्ग (रेलवे रूट) था तथा चालू पटरी 59,300 कि.मी. और कुल पटरियाँ 77,600 कि.मी. लंबी थीं। वर्ष 2000-01 में हमारे पास 63,000 कि.मी. लंबा मार्ग, चलता हुआ रेल मार्ग 81,200 कि.मी. तथा कुल पटरियाँ 1,08,000 कि.मी. लंबी थीं। इस का तात्पर्य है कि पटरियों की सघनता वर्ष 1950-51 में 1.1 से बढ़कर 2000-01 में 1.7 हो गयी। जबकि मार्गों की लंबाई 20 प्रतिशत भी नहीं बढ़ीं। चालू पटरियाँ 30 प्रतिशत तथा कुल पटरियाँ 40 प्रतिशत बढ़ीं। महत्त्वपूर्ण बात है कि हमारा विद्युतीकृत रेल मार्ग जो 1950-51 में 400 कि.मी. से भी कम था तथा केवल उपनगरों में ही था, अब 15,000 कि.मी. से भी अधिक हो गया है। इसमें से 90 प्रतिशत भारी सघनता माल मार्ग की है। कुछ भाग मुम्बई और चेन्नई, चेन्नई-कोलकाता को छोड़कर सभी मार्ग जो चारों महानगरों को जोड़ते हैं, (दिल्ली व मुम्बई के बीच) का विद्युतीकरण हो गया है। ज्यादातर पटरियाँ (65 प्रतिशत) बड़ी लाइन हैं। छोटी मीटर लाईन से बड़ी लाइन में परिवर्तन, विकास की सूची में, एक महत्त्वपूर्ण बात है (गेज का मतलब दो रेलपटरियों के बीच की दूरी)।

रेलवे इंजन की संख्या 1950-51 में 8,200 से बढ़कर 1970-71 में 11,000 हो गयी परंतु बाद में यह घटकर केवल 7300 (जिसमें 2800 विद्युत इंजन हैं) रह गयी।

यद्यपि पहले के इंजन भाप के होते थे तथा धीमी गति से चलते थे, अब वे डीजल तथा विद्युत के हैं तथा तेज गति से चलते हैं और ज्यादा भार खींचते हैं। इसी प्रकार डिब्बे तथा माल डिब्बे जो लगभग क्रमशः 40,000 तथा 26,400 हैं उनमें अच्छे उपकरण लगे हैं तथा वे अच्छी सेवाएँ देते हैं। इंजन डिब्बे तथा माल डिब्बे सबको मिलाकर रोलिंग स्टॉक (rolling stock) कहते हैं। प्रगति जानने के लिए सारणी 4.7 देखें।

यह सारणी रेलवे के निष्पादन के बारे में एक सोच बनाने में आपकी सहायता के उद्देश्य

सारणी 4.7

स्वतंत्रता के बाद की समयावधि में रेलवे की उन्नति

मार्ग/पटरी (कि.मी.)	*1950-51*	*1960-61*	*1970-71*	*1980-81*	*1990-91*	*2000-01*
मार्ग की लंबाई	53596	56247	59790	61240	62367	62759
मार्ग का विद्युतीकरण	388	748	3706	5345	9968	14261
रोलिंग स्टॉक						
रेल इंजन	8209	10624	11158	10908	8417	7517
डीज़ल	17	181	1169	2403	3759	4651
विद्युत	72	131	602	1036	1743	2810
सवारी डिब्बे	19628	28439	35145	38333	38511	41349
माल डिब्बे	205596	307907	383990	400946	346102	244419
थ्रो पुट (MT/MTK/M/MK)						
गुड्स ट्रैफिक आरीजिनेटिंग (MT)	93	156	196	220	341	450
गुड्स कैरीड (MK)	44117	87680	127358	158474	242699	301510
यात्री आरीजिनेटिंग (M)	1284	1594	2431	3613	3858	4411
यात्री कैरीड (MK)	66517	77665	118120	208558	295648	403088
उत्पादकता (कि.मी.)						
औसत लोड (यात्री)	51.8	48.7	48.6	57.7	76.6	91.6
औसत लोड (माल)	470	561	648	720	711	644

टिप्पणी : *M = million, MK = million-kilometres, MT = million-tonnes, MTK = million tonne-kilometres*

स्रोत : *भारतीय रेलवे ईयर बुक 1999-2000, रेलवे मंत्रालय (रेलवे बोर्ड), भारत सरकार व आर्थिक सर्वेक्षण 2001-02, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।*

से दी गई है। उदाहरण के लिए आप देख सकते हैं -कि माल आरीजिनेटिंग मिलियन टन तथा माल केरीड मिलियन टन-किलो मीटर क्रमशः पांच से सात गुना बढ़ गया है, जबकि यात्री डिब्बों तथा माल डिब्बों में बढ़ोतरी केवल 2 गुनी तथा 1.2 गुनी हुई है। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि 60 प्रतिशत यात्री उपनगरों के यात्री होते हैं जो कि पैसेंजर किलोमीटर में 20 प्रतिशत का तथा रेलवे को 11 प्रतिशत राजस्व का योगदान करते हैं। हम देखते हैं कि यात्री डिब्बों की संख्या तेजी से नहीं बढ़ रही है। परंतु बैठने की क्षमता बढ़ गयी है क्योंकि बड़ी लाइन डिब्बे में ज्यादा यात्री बैठ सकते हैं।

यह ध्यान देने योग्य है कि सात बड़ी (मुख्य) वस्तुएँ जो अर्थव्यवस्था के मुख्य क्षेत्र के लिए आवश्यक हैं जैसे कोयला, खाद्यान्न, उर्वरक, पेट्रोलियम पदार्थ, इस्पात, निर्मित इस्पात तथा स्टील प्लांट के लिए कच्चा माल इत्यादि माल यातायात का बड़ा हिस्सा (95 प्रतिशत) हैं। कुछ आवश्यक वस्तुएँ जैसे नमक, फल व सब्जी, गन्ना, अयस्क, पशुधन इत्यादि 3 प्रतिशत का योगदान देती हैं।

हमें याद होना चाहिए कि रेलवे का आरम्भ निजी कंपनियों ने किया था तथा इसे भारत में ब्रिटिश सरकार का सहयोग प्राप्त था। वर्ष 1925 में इसका राष्ट्रीयकरण हो गया था। अतः इसने (रेलवे ने) 75 वर्ष निजी कंपनियों के नियंत्रण में तथा 75 वर्ष सरकार के स्वामित्व में पूरे किए। किंतु रेलवे विभाग का लेखा भारत सरकार के सामान्य लेखों से अलग है। भारत सरकार ने केपिटल इक्वीटी प्रदान की थी तथा इस पर इसे लाभांश मिलना चाहिए था। सामान्यतः लाभांश लाभ पर मिलता है परंतु रेलवे को पूंजी का 6 प्रतिशत भुगतान देना पड़ रहा है जो लगभग 20,000-25,000 करोड़ रुपये है।

यह ध्यान देना चाहिए कि रेलवे विभाग की कुल आय जो कि लगभग 30,000 करोड़ रुपये है, का 2/3 हिस्सा माल यातायात से तथा 1/3 हिस्सा यात्री यातायात से मिलता है। यह अपनी आय का अधिकतर हिस्सा पदार्थों के आगत तथा कर्मचारियों की क्षतिपूर्ति के रूप में खर्च करता है। रेलवे 15,000 करोड़ रुपये कर्मचारियों पर खर्च किया करता है जो कि पूरे खर्चे का 50 प्रतिशत है।

निम्नलिखित तथ्य बताते हैं कि रेलवे की प्रगति जरूरी है क्योंकि :

(i) रेलवे की ऊर्जा-कुशलता सड़क यातायात से 6 गुना अधिक है।

(ii) भूमि के प्रयोग की दृष्टि से रेलवे 4 गुना अधिक किफायती है।

(iii) तुलनात्मक यातायात स्तर की दृष्टि से रेल (रेल की पटरी) निर्माण लागत सड़क से 6 गुना कम है।

(iv) सामाजिक लागत (प्रदूषण) के नुकसान की दृष्टि से रेलवे की यह लागत सड़क से काफी कम है।

रेलवे की प्रगति निश्चित परिमापों के द्वारा

यात्री यातायात जो वर्ष 1950-51 में 1280 मिलियन था तथा 66,500 यात्री कि.मी. की दूरी तय करता था, बढ़कर 4600 मिलियन हो गया तथा 4,00,000 यात्री कि.मी. तय करने लगा। वर्ष 1950-51 में 50 कि.मी. की तुलना में अब एक औसत यात्री 90 कि.मी. की दूरी तय करता है। यद्यपि उच्च श्रेणी के यात्री लंबी दूरी अर्थात् औसतन 500 कि.मी. की यात्रा करते हैं जबकि उपनगरों के यात्री केवल 30 कि.मी. दूरी तय करते हैं, पर यात्री-जनसंख्या अनुपात 36 प्रतिशत से बढ़कर 44 प्रतिशत हो गया है। यद्यपि रेलवे की सेवाओं में गुणात्मक सुधार होने के बावजूद बहुत सी भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि कुल यात्रियों में 60 प्रतिशत उपनगरीय यात्री होते हैं तथा वे यात्री कि.मी. की दृष्टि से 20 प्रतिशत यात्रा में योगदान देते है तथा वे 11 प्रतिशत रेलवे राजस्व में योगदान देते हैं। एक और ध्यान देने योग्य बात है कि डिब्बों की संख्या तो नहीं बढ़ी है परंतु बैठक क्षमता बढ़ गयी है क्योंकि बडी लाइन डिब्बे अधिक यात्री समायोजित करते हैं। पिछले 50 वर्षों में माल डिब्बे 2.6 गुना बढ़े हैं तथा टन कि.मी. 6.25 गुना बढ़ा है। पटरियों का उपयोग प्रति रेल मार्ग कि.मी. (मिलियन टन कि.मी.) 1950-51 में 1.5 से बढ़कर 2000-01 में 6.5 हो गया। माल डिब्बों की संख्या तथा इसकी कुल क्षमता इसके 1980-81 के उच्चतम स्तर से घटकर कम हो गयी। डिब्बों की औसतन क्षमता 1950-51 में 23 टन से बढ़कर 1999-2000 में 46 टन हो गयी। अतः उत्पादकता भी बढ़ गयी। भारतीय रेल अपना स्वयं का रोलिंग स्टॉक उत्पन्न करती है, 2188 यात्री डिब्बे, 137 डीज़ल इंजन, 120 विद्युत इंजन तथा 2000 माल डिब्बे हैं।

(v) रेल ही वह यातायात का साधन है जो प्राथमिक ऊर्जा का कोई भी रूप प्रयोग कर सकती है।

सड़क

सड़क घरों के द्वार तक पहुँच सकती है। कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ पर केवल सड़क से ही पहुँचा जा सकता है। हमारे यहाँ 6 लाख से ज्यादा गाँव तथा 10 लाख से अधिक अधिवास हैं, जहाँ पर केवल सड़क द्वारा ही पहुँचा जा सकता है। हमारे यहाँ 7000 रेलवे स्टेशन हैं।

रेलवे स्टेशनों से शहरों तथा शहरों में दुकानों व घरों तक केवल सड़कों द्वारा ही पहुँच सकते हैं। रेलवे प्रणाली जोड़ती है वह सड़क से जोड़ने वाली छोटी दूरियाँ द्वारा ही तय की जा सकती है। कुछ बातों में रेलवे की अपनी सीमाएँ हैं।

जब ज्यादातर परिवहन बैलगाड़ियों तथा ऊँट द्वारा ले जाया जाता था तब हमें आधुनिक पक्की सड़कों की जरूरत नहीं थी। उस समय हमने एक करोड़ बैलगाड़ियों तथा दो करोड़ पशुओं व एक करोड़ लोगों को बैलगाड़ियों से माल ढोने में लगाया होगा। केवल शहरों में घोड़ागाड़ी के प्रयोग के लिए सड़कें थीं। अब हमारे पास मोटर-वाहन हैं जिसके लिए पक्की सड़कों की जरूरत है। गाँवों तथा शहरों को जोड़ने के लिए हमें पक्की सड़कों की जरूरत है, जिससे किसान अपने उत्पादि पदार्थ पास की मंडियों में ले जा सकते हैं अथ शीघ्र खराब होने वाली सब्जियों तथा दूध व दूध पदार्थों को ग्रामीण क्षेत्र से एकत्रित करके कस्बे व शहरों में उपभोग के लिए ले जा सकते हैं।

यूरोप में पहले माल के सस्ते परिवहन के लिए नहरों को विकसित किया गया था। उसके बाद उन्होंने भाप के इंजन का विकास किया, जिसके बाद ही रेलवे महत्त्वपूर्ण हुआ। उसके बा पेट्रोलियम की खोज से आंतरिक दहनशील इंजन का विकास हुआ। रेलवे प्रणाली के सहयोग के लिए सड़क-प्रणाली का आगमन हुआ जो कि रेलवे की तुलना में बहुत शीघ्र, सुविधाजनक तथ लचीली थी। पेट्रोलियम पदार्थों के विकास से आधुनि सामग्रियाँ भी उपलब्ध होने लगीं। वर्ष 1929 सेंट्रल रोड फंड बनने के बाद से भारत में आधुनि सड़कों की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। इस फं का खर्च अंशतः राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण तथ रख-रखाव के लिए तथा अंशतः ग्रामीण सड़के अंतरराज्यीय सड़कों तथा आर्थिक महत्त्व वा सड़कों के निर्माण के लिए होता है।

भारतीय सड़क प्रणाली विश्व में सबसे ब है। वर्ष 1950-51 में हमारे पास 4 लाख कि.मी सड़क नेटवर्क था जिसमें 1.6 लाख कि.मी. पक

सड़क विकास के लिए नागपुर योजना

वर्ष 1943 में सभी राज्यों के मुख्य अभियंता नागपुर में मिले तथा एक सड़क योजना तैयार की जो न्यूनतम आवश्यकताओं पर आधारित थी। विश्व युद्ध के बाद की सड़क-विकास की इस योजना को नागपुर योजना के नाम से जाना जाता है। इसमें सड़क-प्रणाली को संपूर्ण राष्ट्रीय-परिवहन व्यवस्था का हिस्सा माना गया। इसमें एक ओर विभिन्न श्रेणी की सड़कों के बीच तथा दूसरी ओर सड़कों के नेटवर्क तथा परिवहन के दूसरे संसाधनों के बीच समन्वयन करने का निश्चय किया गया। यह सड़कों को चार मुख्य श्रेणियों में विभाजित करता है, राष्ट्रीय राजमार्ग, राज्य राजमार्ग, बड़ी तथा छोटी जिला सड़कें तथा ग्रामीण सड़कें। यह भी सुझाव दिया गया कि कोई भी अच्छी तरह विकसित कृषि-क्षेत्र सड़क से 8 कि.मी. से अधिक दूर नहीं होना चाहिए।

सड़कें (जबकि रेलवे केवल 54,000 कि.मी.) तथा 2.4 लाख कि.मी. कच्ची सड़कें थीं। पक्की सड़कें सभी मौसम की सड़कें हैं। कच्ची सड़कें वर्षा के दौरान मरम्मत के योग्य नहीं होती हैं। वर्तमान में हमारे पास कुल 25 लाख कि.मी. सड़कें हैं जिसमें 14 लाख कि.मी. पक्की सड़कें हैं (रेलवे रूट लंबाई तुलना में केवल 63000 कि.मी. है) । निर्माण, रख रखाव तथा मरम्मत के उद्देश्य से सड़कों को राष्ट्रीय राजमार्ग, राज्य राजमार्ग तथा अन्य सड़कों में वर्गीकृत किया गया हैं। जबकि राष्ट्रीय राजमार्ग की जिम्मेदारी केंद्रीय सरकार की है, अन्य सड़कों तथा राज्य राजमार्गों से संबंधित जिम्मेदारी प्रत्येक राज्य की है जिस राज्य में वे सड़कें हैं।

1950-51 तक राष्ट्रीय राजमार्ग 20000 कि.मी. था, जो बढ़कर जनवरी 2001 में 58000 कि.मी.(रेलवे के कुल कि.मी. रूट का लगभग 90 प्रतिशत) हो गया। भारत सरकार ने राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम 1956 के अंतर्गत कई अन्य सड़कों को अपने नियंत्रण में ले लिया, वर्ष 2000-01 में केवल 5727 कि.मी. की और बढ़ोत्तरी हुई। राज्य राजमार्ग 1970-71 में 57000 कि.मी. से बढ़कर 2001 तक 1.4 लाख कि.मी. हो गया। राज्यों ने भी अपने राज्यमार्गों के कार्यक्षेत्र का विस्तार किया है। बहुधा ये सड़कें पक्की हैं। इनको चौड़ा भी किया गया है। किंतु राष्ट्रीय तथा राज्य राजमार्ग 2 लाख कि.मी. से कम है तथा अब सभी पक्की सड़कें हैं। जबकि कुल पक्की सड़कों की लंबाई लगभग 14 लाख कि.मी. है, कच्ची सडकों की लंबाई 11 लाख कि.मी. है। समयावधि में प्रगति के लिए सारणी 4.8 देखें।

अंत में हमें यह ध्यान देना चाहिए कि हमारी सड़कों का नेटवर्क 4 लाख कि.मी. से 25 लाख कि.मी. बढ़ गया जबकि वाहनों की संख्या 3 लाख से बढ़कर 4 करोड़ हो गयी है, माल यातायात 600 करोड़ टन-किलोमीटर से 45000 करोड़ टन

सारणी 4.8

विस्तृत वर्गीकरण के अनुसार सड़कें (कि.मी. में) तथा वाहन (संख्या में)

	1950-51	*1960-61*	*1970-71*	*1980-81*	*1990-91*	*2000-01*
राष्ट्रीय राज मार्ग	9800	21000	23300	31500	33400	57700
पक्की सड़कें	157019	263015	39700	692171	1091043	1400000
सभी सड़कें	399942	524478	917880	1491301	2331086	2500000
सभी वाहन	306000	665000	1865000	5391000	21374000	40000000
माल वाहन	82000	168000	343000	554000	1356000	3000000
बसें	34000	57000	94000	162000	331000	600000
1000 जनसंख्या वाले सड़कों से जुड़े गांवों का प्रतिशत				29	46	75

टिप्पणी : *वर्ष 2000-01 के आंकड़े पूर्ण योग में हैं तथा कुछ हद तक अनुमानित प्रकृति के हैं तथा नब्बे के दशक के अंत में सरकारी सांख्यिकी पर आधारित हैं।*

स्रोत : *भारतीय योजना अनुभव एक सांख्यिकीय रूपरेखा, योजना आयोग, भारत सरकार 2001 तथा आर्थिक सर्वेक्षण 2001-2002, वित्त मंत्रालय।*

सड़क का प्रयोग

सड़कों का निर्माण प्रायः वाहनों के प्रयोग के लिए किया गया। मोटर वाहन से चलने वाले वाहन दो प्रकार के होते हैं– यात्री अथवा बस सेवाएँ तथा माल अथवा ट्रक सेवाएँ। किंतु कुछ निजी वाहन कार/जीप, टैक्सी, दुपहिया तथा ट्रैक्टर भी होते हैं। पंजीकरण सांख्यिकी के अनुसार सड़कों पर लगभग 6 लाख बसें, 25 लाख ट्रक, 50 लाख कार/जीप/टेक्सी, 2.8 करोड़ दुपहिया वाहन तथा 45 लाख अन्य वाहन जिसमें ट्रैक्टर, ट्रेलर तथा तिपहिया वाहन (यात्री व माल) हैं। कुल वाहनों की संख्या लगभग 4 करोड़ है जिसमें से कुछ बेकार हो गए होंगे।

लागत तथा समय की बचत के लिए हमें अच्छी सड़कें तथा अच्छे वाहनों की आवश्यकता होती है जो प्रदूषण रहित हों। यह विचार अधिक प्रबल हो गया है जब से बहुत से शहरों में प्रदूषण स्तर खतरे के अनुपात तक बढ़ गया है।

किलोमीटर, यात्री यातायात 2300 करोड़ यात्री किलोमीटर से 150,000 करोड़ यात्री किलोमीटर बढ गया है। किंतु यह प्रशंसनीय बात होगी कि लंबाई के बावजूद दृढता तथा चौड़ाई की दृष्टि से सड़कों की गुणवत्ता में समय के साथ-साथ सुधार हुआ है। वैसे भी हमारे राष्ट्रीय राजमार्ग कुल यातायात का 40-50 प्रतिशत वहन करते हैं।

जलमार्ग

जल यातायात के दो मुख्य प्रकार हैं, जैसे– आंतरिक जलमार्ग तथा जहाजरानी। जहाजरानी तटीय अथवा समुद्रीय हो सकता है। जलमार्ग, आंतरिक (तटीय) रेलवे तथा सड़क परिवहन के आविष्कार से पहले काफी महत्त्वपूर्ण होता था इस तथ्य के बावजूद कि गति की दृष्टि से रेलवे तथा सड़क मार्ग जलमार्ग से काफी उत्तम है। तटीय जलमार्ग बहुत कठिन भी हो जाता है क्योंकि नदियों में पानी के बहाव को सिंचाई के तथा दूसरे उपयोग के उद्देश्य से बाँधों द्वारा कम कर दिया जाता है। तटीय जहाजरानी के प्रयोग में लगातार गिरावट हो रही है, तथा अभी कुल परिवहन में इसका अनुपात नगण्य है।

तटीय जहाजरानी अब केवल ब्रह्मपुत्र नदी गंगा के निचले भाग, कृष्णा तथा गोदावरी नदी का डेल्टा तथा नहरें, केरल की नहरों आदि तक ही सीमित है। मुश्किल से 2000 कि.मी. नदियाँ ही नौकाओं (मशीन से चलने वाली) तथा 5000 कि.मी. देशीय बड़ी नावों के लिए उपयुक्त हैं। हालांकि भारतीय तटीय जहाजरानी प्राधिकरण के काफी प्रयास के बावजूद इसका एक महत्त्वपूर्ण परिवहन साधन होना कठिन होगा। धीमी गति

राष्ट्रीय जलमार्ग

राष्ट्रीय जलमार्ग 1: यह इलाहाबाद तथा हल्दिया के बीच गंगा (1620 कि.मी.) में है जो पटना भागलपुर तथा फरक्का से होकर जाती है। पटना व हल्दिया के बीच वर्ष के अधिक समय में इसकी गहराई 1.5 से 2.0 मीटर तक रखी जाती है।

राष्ट्रीय जलमार्ग 2: यह ब्रह्मपुत्र नदी पर, सदिया तथा धुबरी के बीच (890 कि.मी.) में है जो गुवाहाटी (पाण्डु) से होकर जाती है। कोलकाता से जोड़ने के लिए भारत-बांगलादेश के प्रोटोकॉल मौजूद हैं।

राष्ट्रीय जलमार्ग 3: यह पश्चिमी नहर किनारे पर है जो कोटापुरम तथा कोलाम के बीच चम्पकारा तथा उद्योग मण्डल नहर (205 कि.मी.) से होकर जाती है।

माँग की दृष्टि से बहुत बड़ी कमजोरी है। आपूर्ति की दृष्टि से प्राकृतिक तथा तकनीकी अड़चने भी बहुत हैं। फिर भी तीन राष्ट्रीय जलमार्ग हैं, जो अभी भी विकसित हो रहे हैं तथा सामान ढ़ोने के काम आते हैं।

नौपरिवहन समुद्रीय तथा राष्ट्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण परिवहन का साधन है। भारत के पास 5500 कि.मी. लंबा समुद्रीय तट है। स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय नौपरिवहन कंपनियों को विदेशी कंपनियों के साथ काफी स्पर्धा का सामना करना पड़ा तथा तत्कालीन शासकों से इन्हें कोई सहयोग नहीं मिला।

स्वतंत्रता के बाद भारत के पास पांच बड़े मुख्य बंदरगाह थे। हमने 6 और बंदरगाह जोड़ दिए। बढ़ती हुई तथा कठिन मांग को पूरा करने के लिए समय-समय पर इन सभी बंदरगाहों का विस्तार, पुनः उपकरण तथा आधुनिकीकरण हुआ। उदाहरण के लिए, सरकारी सेवा में, ड्रेजिंग कारपोरेशन ऑफ इंडिया है जो पोर्टों के लिए तलकर्षण सुविधा उपलब्ध करवाती है। निजी पोर्ट ट्रस्ट जो पोर्ट तथा संघीय सरकार की देखभाल करते हैं, अपने विस्तार, पुनःउपकरण तथा आधुनिकीकरण के लिए साधन स्वयं जुटाते हैं।

हमारे मुख्य बंदरगाह

देश के विभाजन के समय हमारे पास मुम्बई, कोलकाता, चैन्नई, कोचीन तथा विशाखापट्टनम्, मुख्य बंदरगाह थे। हमने 6 और बंदरगाह जोड़ दिए हैं, हल्दिया, कोलकाता के पास, न्हावा शेवा (अब जे.एल. नेहरु) मुम्बई में, गुजरात में कांडला के पास। इसके अतिरिक्त उड़ीसा में पारादीप, तमिलनाडु में टुटीकोरीन, कर्नाटक में मैंगलोर तथा गोवा में (गोवा की आजादी के बाद) मरमागाओ का आधुनिकीकरण किया गया।

हमारे बंदरगाहों ने वर्ष 2000-01 में 250 मिलियन टन से ज्यादा कारगो को संभाला जिसमें सामान का उतारना-चढ़ाना सम्मिलित है। यह 1950-51 में (20 मिलियन टन) सामान संभालने से 13 गुना ज्यादा है। इसमें POL पदार्थ, लोहा, अयस्क, कोयला, उर्वरक तथा अन्य डिब्बा बंद माल तथा कुछ कच्चा माल आदि मुख्य मदें सम्मिलित हैं। समुद्रीय (तटीय) यात्री जहाज लगभग नहीं है, यद्‌यपि पोर्टब्लेयर (अंदमान व निकोबार) के लिए कुछ सेवाएँ उपलब्ध हैं। अनेक स्थितियों में सुधारों की आवश्यकता है।

देश के भीतरी भागों में लगभग 140 छोटे बंदरगाह हैं जिनके पास सीमित सुविधाएँ उपलब्ध हैं। वे मुख्यतः तटीय आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। तटवर्ती क्षेत्र जहाँ रेल व सड़क की सुविधा पूरी उपलब्ध नहीं हैं वहाँ इन बंदरगाहों का प्रयोग किया जाता है। बड़े बन्दरगाहों पर भीड़ के समय ये छोटे बंदरगाह अधिक सहायक होते हैं। छोटे बंदरगाह राज्य सरकारों की जिम्मेदारी होते हैं तथा उन्हें केंद्रीय सरकार से ऋण मिलता है। कार्गो को संभालने के अलावा ये छोटे पोर्ट यात्री यातायात के लिए भी प्रयोग किए जाते हैं। स्वतंत्रता के समय हमारे पास 1,00,000 जी.आर.टी. से कम क्षमता वाले 42 जहाज थे। आज शिपिंग कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया के पास 4 मिलियन जी.आर.टी. की क्षमता वाले 160 जहाजों का बेड़ा है। यह विश्व की बड़ी शिपिंग कंपनियों में से एक है तथा विश्व के महत्त्वपूर्ण समुद्रीय व्यापारिक मार्गों पर चलते हैं। 66 शिपिंग कंपनियाँ हैं, उनमें से 43 केवल ओवरसीज परिवहन के लिए तथा 16 केवल तटीय परिवहन के लिए एवं 7 दोनों के लिए हैं।

वायु परिवहन

वायु परिवहन सबसे तेज गति से चलने वाला तथा सबसे महंगा परिवहन है। यह सबसे नवीनतम है। इसका प्रभाव इतना फैल गया है कि दूरियाँ अब मीलों में मापने के बजाय घंटों में मापी जाती हैं।

विश्व युद्ध से पहले भारत में वायु परिवहन द्वारा यात्री व माल ढ़ोने का काम नहीं के बराबर होता था। यह केवल एक डाक सेवा थी। परीक्षणों के अतिरिक्त वर्ष 1932 में पहली नियमित सेवा आरंभ हुई। हालाँकि पहली हवाई डाक 18 फरवरी 1911 में इलाहाबाद (प्रदर्शनी मैदान) से नेनी के बीच हुई। सरकार के सहयोग से तीस के दशक की शुरुआत में तीन घरेलू वायु सेवाओं की स्थापना हुई, टाटा एयर लाइन्स तथा इंडियन नेशनल एयरवेज डाक सेवाओं के लिए तथा एयर सर्विसेज ऑफ इंडिया यात्री व माल के लिए। उनकी सेवाओं का प्रयोग सेना, यातायात व इंडियन एयर फोर्स की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया गया।

युद्ध के बाद सस्ती कीमतों पर अमेरिकन हवाई जहाज की बिक्री के द्वारा उड़ने वाले तथा जमीन पर काम करने वाले कर्मचारियों (जो युद्ध के बाद उपलब्ध हुए थे) की सहायता से, नए स्थापित हवाई अड्डों के कारण कई कंपनियों ने हवाई-मार्गों पर सेवाओं में रुचि दिखाई। वायु यातायात की माँग का अनुमान आवश्यकता से अधिक लगाया गया जिससे लगभग एक दर्जन एयर लाइनों को लाईसेन्स दे दिए गए। शीघ्र ही ये वित्तीय कठिनाई में पड़ गए। नागरिक उड्डयन के सुदृढ़ व स्वस्थ विकास के लिए तथा परिवहन उपकरण व प्रचालन तकनीकी का पूरा लाभ उठाते हुए यह सुझाव दिया कि वायु परिवहन का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाए।

दो सार्वजनिक निगमों, एयर इंडिया तथा इंडियन एयर लाइंस की क्रमशः अंतरराष्ट्रीय तथा घरेलू सेवाओं के लिए स्थापना की गई। अब इंडियन एयर लाइंस की एक सहायक भी हो गयी है जिसे एयर लाइंस कहते हैं। इनके अलावा कुछ निजी एयर लाइंस भी हैं जैसे, जेट,सहारा आदि। अभी हमने दो एयर लाइंस के शेयर (एयर इंडिया के 60 प्रतिशत तथा इंडियन एयर लाइंस के 51 प्रतिशत का) वित्तीय संस्थाओं, निजी निवेशकों तथा प्रत्यक्ष विदेशी निवेशकों को बेच दिए (विनिवेश द्वारा) । इसका उद्देश्य प्रतिस्पर्धा को बढ़ाना तथा इनको कुशलता से चलाना था।

एयर पोर्ट आथोरिटी ऑफ इंडिया 92 नागर हवाई अड्डों 28 तथा नागर अंतर्क्षेत्रों (सैनिक हवाई अड्डों पर) का रख-रखाव करती है। उनमें से पांच अंतरराष्ट्रीय हैं तथा बहुतों के स्तर को बढ़ा कर अंतरराष्ट्रीय मानक के अनुरूप बनाया गया। वे हमारी तथा विदेशी एयर लाइंस को सेवाएँ देते हैं। वायु परिवहन में यात्री तथा समान (माल व डाक) सम्मिलित हैं। वायु परिवहन क्षेत्र के संबंध में आपकी जानकारी बढ़ाने के लिए कुछ सांख्यिकी सारणी 4.9 में दी गयी है। दूसरे परिवहन क्षेत्रों की तुलना में यह छोटा विशिष्ट क्षेत्र है। वायु-परिवहन का प्रयोग घरेलू सामानों को ढ़ोने के लिए सामान्य रूप से नहीं होता है। हमारी एयर लाइंस में विदेशी कार्गो भी कम ही जाते हैं। हमारे हवाई अड्डे हमारी एयर लाइंस की क्षमता से 2.5 गुना अधिक यात्री तथा 3.5 गुना अधिक सामान संभालते हैं।

वायु परिवहन का प्रबंधन (management) एयर इंडिया के 25 हवाई जहाजों के बेड़े, इंडियन एयर लाइंस के 50 हवाई जहाजों तथा अन्य निजी एयर लाइंस के कुछ हवाई जहाजों द्वारा

सारणी 4.9
यात्री/माल सेवाओं की दृष्टि से नागर विमानन में वृद्धि

(हजार में)

	1950	1965	1973	1985	1991	1998
अंतरराष्ट्रीय						
यात्री	150.0	270.0	736.0	2207.0	2430.0	3436.0
सामान (टनों में)	3.2	10.2	28.0	84.3	101.0	92.0
घरेलू						
यात्री	303.0	1135.0	2636.0	8617.0	7912.0	11547.0
सामान (टनों में)	36.9	26.7	34.3	98.9	97.0	125.0
हवाई अड्डों द्वारा परिवहन						
यात्री			10738.0*		17723.0	36974.0
सामान (टनों में)			178.7*		377.3	699.0

** 1970-71 वर्ष के लिए*

स्रोत : भारतीय योजना अनुभव: एक सांख्यिकीय रूपरेखा, योजना आयोग, भारत सरकार 2001, तथा आर्थिक सर्वेक्षण 2001-2002, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।

होता है। हमारे हवाई जहाज कुछ पुराने हैं फिर भी भार क्षमता (जो उपलब्धता के प्रयोग का संकेत देती है) 65-70 प्रतिशत है।

पाइपलाइन परिवहन

आप जानते ही हैं कि शहरों में पीने के पानी का परिवहन पाइप लाइनों द्वारा होता है। अधिकांश गंदे पानी का वहन भी पाइप लाइनों द्वारा होता है। किंतु बहुत से दुर्गम क्षेत्रों में नदियों या जलाशयों से शहरों तथा गांवों में पीने का पानी पहुँचाया जाता है। इसका लाभ उठाकर, कच्चे तेल, पेट्रोलियम पदार्थों तथा प्राकृतिक गैस का वहन आजकल इसी के द्वारा किया जाता है। पाइप लाइन परिवहन में कम ऊर्जा लागत, कम मार्गस्थ हानि तथा कुल मिलाकर लागत कम लगती है। पाइप लाइनें बिछाने में आरंभ में बहुत लागत लगती है। यह तरल अथवा गैस के रूप में माल को दो ऐसे स्थानों के बीच, जहाँ माल की लगातार तथा लंबे अरसे तक जरूरत पड़े, पहुँचाने में कम खर्चीला है। इसलिए इसमें निवेश करना सार्थक है। पाइप लाइन परिवहन द्वारा तरल रूप में, लौह-अयस्क (लौह-अयस्क को पानी में मिलाकर) भी परिवहन किया जाता है। मुख्य पाइप लाइनें निम्नलिखित हैं :

कच्चा तेल

(i) असम के तेल क्षेत्र से कच्चा तेल गुवाहाटी (असम) तथा बरौनी (बिहार) परिष्करण-शालाओं तक।

(ii) आयातित कच्चा तेल कोयाली (गुजरात) के पश्चिमी तट से मथुरा (उ.प्र.) परिष्करण-शाला तक।

(iii) पूर्वी तट से आयातित कच्चा तेल बरौनी से (बिहार) के परिष्करणशाला तक।

(iv) आयातित कच्चा तेल विरमगाम (गुजरात) से करनाल (हरियाणा) परिष्करणशाला तक।

पेट्रोलियम उत्पाद

(i) बरौनी परिष्करणशाला से कानपुर तक।

(ii) मथुरा परिष्करणशाला से दिल्ली, अम्बाला (हरियाणा) तथा जालंधर (पंजाब) तक।

(iii) मुम्बई परिष्करणशाला से पुणे तक।

प्राकृतिक गैस

(i) पश्चिमी तट हजीरा से गैस आधारित नाइट्रोजेनस फर्टिलाइजर प्लांट से तथा मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश में प्राकृतिक गैस पर आधारित पावर प्लांट से।

कच्चे तेल तथा पेट्रोलियम पदार्थों के लिए पाईप लाइनों का निर्माण तथा प्रबंधन इंडियन ऑयल कारपोरेशन द्वारा किया जाता है तथा प्राकृतिक गैस के पाईप लाइनों का गैस ऑथोरिटी ऑफ इंडिया द्वारा संभाला जाता है।

संचार (Communication)

विकास, संचार व्यवस्था में परिवर्तन लाता है तथा बेहतर संचार व्यवस्था विकास में सहायक होती है। आज के विश्व में जीवन के सभी क्षेत्र जैसे, सरकारी कार्य, सरकारी प्रशासन, राष्ट्रीय रक्षा, व्यवसाय प्रबंधन, कृषि तथा अन्य विस्तार सेवाएं, शिक्षा, विज्ञापन, प्रेस तथा मीडिया, आदि को अच्छे संचार व्यवस्था की आवश्यकता होती है। क्रेता तथा विक्रेता को बाजार के बारे में सूचना प्रदान कर एक दूसरे के पास लाते हैं जिससे उपभोक्ताओं को प्रोत्साहन मिलता है तथा अर्थव्यवस्था के विकास में सहायता मिलती है।

आज के युग को तकनीकी क्रान्ति का युग कहा जाता है। हमने तकनीकी विकास का लाभ दूर-संचार तथा सूचना तकनीकी द्वारा उठाया है। फिर भी संचार का पुराना माध्यम महत्त्वपूर्ण है। हम संचार व्यवस्था को डाक संचार तथा दूर-संचार सेवाओं से जानते हैं जबकि एक समय ऐसा था जब संचार का आशय परिवहन तथा विशेषकर वायु परिवहन से होता था।

डाक सेवा

डाक सेवा आज भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। डाक विभाग ने अपनी वर्तमान वार्षिक रिपोर्ट में ऊँची गुणवत्ता की डाक, पार्सल तथा संबंधित सेवाओं को भारत तथा पूरे विश्व में ग्राहकों, कर्मचारियों तथा समुदाय की आशाओं के अनुरूप प्रदान करने का वादा किया है।

भारत में शहरों तथा चुने हुए गाँवों में डाक घरों की संख्या वर्ष 1947-48 में 23344 से बढ़कर 2000-01 में 154551 हो गयी। ग्रामीण क्षेत्रों में यह संख्या साढ़े चार गुना बढ़ी, जो वर्ष 1950-51 में लगभग 31000 से बढ़कर वर्ष 2000-01 में 138000 हो गयी तथा शहरी डाकघरों की संख्या तीन गुनी बढ़ी, जो वर्ष 1950-51 में 5400 से बढ़कर वर्ष 2000-01 में 16400 हो गयी। इन डाकघरों में मुख्य डाकघर, उप-डाकघर, जो विभाग तथा शाखा डाकघरों द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में ठेके के आधार पर चलाए जाते हैं, वे सभी सम्मिलित हैं। पूरे देश में 5.8 लाख से भी ज्यादा पत्र पेटिकाएं हैं। यह व्यवस्था विश्व में सबसे बड़ी है। अभी भी लगभग एक लाख से ज्यादा गाँव ऐसे हैं जहाँ तीन कि.मी. की दूरी तक कोई डाक घर नहीं है। इन क्षेत्रों में डाक विभाग ग्राम पंचायतों के आधारिक संरचनाओं को प्रयोग कर मूलभूत डाक सेवाएं ठेके पर प्रदान करता है। सारणी 4.10 देखें। प्रत्येक डाकघर औसतन 21-22 कि.मी. की दूरी तथा 5500 लोगों की सेवा करता है। डाक मनीआर्डर भेजने तथा प्राप्त करने की एक महत्त्वपूर्ण सेवा

सारणी 4.10

ग्रामीण तथा शहरी विभाजन के अनुसार डाकघरों की संख्या में वृद्धि

	1951	*1961*	*1971*	*1981*	*1991*	*2001*
ग्रामीण डाक घर	30810	69513	98835	124689	132646	138149
शहरी डाक घर	5424	7624	10224	13535	16073	16402
कुल डाक घर	36234	77137	109059	138224	148719	154551

स्रोत : *भारतीय योजना परीक्षणः एक सांख्यिकीय रूपरेखा, योजना आयोग, भारत सरकार, तथा वार्षिक रिपोर्ट 2000-01, डाक विभाग, संचार मंत्रालय, भारत सरकार।*

प्रदान करता है। 5000 करोड़ रुपयों से अधिक धनराशि मनीआर्डर से भेजी जाती है। इन सेवाओं में 12 से अधिक उपग्रह प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है।

वर्ष 1950-51 से डाक मार्ग में दस गुनी वृद्धि हुई जो 2,72,000 कि.मी. से बढ़कर 2000-01 में 27,20,000 हो गयी। वर्ष 1986 से इसने स्पीड पोस्ट भी आरंभ किया है। स्पीड पोस्ट की सेवाएँ देश के लगभग 108 शहरों तथा विदेश में 97 देशों में उपलब्ध है। उदारीकरण के तहत सरकार ने प्राईवेट कोरीयर सर्विस को भी एक औपचारिक स्थान दे दिया है। दिल्ली तथा राज्य की राजधानियों तथा महानगरों को जोड़ने की भी योजनाएँ हैं। प्रक्रिया अंतरण तथा वितरण व्यवस्था प्रणाली का भी आधुनिकीकरण हो गया है।

इसमें डाक प्रणाली के अलावा बचत-बैंक भी हैं। इसमें लगभग 6 करोड़ लेखे हैं। इसमें आवर्ती जमा, सावधि जमा तथा जनता भविष्य-निधि भी है। यह प्रणाली डाक जीवन-बीमा का भी प्रचालन करती है।

तार प्रेषण तथा टेलेक्स

तार भेजने की प्रथा भारत में बहुत पुरानी है। वर्ष 1951 में 8,200 तारघर थे, जो बढ़कर अब लगभग 45,000 हो गये हैं। विभाग ने फोनोग्राम सेवा की शुरुआत टेलीफोन से टेलीग्राम को भेजकर तथा प्राप्तकर तथा टेलेक्स सेवा एक केंद्र से दूसरे केंद्र में छपे हुए समाचार भेजकर व प्राप्त कर आरंभ की। 95 प्रतिशत टेलीग्राम 12 घटों में सुपुर्द किए जाते हैं। किंतु ये सेवाएं अब फोन/फैक्स/ई-मेल सुविधाओं की वजह से पुरानी हो गयी हैं। टेलेक्स भी शीघ्र ही प्रणाली से बाहर हो जाएगा।

दूरभाष (Telephone)

दूरभाष तकनीकी में असाधारण बदलाव आया है, जिसमें जमीन के ऊपर के तारों के स्थान पर उपग्रह व जमीन के अंदर ऑप्टिक फाइबर व कोएक्सिल केबल का प्रयोग हुआ है। दूरभाष की संख्या वर्ष 1950-51 में 1.7 लाख से बढ़कर वर्ष 2001 में 3 करोड़ हो गयी है। गत वर्षों में प्रत्येक वर्ष लगभग 50 लाख दूरभाष कनेक्शन प्रदान किए गए थे। सभी कनेक्शनों में (एस.टी.डी.) नैशनल डायलिंग की सुविधा प्रदान की गई है। आई.एस.डी.(अंतरराष्ट्रीय डायलिंग) लगभग 170 देशों के लिए उपलब्ध है। सेल्यूलर मोबाइल फोन बहुत प्रचलित हो रहे हैं। लगभग 33 लाख लोग इसका प्रयोग कर रहे हैं। हमारे सार्वजनिक निगम भी निजी प्रचालकों के सहयोगी बन गए हैं। वे इंटरनेट सर्विस भी प्रदान कर रहे हैं। लगभग 2 लाख लोकल पब्लिक कॉल ऑफिस तथा 3.25

लाख से भी ज्यादा एस.टी.डी. बूथ हैं। वी.पी.टी. (Village Public Telephone) योजना के अंतर्गत लगभग 4 लाख गाँव इससे जुड गए हैं। बी.एस.एन.एल. की वर्ष 2002 तक सभी गाँवों को जोड़ने की योजना है। हमारी टेले-डेंसिटी वर्ष 1990-91 में 0.6 प्रतिशत से बढ़कर 2000-01 में 3 प्रतिशत हो गयी है। ग्रामीण-शहरों में विषमताएँ बहुत हैं। ग्रामीण सघनता 0.8 प्रतिशत से कम है तथा शहरी सघनता 8.0 प्रतिशत से ज्यादा है। इसमें दो मत नहीं हैं कि ग्रामीण तथा शहरी टेले सघनता में समानता होनी चाहिए।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि दूरभाष सेवाओं तथा प्रचलन का अक्तूबर 2000 में भारत संचार निगम लिमिटेड (BSNL) के रूप में निगमीकरण हो गया है। दिल्ली तथा मुम्बई की दूरभाष सेवाओं का पहले से ही महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड के रूप में निगमीकरण हो गया था। BSNL के पास लगभग 4.21 लाख कर्मचारी हैं। संचार क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा के लिए तथा शुल्क नियंत्रण के लिए टेलीकॉम रेगुलेटरी ऑथारिटी ऑफ इंडिया की स्थापना हुई। दूर-संचार विभाग केवल नीतिगत मुद्दे तथा कुछ तकनीकी मुद्दे जैसे वाइड स्पेक्ट्रस मेनेजमेंट की देख-भाल करेगा।

संचार उपग्रह

हमारे अंतरिक्ष में विभिन्न उपग्रह हैं। उनमें से एक इनसेट (INSAT) का डिजाइन इंडियन नेशनल सेटेलाइट प्रोग्राम के अंतर्गत हुआ। इसका उद्देश्य लंबी दूरी की दूर संचार के लिंक को सुदृढ़ बनाना था जैसे रेडियो, टेलेग्राफ, टेलीविजन। जीओ सेंट्रिक सेटेलाइट जो लगभग 6 हैं, जो पूर्वनिश्चित अर्थ स्टेशनों के बीच कड़ी का काम करते हैं।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता के समय से हमने अपने आर्थिक आधारिक संरचना में सुधार लाने की एक लंबी यात्रा की है। क्षेत्रों में मात्रात्मक तथा गुणात्मक परिवर्तन हुआ है। अभी भी सुधार करने की आशा है। विभिन्न प्रकार की आधारिक संरचनाएँ अर्थव्यवस्था का आधार हैं तथा इसके विकास की गति निर्धारित करती हैं। अतः हमें आधारिक-संरचनाओं पर ध्यान देना चाहिए तथा कमियों को दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। हम इनके बारे में आगे के अध्याय में और अध्ययन करेंगे।

अभ्यास

1. आधारिक संरचना से आपका क्या आशय है? आधारिक संरचना के चार मूलभूत गुणों के बारे में समझाइए।
2. संरचना की दो श्रेणियों/वर्गों के बारे में बताइए। उदाहरण दीजिए।
3. नहरों, आवासों, स्कूल, रेलवे, जहाजों, अस्पतालों, बैंकों, विकास बैंकों, हवाई अड्डों, न्यायालयों, पावर प्लांट वितरण, लाइन उपग्रहों को आर्थिक व सामाजिक आधारिक संरचना के वर्गों में वर्गीकृत कीजिए।
4. वाणिज्यिक, गैर-वाणिज्यिक तथा गैर-परंपरागत ऊर्जा के स्रोत बताइए।

5. प्राथमिक व अंतिम ऊर्जा के स्रोतों में अंतर कीजिए तथा बताइए कि कोयला प्राथमिक तथा अंतिम स्रोत दोनों कैसे हैं?
6. प्राथमिक स्रोत की दृष्टि से, वाणिज्यिक तथा गैर-वाणिज्यिक ऊर्जा के रूप में पिछले 50 वर्षों में ऊर्जा के उपभोग के प्रारूप में हुए परिवर्तन पर विचार विमर्श कीजिए।
7. पिछले 50 वर्षों में कोयले, पेट्रोलियम उत्पाद, गैसें तथा विद्युत को अंतिम स्रोत मानकर ऊर्जा के उपभोग की प्रवृत्ति में परिवर्तन की चर्चा करें।
8. कोयले के प्रयोग तथा इसके प्रयोग के बदलते हुए रूप पर चर्चा कीजिए।
9. तेल के महत्त्व, इसकी प्रगति तथा इसकी समाप्ति की समस्या पर चर्चा कीजिए।
10. एक नये संसाधन के रूप में गैस कितनी महत्त्वपूर्ण है?
11. विद्युत के तीन मुख्य स्रोत क्या हैं? यह जानते हुए कि कोयले के दहन से प्रदूषण होता है, हमने थर्मल पावर के प्रयोग का चयन क्यों किया?
12. गैर-परंपरागत ऊर्जा के विकास की संभावना पर संक्षेप में चर्चा करें।
13. रेल की पटरियों के विद्युतीकरण तथा इंजन के संयोजन इत्यादि की दृष्टि से स्वतंत्रता के समय से रेलवे में हुई वृद्धि पर विचार-विमर्श करें।
14. लंबी यात्रा के लिए हम रेल-परिवहन को क्यों पसंद करते हैं?
15. परिवहन के साधनों में, रेल-परिवहन की तुलना में सड़क-परिवहन किस प्रकार श्रेष्ठ है?
16. स्वतंत्रता के बाद से सड़क परिवहन में विस्तार तथा सुधार का एक विवरण कीजिए।
17. जहाजरानी के प्रकारों की सूची बनाइए।
18. तटीय आंतरिक जहाजरानी का क्या महत्त्व है, तथा इसकी क्या सीमाएँ हैं, चर्चा कीजिए।
19. तटीय जहाजरानी तथा समुद्रीय जहाजरानी का एक विवरण दीजिए।
20. नागर विमानन की मुख्य विशेषताएँ बताइए।
21. पाइपलाइन परिवहन के महत्त्व को रेखांकित करें।
22. स्वतंत्रता के समय से भारतीय डाक सेवा में क्या विकास हुआ? विचार-विमर्श कीजिए।
23. पिछले 10 वर्षों में दूर-संचार क्षेत्र में क्या सुधार हुए हैं।
24. टेले-सघनता से आपका क्या तात्पर्य है। ग्रामीण-शहरी टेले-सघनता में असमानता 1:10 है। हम जानते हैं कि इसे कम होना चाहिए। क्या यह असमानता एक दम समाप्त कर देनी चाहिए? अपने उत्तर पर तर्क दीजिए।

क्रियाकलाप

गैर-उपयोगिता द्वारा विद्युत उत्पादन की दृष्टि से उपभोक्ताओं के विभिन्न वर्गों में उपभोग प्रतिशत ज्ञात करें। ऐसा मान लें कि गैर-उपयोगिता द्वारा उत्पादित विद्युत का उपभोग केवल उद्योगों द्वारा किया जाता है।

अध्याय 5

सामाजिक आधारिक संरचना

परिचय

पिछले अध्याय में हमने अर्थव्यवस्था के विकास के लिए आर्थिक आधारिक संरचना के महत्त्व के बारे में अध्ययन किया। किंतु हम जानते हैं कि हमेशा मशीन के पीछे मनुष्य होता है। यदि मनुष्य स्वस्थ तथा शिक्षित है तो वह बेहतर ढंग से योगदान कर सकता है। लोग कैसे स्वस्थ तथा शिक्षित हो सकते हैं? यदि लोग अच्छा भोजन करते हैं, साफ-सुथरे घरों में रहते हैं, प्रदूषण रहित वातावरण का आनंद उठाते हैं, तथा बीमार होने पर सही स्वास्थ्य सुविधाएँ प्राप्त करते हैं तो वे स्वस्थ रह सकते हैं। जन-स्वास्थ्य की दिशा में किए गए उपायों के द्वारा आस-पास का वातावरण साफ रहता है तथा संक्रामक रोगों पर नियंत्रण रह सकता है।

इसी प्रकार जब लोग, छोटी आयु में हों, तो उनका नामांकन विद्यालयों में होता है जहाँ उन्हें अध्यापकों द्वारा पढ़ाया जाता है जिससे वे शिक्षित हो जाते हैं। बाद में जब वे अपना अध्ययन आगे बढ़ाते हैं तो ऐसा अध्ययन उनको उत्पादक व्यवसाय (vocation) में नियोजन के योग्य बनाता है जिससे वे जिम्मेदार मानव संसाधन बन जाते हैं । किंतु पहली शर्त यह है कि छात्रों व छात्राओं के लिए विद्यालय होने चाहिए, तथा विद्यालय पहुँच के अंदर होने चाहिए। शिक्षा तथा स्वास्थ्य लोगों को ज्यादा उत्पादक बनाने के अतिरिक्त उनको बेहतर जीवन योग्य बनाते हैं।

आवास आजकल बहुत से लोगों की महत्त्वपूर्ण प्राथमिकता मानी जाने लगी है क्योंकि अधिकांश लोगों को आवश्यकतानुसार भोजन व वस्त्र मिलने लगा है। शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आश्रय यह इंगित करते हैं कि वे न केवल मानव संसाधनों को उत्पादक बनाने के उपकरण हैं बल्कि लोगों के कल्याण में भी वे प्रत्यक्ष योगदान देते हैं, इसलिए उनको सामाजिक आधारिक संरचनाएँ कहते हैं। इस अध्याय में हम तीन सामाजिक आधारिक संरचनाओं, जैसे, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा मकान पर चर्चा करेंगे।

शिक्षा (Education)

साक्षरता (Literacy)

हम साक्षरता से शुरू करें, परंतु साक्षरता ही शिक्षा नहीं है। एक निश्चित आयु से ऊपर के लोग जो किसी भी भाषा में किसी सरल परिच्छेद को समझकर पढ़ तथा लिख सकें, उन्हें हम **साक्षर** कहेंगे। स्वाभाविक रूप से सभी शिक्षित लोग इसमें सम्मिलित हैं। 1951 की जनगणना के अनुसार केवल 1/6 लोग ही साक्षर थे, शताब्दी के अंत तक लगभग 2/3 लोग साक्षर हो चुके हैं। वर्ष 1951 में साक्षरों की निरपेक्ष संख्या मुश्किल से 5.7 करोड़ थी। 0-6 वर्ष के वर्ग की जनसंख्या को छोड़कर वर्ष 2001 में उनकी संख्या लगभग 57 करोड़ हो

गयी। 50 वर्ष पूरे होने के बाद साक्षरों की संख्या 10 गुनी बढ़ गयी तथा साक्षरता दर 20 प्रतिशत से बढ़कर 65 प्रतिशत के ऊपर हो गयी। साक्षरता की प्रगति का पता लगाने के लिए हम सारणी 5.1 देख सकते हैं।

फिर भी, हमारी महिला साक्षरता दर अभी भी 55 प्रतिशत से कम है, जबकि पुरुष साक्षरता-दर 75 प्रतिशत से ज्यादा है। अभी भी हमें साक्षरता के क्षेत्र में, विशेषकर महिला साक्षरता के क्षेत्र में बहुत कुछ करना है। किंतु यह संतोषजनक बात है कि निरक्षरों की संख्या जो 1991 तक बढ़ रही थी, अब कम होनी शुरू हो गयी है। कुछ राज्यों जैसे केरल तथा मिजोरम, में साक्षरता दर 85 प्रतिशत से ज्यादा है, कुछ अन्य राज्यों, जैसे बिहार, में यह 35 प्रतिशत से कम है।

इसी तरह, हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की तुलना में साक्षरता 60 प्रतिशत से कम है जबकि शहरी पुरुष साक्षरता दर 86.7 प्रतिशत है, तथा ग्रामीण महिला साक्षरता दर केवल 46.7 प्रतिशत है। विभिन्न सामाजिक समूहों में साक्षरता दर में अंतर 40 प्रतिशत बिंदु (points) है।

विद्यालयी शिक्षा

लोग किसी भी आयु में साक्षर हो सकते हैं तथा कुछ ऐसे भी कार्यक्रम हैं जो प्रौढ़ शिक्षा पर केंद्रित हैं, सार्थक तथा स्थायी साक्षरता केवल विद्यालयों के द्वारा ही दी जाती है। हमारे संविधान में 14 वर्ष के आयु के सभी बच्चों के लिए राज्यों द्वारा सर्वशिक्षा (Universal Education) प्रदान करने का प्रावधान है। इसे 50 के दशक की शुरुआत में आयु 8 वर्षीय विद्यालयी शिक्षा के रूप में माना गया। इसका तात्पर्य यह है कि 6 वर्ष का प्रत्येक बालक या बालिका को विद्यालयों में होना चाहिए तथा हमने इसे वर्ष 1960 तक पूरा करने का संकल्प लिया था। छः लाख से अधिक कस्बों तथा गाँवों, जिनमें 10 लाख से अधिक आवास हैं (जो दूर-दूर तक बिखरे तथा आकार में छोटे हैं) , के लिए इस संकल्प की प्राप्ति संभवतः बहुत बड़ी महत्वाकांक्षा थी। 6 या 7 वर्ष के बच्चे का प्रतिदिन दूर तक चलकर जाना संभव नहीं।

सारणी 5.1

जनसंख्या आकार, साक्षरों की संख्या (करोड़ में) एवं साक्षरता दर (प्रतिशत में)

	जनसंख्या		*संख्या*		*साक्षरता दर*
वर्ष	*सभी*	*आयु 7+*	*साक्षर*	*निरक्षर*	*(प्रतिशत)*
(1)	(2)	(3)=(4)+(5)	(4)	5=(3) - (4)	(6)=(4)/(3)
1951	36.1	28.3	5.5	22.8	19.2
1961	43.9	34.4	10.2	24.2	29.8
1971	54.8	43.0	15.6	27.4	36.2
1981	68.4	53.6	23.4	30.2	43.6
1991	84.1	67.6	35.2	32.4	52.1
2001	102.7	86.9	56.7	30.2	65.4

टिप्पणी : *जनसंख्या आयु 7+ तथा साक्षरता दरें वर्ष 1951, 1961 तथा 1971 के लिए अनुमानित हैं जबकि वर्ष 1981, 1991 तथा 2001 के लिए ये वास्तविक आँकड़े हैं।*

स्रोत: *भारत की जनगणना सीरीज-1, भारत, 1981 तथा 1991 का पेपर 1।*

प्रारंभिक शिक्षा (Elementary Education)

हमें याद होगा कि लोक सभा ने 18 नवंबर 2001 को 93वें संविधान संशोधन के द्वारा एक अधिनियम पारित किया जिसमें यह घोषणा की गयी कि 6-14 वर्ष के बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का मौलिक अधिकार है। अभिभावकों/संरक्षकों का भी मौलिक कर्तव्य है कि वे 6-14 वर्ष के प्रत्येक बच्चे को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान करें।

प्रारंभिक शिक्षा को सामान्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है– कक्षा I-V को प्राथमिक विद्यालय तथा VI-VIII को उच्च प्राथमिक विद्यालय कहते हैं। इनके लिए बच्चों के आयु-वर्ग क्रमशः 6-11 वर्ष तथा 11-14 वर्ष हैं। वर्ष 1950-51 में हमारे पास 3 लाख प्राथमिक विद्यालय तथा 13,500 उच्च प्राथमिक विद्यालय थे। 1999-2000 में हमारे पास 6.4 लाख से ज्यादा प्राथमिक विद्यालय (उच्च स्तरीय विद्यालय की प्राथमिक कक्षाओं सहित) तथा 2.0 लाख से ज्यादा उच्च प्राथमिक विद्यालय थे।

वर्ष 1950-51 में प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन 2 करोड़ से कम था। आज यह 11 करोड़ से भी अधिक है (बच्चों की जनसंख्या तीन गुना बढ़ी जबकि नामांकन 5.5 गुना बढ़ा)। नामांकन को संबंधित आयु वर्ग से विभाजित करने की एक प्रथा हो गयी है, जिससे हम एक निश्चित समयावधि में तुलना कर सकें। इसको सकल नामांकन अनुपात कहते हैं। सकल नामांकन अनुपात वर्ष 1950-51 में मुश्किल से 43 प्रतिशत था किंतु अब यह 100 प्रतिशत से भी अधिक है। यह आश्चर्यजनक है कि यह अनुपात 100 से भी अधिक कैसे हो सकता है! इसका साधारण तात्पर्य है कि प्राथमिक कक्षाओं में केवल 6-11 वर्ष की आयु वर्ग का ही नामांकन नहीं हुआ था। हम जानते है कि अधिकांश कस्बों व शहरों के विद्यालय 5 वर्ष की आयु के बच्चे को कक्षा 1 में प्रवेश देते हैं। हमें यह भी जानना चाहिए कि 11 वर्ष से बड़े बच्चे भी दूर दराज के प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ रहे होंगे। फिर भी, इस आयु वर्ग में कई बच्चे विद्यालय नहीं भी जाते। लड़कियों में गैर-नामांकन अधिक प्रबल है। सारणी 5.2 देखें।

सारणी 5.2

प्रारंभिक शिक्षा संबंधी सांख्यिकी : नामांकन, स्कूल तथा अध्यापक

	इकाई	*1951*	*1961*	*1971*	*1981*	*1991*	*2000*
प्राथमिक							
नामांकन	लाख	186.8	336.3	570.4	737.7	973.7	1136.0
स्कूल	लाख	2.1	3.3	4.1	4.9	5.3	6.4
अध्यापक	लाख	5.5	7.4	10.6	13.6	16.2	19.2
नामांकन अनुपात	प्रतिशत	42.6	62.4	78.6	80.5	100.1	104.1
उच्च प्राथमिक							
नामांकन	लाख	33.0	74.8	133.1	207.2	273.1	420.6
स्कूल	लाख	0.14	0.5	0.9	1.2	1.5	1.98
अध्यापक	लाख	0.9	3.5	6.4	8.5	9.7	13.0
नामांकन अनुपात	प्रतिशत	12.9	22.5	34.2	41.9	60.1	58.8

स्रोतः *इंडिया ईयर बुक 2001, मैनपावर प्रोफाइल, इंस्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड मैनपावर रिसर्च, नई दिल्ली।*

उच्च प्राथमिक कक्षाओं में नामांकन वर्ष 1950-51 में केवल 13 प्रतिशत था, जिसमें 21 प्रतिशत लड़के थे तथा 5 प्रतिशत लड़कियाँ थीं। आज लगभग 70 प्रतिशत लड़कों व 50 प्रतिशत लड़कियों के उच्च प्राथमिक कक्षाओं में उपस्थिति का अनुमान है। पिछले 50 वर्षों में उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या जो 14,000 से कम थी, जो बढ़कर 2 लाख हो गयी है। विद्यार्थियों की संख्या वर्ष 1950-51 में 33 लाख से बढ़कर 1999-2000 तक 4.2 करोड़ हो गयी। यद्यपि महिलाओं और पुरुषों के नामांकन में विषमता कम हो रही है फिर भी यह विद्यमान है।

प्रशिक्षित अध्यापकों का अनुपात बढ़ रहा है तथा इसी प्रकार महिला अध्यापकों का अनुपात भी बढ़ रहा है। ऐसा माना जाता है कि प्रशिक्षित अध्यापक अच्छा पढ़ाते हैं तथा विद्यालय स्तर पर महिलाएँ अच्छी अध्यापिका सिद्ध होती हैं।

अधिकतर प्राथमिक विद्यालय स्थानीय, राज्य अथवा केंद्र सरकारों के द्वारा चलाए जाते हैं। अपने-अपने क्षेत्रों में राज्य सरकार शिक्षा के क्षेत्र में मुख्य भूमिका निभाती है। किंतु बहुत से स्कूल समाज/संस्था/ट्रस्ट द्वारा भी चलाए जाते हैं। इनको पब्लिक स्कूल कहा जाता है।

विद्यालय छोड़ने वाले विद्यार्थियों (drop-outs) का एक महत्त्वपूर्ण विषय हमारे लिए ध्यानाकर्षण योग्य है। विद्यार्थी कक्षा I (या VI) में नामांकन कराते हैं तथा कक्षा V(या VIII) तक की पढ़ाई पूरी किए बिना ही पढ़ना छोड़ देते हैं। कुल आरंभिक नामांकन में, ऐसे विद्यार्थियों के अनुपात को **ड्रॉप-आउट अनुपात** कहते हैं। केवल 60 प्रतिशत विद्यार्थी ऐसे हैं जो कक्षा I में नामांकन कराने के बाद कक्षा V तक पढ़ते हैं और कक्षा VI में नामांकन कराते हैं, केवल 50 प्रतिशत ही कक्षा VIII तक पढ़ पाते हैं।

केंद्र सरकार तथा राज्य सरकारें प्रतिवर्ष लगभग 60,000 करोड़ रुपयों से अधिक (जो कि सकल घरेलू उत्पाद के 4 प्रतिशत से कम है) शिक्षा पर खर्च करती हैं। भारत में इसका 50 प्रतिशत व्यय प्राथमिक शिक्षा पर होता है। कुछ जगह ऐसी हैं जहाँ शिक्षा की सुविधा प्रदान करना बहुत कठिन है, क्योंकि वहाँ पर या तो जनसंख्या बहुत कम है या लोग अपनी जीविका के लिए विभिन्न स्थानों पर घूमते रहते हैं। कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं, जहाँ लोग बहुत गरीब हैं तथा बच्चों को स्कूल नहीं भेज सकते हैं। ऐसे स्थानों पर अधिकतर माँ-बाप अपने या किसी और के खेतों पर काम

भारत में पब्लिक स्कूल

भारत में पब्लिक स्कूलों का स्वामित्व तथा प्रबंधन सरकार के पास नहीं है। वे समाज का वर्गों के आधार पर विभेद किए बिना जनता के लिए खुले हैं। इनकी तुलना परिवहन क्षेत्र से की जा सकती है। कुछ गाड़ियों का स्वामित्व सरकार के पास है तथा कुछ गाड़ियों का दूसरों के पास। जो गाड़ियाँ सरकारी स्वामित्व में नहीं होती हैं, उन्हें पब्लिक तथा प्राइवेट कैरियर में वर्गीकृत कर सकते हैं। निजी वाहन तथा प्राइवेट कंपनियों के वाहन उनके अपने माल वहन करते हैं इसलिए उन्हें प्राइवेट कहा जाता है। वाहन जो लोगों से किराया लेकर तथा माल का वहन भुगतान के आधार पर करते हैं, उन्हें पब्लिक गाड़ियाँ कहते हैं। हमारे पब्लिक स्कूल "पब्लिक" इस अर्थ में है कि उनका स्वामित्व सोसाइटी, एसोसिएशन अथवा ट्रस्ट के पास है न कि सरकार के पास। अन्य बातों के आधार पर उनमें विभेदन हो सकता है, जिनमें से योग्यता एक है।

करते हैं तथा लड़के पशुओं को चराते हैं तथा लड़कियाँ छोटे भाई-बहनों की देखभाल करती हैं। कुछ क्षेत्रों में, एक निश्चित आयु के बाद माँ-बाप लड़कियों को विद्यालय जाने की अनुमति नहीं देते। इसका आशय यह है कि कुछ स्थानों पर विद्यालयों की सुविधा नहीं है तो कुछ स्थानों पर इन सुविधाओं का प्रयोग नहीं होता।

इन समस्याओं को दूर करने के लिए भारत सरकार की सहायता द्वारा 6-14 वर्ष के बच्चों के लिए अनौपचारिक शिक्षा की एक योजना शुरू की गयी। शुरू में 1986-87 में ग्रामीण, जनजातीय, रेगिस्तानी, पहाड़ी तथा सुदूर क्षेत्रों, शहरी गंदी बस्तियों के लिए शिक्षा के पिछड़े नौ राज्यों में अनौपचारिक स्कूल खोले गए। इस काम के लिए लगभग 500 स्वैच्छिक संगठनों (जहाँ संभव हो सके) को सम्मिलित कर लगभग 3 लाख अनौपचारिक स्कूल खोले गए (इनमें एक लाख स्कूल केवल लड़कियों के लिए थे), जिनमें 75 लाख बच्चों का नामांकन हुआ। प्रत्येक अनौपचारिक स्कूल में औसतन नामांकन 25 था। प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम जो मूलतः 15-35 वर्ष के निरक्षरों के लिए थी उसमें भी 6-14 वर्ष के बच्चे जो स्कूल नहीं जा पाए थे, उनका नामांकन किया गया।

राज्य सरकारों ने भी प्राथमिक शिक्षा को व्यापक करने के विचार से उन बच्चों के लिए जो अभी भी स्कूलों से बाहर हैं, कई पूरक योजनाएँ आरंभ कीं। यह अंशतः संविधान की बाध्यता को पूरा करने के लिए तथा अंशतः हाल के सर्वोच्च न्यायालय की उद्घोषणा तथा संविधान के संशोधन के कारण, जिसमें 'प्राथमिक शिक्षा बच्चे का मूल अधिकार' माना गया, के कारण आवश्यक हुआ। बहुत से विद्वानों ने इन पूरक प्रयासों को प्राथमिक शिक्षा का तनुकरण (dilution) बताया। उनके विचार से प्रत्येक बच्चे को, चाहे वह किसी जाति, रंग, संस्कृति, धर्म, लिंग या निवास स्थान का हो, समान शिक्षा का अधिकार है। उनका सुझाव था कि सरकार को एक समान स्कूल व्यवस्था को अपनाना चाहिए, जो पड़ोस के विद्यालय में नामांकन के द्वारा चलाए जा सकें।

आठवीं कक्षा तक के लिए शिक्षा की एक पृष्ठभूमि बनायी गयी जहाँ पर लोग विशेष कुशलता का विकास कर अपने आपको समुदाय के लिए अधिक उत्पादक बना सकें। कुछ बच्चे आठवीं तक की शिक्षा प्राप्त कर अर्थव्यवस्था की श्रम-शक्ति में जा सकते हैं तथा कुछ व्यावसायिक शाखाओं में अपना अध्ययन आगे बढ़ा सकते हैं।

कुछ औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं, पॉलीटेक्नीक तथा कुछ नर्सिंग-स्कूलों को छोड़कर ऐसी बहुत कम संस्थाएँ हैं जहाँ बच्चे आठवीं या दसवीं पास करके जा सकते हैं। साधारणतः व्यावसायिक पाठ्यक्रम 12वीं कक्षा के बाद आरंभ होते हैं। अब माध्यमिक शिक्षा की क्या स्थिति है? इसके लिए गंभीर विचार करने की आवश्यकता है।

माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education)

माध्यमिक स्तर की शिक्षा (14-18 वर्ष के आयु वर्ग के लिए) विद्यार्थी को उच्च शिक्षा तथा कार्य के संसार में प्रवेश के लिए तैयार करती है। पहले हमारे यहाँ 10+ 2+3 अथवा 10+2+2 प्रणाली थी । उसके बाद 11+3 प्रणाली आई। बाद में हम फिर से 10+2+3 प्रणाली पर आ गए। यह परिवर्तन अब समाप्त हो गया है। जहाँ तक गैर-व्यावसायिक शिक्षा का सवाल है यह 10+2+3 है। व्यावसायिक शिक्षा 10+2+4 है। अब 12वीं तक की शिक्षा स्कूल प्रणाली का एक हिस्सा है। IX व X की

कक्षाओं की शिक्षा को माध्यमिक शिक्षा तथा XI-XII की कक्षाओं की शिक्षा को उच्चतर माध्यमिक शिक्षा कहते हैं। वर्ष 1950-51 में ऐसे विद्यालय/महाविद्यालय/विभागों में लगभग 73सौ तथा 13 हज़ार अध्यापक व 32 लाख विद्यार्थी थे। अब हमारे यहाँ 1.16 लाख विद्यालय, 15 लाख अध्यापक तथा 280 लाख विद्यार्थी हैं। सारणी 5.3 देखें।

सारणी 5.3
माध्यमिक शिक्षा : नामांकन, स्कूल व अध्यापक संबंधित सांख्यिकी

	इकाई	*1951*	*1961*	*1971*	*1981*	*1991*	*2000*
नामांकन	लाख	12.2	34.63	65.80	88.07	143.65	185.82
स्कूल	लाख	0.07	0.17	0.37	0.51	0.80	1.17
अध्यापक	लाख	1.26	2.96	6.29	9.12	13.34	17.20
नामांकन अनुपात	प्रतिशत	5.3	10.6	19.00	17.30	24.00*	-

* *वर्ष 1990 के लिए*

स्रोत: इंडिया 1985 रेफरेंस मेन्यूअल, पब्लिकेशनस् डिवीजन, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार तथा इंडिया ईयर बुक 2001 : मेनपावर प्रोफाइल, इन्स्टीटयूट ऑफ एप्लाईड मेनपावर रिसर्च, नई दिल्ली।

माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक बनाने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। कुछ समय पहले अस्सी के दशक के अंत में यह प्रस्ताव दिया गया था कि वर्ष 1995 तक उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों में से 10 प्रतिशत विद्यार्थियों को तथा वर्ष 2000 तक 25 प्रतिशत विद्यार्थियों को व्यावसायिक धारा की ओर मोड़ देना चाहिए। ऐसा लगता है कि हम 10 लाख विद्यार्थियों के लिए प्रशिक्षण-क्षमता (जो कि कुल नामांकन का 5 प्रतिशत है) उत्पन्न करने में सफल हो गए हैं। हमारे यहाँ लगभग 4000 औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (ITI s) हैं, जिनके अंतर्गत विभिन्न व्यवसायों में 6-7 लाख विद्यार्थियों के प्रशिक्षण की क्षमता है।

उच्च शिक्षा (Higher Education)

शैक्षिक सूची स्तम्भ के शिखर पर होने के कारण उच्च-शिक्षा, शिक्षा प्रणाली में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आशा की जाती है कि उच्च शिक्षा लोगों को सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक मुद्दों की नाजुक स्थिति का सामना करने वाली मानवता को अभिव्यक्त करने का एक अवसर प्रदान करेगी। उच्च शिक्षा का दूसरा पहलू, जो तकनीकी शिक्षा (प्रबंधन शिक्षा के सहित) आयुर्विज्ञान शिक्षा, कृषि शिक्षा (पशु चिकित्सा सहित) तथा वानिकी की सुविधा प्रदान करता है।

वर्ष 1950-51 से उच्च शिक्षा प्रणाली में विश्वविद्यालयों में 12 गुना बढ़ोतरी, महाविद्यालयों की संख्या में 23 गुना बढ़ोतरी तथा नामांकन में 29 गुना बढ़ोतरी हुई है। अब लगभग 250 से कुछ कम विश्वविद्यालय/डीम्ड (मान्यता प्राप्त) विश्वविद्यालय/राष्ट्रीय महत्त्व की संस्थाएँ, पौलीटेकनीक, प्रौद्योगिकी महाविद्यालय तथा प्रबंधन संस्थाओं सहित लगभग 11000 महाविद्यालय हैं। सामान्य शिक्षा (कला, विज्ञान व वाणिज्य इत्यादि) के लिए 3.5 लाख अध्यापक हैं, जिसमें 80,000

अध्यापक (विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं के भी) सम्मिलित हैं। कुछ अन्य संस्थाएं भी हैं जो विभिन्न प्रकार से उच्च शिक्षा प्रदान करती हैं, जिनको डिग्री अथवा डिप्लोमा प्रदान करने का औपचारिक अधिकार नहीं मिला हुआ है।

उच्च माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम के बाद लगभग 75 लाख विद्यार्थी हैं जो किसी न किसी प्रकार का पाठ्यक्रम तथा 15 लाख व्यावसायिक पाठ्यक्रम कर रहें हैं। यह ध्यान रहे कि हमारी शिक्षा प्रणाली का झुकाव सामान्य शिक्षा की ओर है (कला में 40 प्रतिशत, वाणिज्य में 22 प्रतिशत तथा विज्ञान में 19 प्रतिशत नामांकन हैं) ।

शैक्षिक वित्त (Educational Finance)

वित्त हमारे प्रयासों का हमें एक संकेत देता है, यद्यपि यह जानना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि पैसा कहाँ खर्च होता है, कैसे खर्च होता है और कौन ख़र्च करता है। वर्ष 1976 से शिक्षा एक समवर्ती विषय है, जिसमें केंद्र व राज्य दोनों स्तर की सरकारें संसाधनों का व्यय करती हैं। हालांकि राज्यों को काफी जिम्मेदारी निभानी पड़ती है। सरकारों के अलावा अभिभावक भी संसाधनों को अपने बच्चों पर खर्च करते हैं तथा लोकोपकारी दूसरों के बच्चों पर खर्च करते हैं।

देश में, दोनों स्तरों की सरकारों ने मिलकर शताब्दी के अंत तक लगभग 60,000 करोड़ रुपये खर्च किया, जिसमें से राज्य सरकारों ने 50,000 करोड़ रुपये से ज्यादा, तथा केंद्र सरकार ने लगभग 7000-8000 करोड़ रुपये खर्च किए। विभिन्न राज्य सरकारों ने अपने बजट का 10 से 30 प्रतिशत तक खर्च किया, जो औसतन 20 प्रतिशत होता है। दूसरी ओर, केंद्र सरकार अपने बजट का वार्षिक 3 प्रतिशत से कम शिक्षा पर खर्च करती है। सरकार पूरी तरह से सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 4 प्रतिशत खर्च करती है। संस्थाओं के कुल खर्च में सरकार 80-90 प्रतिशत वहन करती है, तथा शेष स्थानीय निकायों (7 प्रतिशत), शुल्क (4-5 प्रतिशत) तथा स्थायी निधि (3 प्रतिशत) द्वारा वहन किया जाता है।

सरकार शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर व्यय का आबंटन करती है। लगभग 50 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा पर, 30 प्रतिशत माध्यमिक शिक्षा पर, 20 प्रतिशत उच्च शिक्षा पर, 12-14 प्रतिशत सामान्य शिक्षा तथा 4-5 प्रतिशत तकनीकी शिक्षा पर किया जाने वाला व्यय है। यह वर्तमान वर्षों की स्थिति है।

स्वास्थ्य

जनसंख्या की स्वास्थ्य-स्थिति का अध्ययन करने के दो तरीके हैं। एक, हमारी जीवन-अवधि कितनी है तथा हमारा स्वास्थ्य कैसा है? दूसरा, हमारी कितनी देखभाल होती है। पहले हम अपनी जन्म-मरण संबंधी सांख्यिकीय की स्थिति देखेंगे। उसके बाद देखेंगे कि हमारे स्वास्थ्य की देखभाल कैसे तथा किस सीमा तक होती है?

जन्म-मरण सांख्यिकी (Vital Statistics)

विभिन्न आयु-वर्गों में मृत्यु दरों को देखते हुए हमें यह जानना चाहिए कि किसी बच्चे के जन्म के बाद कितनी आयु तक जिंदा रहने की संभावना है। इसे हम जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा कहेंगे। शताब्दी के शुरू में जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा मुश्किल से 25 वर्ष थी। वर्ष 1921 के पहले के मृत्यु दर के आधार पर हमारी जीवन-प्रत्याशा घट कर 20 वर्ष हो गयी। सारणी 5.4 देखें। मृत्यु की स्थिति में बाद में सुधार हुआ तथा हमारी जीवन प्रत्याशा (जन्म के समय) धीरे-धीरे बढ़कर 1951

में 32 वर्ष हो गयी। स्वतंत्रता के बाद हमने खाद्य, पोषण तथा स्वास्थ्य के क्षेत्र में अनेक कदम उठाए जिससे हमारी जीवन-प्रत्याशा (जन्म पर) शताब्दी के अंत तक बढ़कर 65 वर्ष तक पहुंच गयी। हमारे जनसांख्यिकीकार तथा बीमांकिक सांख्यिकीज्ञाता विभिन्न आयु के लिए जीवन-प्रत्याशा की गणना करते हैं, जैसे 1, 5, 10, 20, 30, 40, 50, 60, तथा 70 वर्ष पर। हम सब जानते हैं कि लोग विभिन्न आयु में मरते हैं। विभिन्न लोग एक ही वर्ष में पैदा होकर विभिन्न वर्षों में मरते हैं। समूह की जीवन-प्रत्याशा उस समूह के औसत जीवन-काल से है (वर्षों की संख्या में) जितनी कि उस समूह के जीवित रहने की संभावना है। x-आयु पर जीवन-प्रत्याशा सुधरती है, जब बचपन में जैसे-जैसे आयु बढ़ती है मृत्यु होने की संभावना कम होती रहती है। जन्म पर मृत्यु की संभावना बहुत अधिक होती है, फिर पहले दिन, पहले सप्ताह, पहले महीने तथा पहले वर्ष घटते हुए क्रम में होती है। उदाहरण के लिए, जन्म पर जीवन-प्रत्याशा की तुलना में, 1 वर्ष की आयु में जीवन-प्रत्याशा 4 वर्ष अधिक होगी। जबकि बच्चे जो जीवित रह गए, वे पहले से ही एक वर्ष की आयु तक जीवित रह चुके हैं। यह प्रवृत्ति हमेशा के लिए नहीं रहती तथा एक निश्चित आयु (जैसे 10 वर्ष) के बाद मृत्यु की संभावना घटने लगती है। परिणामतः 10 वर्ष पर जीवन-प्रत्याशा, जन्म पर जीवन-प्रत्याशा से कुछ अधिक होगी। हम सारणी 5.4 की ऊपर की पंक्तियों में यह देख सकते हैं, जीवन-प्रत्याशा (10 वर्ष पर), जीवन-प्रत्याशा (जन्म पर) से 10 वर्ष के अधिक होगी। जबकि ये लोग पहले से ही 10 वर्ष का जीवन बिता चुके होंगे । यह स्थिति शताब्दी के आरंभ में भी थी। स्वतंत्रता के बाद, (जैसा हम सारणी में नीचे की पंक्तियों में देख सकते हैं), जीवन-प्रत्याशा (10 वर्ष पर) जीवन प्रत्याशा (जन्म पर) के बराबर हो गयी। अतः जीवन-प्रत्याशा सुधर गयी है।

सारणी 5.4 के आँकड़े जनगणना के आँकड़ों से तैयार किए गए हैं। वर्ष 1970 से हमारे पास

सारणी 5.4
जनगणना वर्षों के लिए चयनित आयु के लिए जीवन-प्रत्याशा

(वर्षों में)

	जन्म		*आयु 10*		*आयु 30*		*आयु 50*		*आयु 60*	
वर्ष	*पुरुष*	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*
1901	23.6	24.0	34.7	33.9	22.9	23.8	13.6	14.5	09.5	10.0
1911	22.6	23.3	33.4	33.7	22.5	23.0	14.0	14.3	10.0	10.1
1921	19.4	20.9	29.6	29.2	21.6	21.8	14.3	15.0	10.7	11.7
1931	26.9	26.6	36.4	33.6	23.6	22.3	14.3	14.7	10.3	10.8
1941	32.1	31.4	41.2	38.6	29.0	27.9	17.8	18.2	12.6	13.7
1951	32.5	31.7	39.0	39.5	26.6	26.2	14.9	16.1	10.1	11.3
1961	41.9	40.5	45.2	43.8	29.0	27.9	16.5	17.5	11.8	13.0
1971	46.4	44.7	48.8	47.7	33.5	32.0	19.2	19.7	13.6	13.8

स्रोत : *हेल्थ इनफोर्मेशन ऑफ इंडिया 1997 व 1998, सेन्ट्रल ब्यूरो ऑफ हेल्थ इन्टेलीजेन्स, डायरेक्टर जनरल ऑफ हेल्थ सर्विसेज, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, 2000।*

'सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम' के आँकड़े हैं। जीवन-प्रत्याशा के आँकड़े, जो इन मूल आँकड़ों पर आधारित हैं, सारणी 5.5 में दिए गए हैं। सारणी 5.5 में दो लिंगों की जीवन-प्रत्याशा जिस आयु पर मापी गयी है, वह जो सारणी 5.4 में दिए गए आँकड़ों के समान नहीं है।

उपर्युक्त सारणी में से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं :

(1) जीवन-प्रत्याशा को आयु तथा लिंग के लिए माप सकते हैं।

(2) जैसे-जैसे आयु बढ़ती है महिलाओं की जीवन-प्रत्याशा पुरुषों की जीवन-प्रत्याशा से अधिक होती है।

(3) अस्सी के दशक से महिलाओं की जीवन-प्रत्याशा पुरुषों की जीवन-प्रत्याशा से अधिक है।

यह एक अच्छा प्रतीक है। नवीनतम अनुमान बताते हैं कि महिला जीवन-प्रत्याशा 65.3 वर्ष है जबकि पुरुष जीवन-प्रत्याशा 62.3 वर्ष है। हम सभी लंबी आयु चाहते हैं (अच्छे स्वास्थ्य के साथ) किंतु हम यह भी जानते हैं कि हमारा जीवन अनंत लंबा नहीं हो सकता है। यदि लोग समाज-सेवा करके मरते हैं तो हमें उतना बुरा नहीं लगता। यदि लोग शिशु-अवस्था अथवा बाल्यावस्था में मरते हैं तो समाज में उनका योगदान कुछ भी नहीं होता है। हम इसे जीवन का व्यर्थ होना मानते हैं, क्योंकि इससे माँ का स्वास्थ्य, समय तथा धन की हानि होती है। खुशी का विषय है कि सभी आयु-वर्गों में मृत्युदर कम हो गयी है, विशेषकर शिशु मृत्यु दर के कम होने पर।

हम देखते हैं कि शताब्दी के दौरान जब प्रति हजार जनसंख्या पर मृत्युदर कम हुई है, आरंभ में 45, मध्य में 45 से कम होकर 25 तथा शताब्दी के अंत में 9 हो गयी। शिशु मृत्यु दर (प्रति हजार जीवित जन्म दर) जो आरंभ में 200 से ऊपर थी, मध्य में कम होकर 145 तथा शताब्दी के अंत में 70 हो गयी। हम आगे देखते हैं कि शहरी क्षेत्रों में जबकि सामान्य मृत्यु दर 6.5 है, शिशु मृत्यु-दर 45 है। तथापि, अभी भी शिशु मृत्यु दर कम होने की सम्भावना है तथा हम अगले 10 वर्षों में इसे घटाकर 30 करना चाहते हैं।

सारणी 5.5

विभिन्न आयु में जीवन-प्रत्याशा (सेम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम पर आधारित)

(वर्षों में)

	जन्म दर		*आयु 1*		*आयु 5*		*आयु 50*		*आयु 60*	
	पुरुष	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*	*पुरुष*	*महिला*
1970-75	50.5	49.0	57.0	55.6	57.5	57.7	19.8	21.3	13.4	14.3
1976-80	52.5	52.1	58.6	58.6	58.8	60.2	20.5	23.0	14.1	15.9
1981-85	55.4	55.7	60.8	61.1	60.1	61.8	21.4	23.8	14.6	16.4
1986-90	57.7	58.1	62.2	62.6	60.9	62.5	21.7	23.7	14.7	16.1
1991-95	59.7	60.9	63.9	65.1	61.8	63.9	22.3	24.8	15.3	17.1

स्रोत : कम्पेडियम ऑफ इंडिया फरटीलिटी व मोरटिलिटी इंडीकेटरस् 1971-1997, सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम पर आधारित, रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

यह याद रखना चाहिए कि समाज को आगे बढ़ाने के लिए जन्म जरूरी है, किंतु इनका अत्यधिक होना भी अल्पकाल में समस्याएँ पैदा कर सकता है तथा हमारी उपलब्धियों को कम कर सकता है। फिर भी एक बार जब शिशु जन्म ले लेता है तो मानव-समुदाय चाहता है कि वह जीवित रहे, अपना योगदान दे तथा जीवन का आनंद उठाए।

जन स्वास्थ्य (Public Health)

यह कैसे संभव हो सकता है कि लोग ज्यादा स्वस्थ तथा उत्पादक/सार्थक जीवन व्यतीत करें तथा बाल्यावस्था में नहीं मरें। पहला, बच्चे स्वस्थ होने चाहिए, जिसके लिए माँ के स्वस्थ होने की जरूरत है। दूसरा, वे सभी तरह के टीके इत्यादि लगवाएँ। तीसरा, उन्हें स्वच्छ वातावरण का आनंद लेना चाहिए। चौथा, उन्हें पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक भोजन मिलना चाहिए। पाँचवाँ, उन्हें बीमार होने पर पर्याप्त चिकित्सा सुविधाएँ मिलनी चाहिए। इनके अतिरिक्त बच्चों को खेलने तथा सीखने का मौका मिलना चाहिए और उन पर काम करने का दबाव नहीं होना चाहिए। यहाँ तक कि वयस्कों को स्वच्छ वातावरण, पौष्टिक भोजन, आश्रय तथा बीमार पड़ने पर स्वास्थ्य सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए। प्रत्येक के पास वस्त्र तथा आश्रय होना चाहिए। वयस्कों को काम करने का अवसर मिलना चाहिए ताकि वे अवश्य काम करें। पहले तीन प्रेक्षण जन स्वास्थ्य के वर्ग में आते हैं। जन स्वास्थ्य की दिशा में किए गए उपायों के कारण ही हमारे जीवन के स्तर में सुधार हुआ है।

बाल्यावस्था में मृत्यु के कारण पूरे जीवन के व्यर्थ होने से आंशिक विकलांग बनकर जीने से बचाने के लिए हमें अपने बच्चों तथा उनकी माताओं के स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखना चाहिए। यदि आप गाँव में हैं, तो आपने बच्चों के लिए विभिन्न टीकाकरण के शिविर तथा टीकाकरण के कार्यक्रमों के बारे में दीवारों पर लिखा हुआ देखा होगा। यदि आप कस्बों अथवा शहरों में रह रहे हैं तो आपने तख्ते देखे होंगे जिन पर बच्चों के सामाजिक टीकाकरण कार्यक्रमों की तिथियाँ लिखी होंगी। पहले की तुलना में गर्भवती माताओं तथा बच्चों की ओर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। गर्भवती माताओं को टेटनस के संक्रमण से बचाने के लिए टेटनस (Tetanus Toxoid) के टीके दो बार लगवाने चाहिए। वर्ष 1980-81 में भी केवल 53 लाख माताओं ने टी.टी. का टीका लगवाया तथा वर्ष 1996-97 में उनकी संख्या 2 करोड़ 30 लाख

जन स्वास्थ्य

औद्योगिक क्रांति का स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा था। यह समाज के लिए चिंता का विषय था तथा इस पर सरकार के सतत प्रयास की जरूरत पड़ी। यह महसूस किया गया कि औद्योगिक क्रांति तथा शहरीकरण के कारण खराब स्वास्थ्य तथा असामयिक मृत्यु के रूप में मानव लागत (human cost) बहुत अधिक थी। ऐसा पता चला कि गंदे वातावरण के कारण संक्रामक रोग फैलते हैं। 1842 में, स्वास्थ्य की स्थिति पर एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन प्रकाशित हुआ था। 6 वर्ष तक संघर्ष के बाद, 1848 में ब्रिटिश संसद में एक स्वास्थ्य अधिनियम पारित किया गया। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप 1919 में ब्रिटेन में स्वास्थ्य मंत्रालय की स्थापना हुई।

यह उल्लेखनीय है कि कौटिल्य स्वास्थ्य तथा सफाई के बारे में बहुत जागरुक थे। उन्होंने इसे नागरिक कर्त्तव्य का एक अंग बना दिया था कि कोई भी सार्वजनिक स्थानों, उद्यानों तथा गलियों को गंदा नहीं करेगा। उन्होंने इसे एक सजा-योग्य अपराध घोषित कर दिया था। शायद उन दिनों औद्योगिक प्रदूषण था ही नहीं।

पहुंच गयी। माताओं, विशेषकर गर्भवती तथा स्तनपान कराने वाली माताओं के रक्तक्षीणता से बचाव के लिए इस रोगनिरोधन का टीका लगवाना चाहिए। दुर्भाग्यवश, ज्यादातर भारतीय महिलाएँ अपर्याप्त पोषण के कारण रक्तक्षीणता से पीड़ित हैं। ऐसी माताओं से पैदा हुए बच्चे भी रक्तक्षीणता से पीड़ित होंगे।

बच्चों को विभिन्न बीमारियों के लिए टीके लगाकर सुरक्षित रखना चाहिए (जैसे- डिफथेरिया, परटुसिस तथा टेटनस DPT टीके द्वारा; पोलियो- ओरल पोलियो टीके द्वारा; मीजल्स-बेसिलस कालिमेटे गुएरिन (BCG) टीके द्वारा; अंधापन- विटामिन A के द्वारा), इत्यादि। परिवार कल्याण विभाग (भारत सरकार के परिवार कल्याण मंत्रालय का) सामूहिक टीकाकरण कार्यक्रम, (यूनीवर्सल इम्यूनाइजेशन प्रोग्राम) के अंतर्गत सभी बच्चों को ऐसी बीमारियों से बचाने का प्रयास कर रहा है (अधिकतर ये टीके भारत में सरकारी तथा निजी क्षेत्र की कंपनियों द्वारा बनाए जा रहे हैं)।

पहले प्लेग तथा काला-ज़ार जैसी महामारियाँ कभी-कभी फैलती थीं तथा इससे भारी हानि होती थी। स्वच्छता की कमी से भी ये बीमारियाँ फैलती हैं। 1994 में प्लेग सूरत (गुजरात) में फैल गया था। बिहार में अभी भी काला-ज़ार तथा इससे मृत्यु की रिपोर्ट मिलती है। हजारों की मृत्यु का कारण हैजा तथा चेचक दो बड़े अभिशाप हुआ करते थे। वर्ष 1977 से चेचक का उन्मूलन हो गया है। हैजे के रोगियों की संख्या जो पहले दस हजारों में होती थी, कम होकर हजारों में हो गयी, परंतु अभी भी इससे कुछ मौतें हो जाती हैं। किंतु अतिसार जैसी बीमारियाँ अभी भी एक प्रतिशत लोगों को प्रभावित करती हैं तथा कुछ हजार लोगों की मृत्यु का कारण भी होती हैं। दुर्भाग्यवश, मलेरिया का प्रभाव अभी भी अधिक है। लाखों लोग इससे पीड़ित हैं तथा सैकड़ों लोग इससे मर भी जाते हैं। इतनी ही हानि जापानी मस्तिष्क ज्वर से होने की सूचना मिली है। राष्ट्रीय मलेरिया विरोधी कार्यक्रम (पहले राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम) मलेरिया, काला-ज़ार, मस्तिष्क ज्वर तथा फाईलेरिया से रक्षा करता है। लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या, संवाहकों द्वारा फाईलेरिया के जोखिम से प्रभावित हैं तथा इसके रोगी भी करोड़ों में है। इसी प्रकार, हमारे यहाँ राष्ट्रीय कुष्ठरोग निवारण कार्यक्रम हैं जो 5 लाख से अधिक रोगियों की रक्षा करता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय तपेदिक (T.B.) नियंत्रण कार्यक्रम, राष्ट्रीय घेंघा नियंत्रण कार्यक्रम, राष्ट्रीय अंधापन नियंत्रण कार्यक्रम भी हैं।

एस.टी.डी., एच.आई.वी. सकारात्मक तथा एड्स के निवारण तथा उपचार के लिए एक राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन है, जो रोगियों को स्वास्थ्य-सुविधाएँ देता है। एड्स न केवल रोगियों का स्वास्थ्य खराब करता है, बल्कि उन्हें दूसरी बीमारियों के प्रति अतिसंवेदनशील भी बनाता है। इससे व्यक्ति एवं समुदाय दोनों को कीमत चुकानी पड़ती है।

STD, HIV तथा AIDS
STD = Sexually Transmitted Diseases
HIV = Human Immunodeficiency Virus
AIDS = Acquired Immune Deficiency Syndrome

स्वच्छ वातावरण तथा पौष्टिक भोजन के बारे में आप क्या सोचते हैं? आइए, हम संयत कार्यसूची के साथ आगे बढ़ें। एक दूषित पीने के पानी के प्रयोग से कई प्रकार की बीमारियाँ तथा कुछ मौतें भी हो जाती हैं। ये बीमारियाँ हैं — डायरिया, ट्रेकोमा, इनेटस्टाइनल वर्म, हेपेटाइटिस तथा टायफाइड। इन बीमारियों के परिणाम हैं — अस्थायी विकलांगता तथा अनावश्यक उपचार, स्थायी विकलांगता तथा निवार्य जीवन की हानि।

50 प्रतिशत रोगी संक्रामक रोगों से पीड़ित हैं, जिसमें से 20 प्रतिशत जल-जनित रोगों से पीड़ित हैं। 5 वर्ष की कम उम्र के 25 प्रतिशत बच्चे दस्त से मरते हैं। करोड़ों श्रम-दिनों की हानि जल-जनित बीमारियों से होती है। अतः हम प्रत्येक व्यक्ति को पीने के सुरक्षित पानी की सुविधाएँ सुनिश्चित करें। तथापि, पिछले 15 वर्षों में सुरक्षित पीने के पानी के क्षेत्र में काफी सुधार हुआ है। ऐसा कहा गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में पीने के सुरक्षित पानी की उपलब्धता 1985 में 56 प्रतिशत से बढ़कर 1999 में 82 प्रतिशत हो गई है।

शहरी क्षेत्रों में वातावरण सुधर सकता है, यदि सफाई-सुविधा उपलब्ध हों। शहरी क्षेत्रों में काफी प्रयास करने के बावजूद वर्ष 1985 में 30 प्रतिशत के विपरीत वर्ष 1997 में केवल 50 प्रतिशत जनसंख्या को सफाई सुविधाएँ प्राप्त हुईं। ग्रामीण क्षेत्र में ये सुविधाएँ, वर्ष 1985 में 0.8 प्रतिशत की तुलना में अभी 8 प्रतिशत जनसंख्या को उपलब्ध हैं।

स्वास्थ्य देख-भाल व्यवस्था (Health Care System)

ऐसी आशा करना कि हम बीमार न पड़ें अच्छी बात है। हमें सफाई के उपायों, जन-स्वास्थ्य के उपायों तथा स्वास्थ्य, पोषण व सफाई संबंधी छोटी-छोटी सलाहों द्वारा बीमारियों से बचना चाहिए। यदि हमें बीमारी हो, तो हमें इसका उपचार करना चाहिए। इसका तात्पर्य है कि हमारे यहाँ अस्पताल, दवाखाना, स्वास्थ्य केंद्र, डाक्टर, नर्सें, दवा-विक्रेता तथा स्वास्थ्य सलाहकार एवं मार्गदर्शक भी होने चाहिए। तथापि, हम जानते हैं कि ऐलोपैथी के अतिरिक्त आयुर्वेद, होम्योपैथी, यूनानी, सिद्धा,

रुग्णता (Morbidity)

रुग्णता खराब स्वास्थ्य की स्थिति है। इससे आपको अच्छा नहीं लगेगा अथवा दूसरे लोग भी आपके बारे में चिंतित होंगे। आप तीक्ष्ण अथवा चिरकालिक बीमारियों से पीड़ित हुए होगें । यह आपको अस्थायी विकलांग बनाकर आपके कार्य को प्रभावित करता है। लंबी रुग्णता से मृत्यु हो सकती है।

हमारे देश में रुग्णता के दो मुख्य कारण हैं– तीक्ष्य श्वास संक्रमण (1.5 करोड़) तथा दस्त की बीमारी (80 लाख) है जिससे कई हजार मौतें हुई हैं।

राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (NSSO) द्वारा संचालित हाल ही के सर्वेक्षण के अनुसार, सर्वेक्षण के एक दिन पहले तक, केरल में, ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में प्रति हजार में, बीमार लोगों की संख्या 118 तथा 88 थी जबकि मिजोरम में यह क्रमशः 18 व 12 थी। ये देश के अधिकतम साक्षर राज्य हैं। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार तथा राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में ये संख्याएँ क्रमशः 61, 41, 36 तथा 28 थीं तथा शहरी क्षेत्रों में क्रमशः 72, 38, 41 तथा 33 थीं। इन आँकड़ों की सरल व्याख्या नहीं की जा सकती।

यदि हमारी जनसंख्या का पोषण-स्तर अच्छा हो तो अधिकांश रुग्णताओं से बचा जा सकता है। कुछ राज्यों में संचालित सर्वेक्षण के अनुसार सभी वर्गों जैसे 1-3 या 16-18 आयु के लड़के या लड़कियों में तथा पुरुषों या महिलाओं में, संयत अथवा आसीन होकर कार्य करने वाले पुरुषों व महिलाओं में कैलोरी तथा प्रोटीन की कमी 10-30 प्रतिशत है। केवल एक वर्ग में अपवाद है जहाँ पर महिलाएँ आसीन-कार्य करती हैं तथा प्रति दिन कैलोरी ग्रहण अनुशंसित 1875 के विपरीत 1954 है, तथा औसतन प्रोटीन ग्रहण 50 ग्राम है जो अनुशंसित मात्रा है। यह एक औसत दृश्य है। यदि कुछ ज्यादा खा रहे हैं, तो कुछ कम खा रहे हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा तथा योग के डाक्टर भी हैं। स्वास्थ्य मंत्रालय के अतिरिक्त दूसरे मंत्रालय (जैसे रेल-मंत्रालय अपने कर्मचारियों के लिए, श्रम-मंत्रालय अपने खदानों में, ऊर्जा-मंत्रालय कोयले की खदानों में) भी अस्पताल चलाते हैं। अस्पताल विभिन्न परिषदों, विश्वविद्यालयों तथा राज्य सरकारों के द्वारा भी चलाए जाते हैं परंतु महत्त्वपूर्ण रूप से निजी संस्थाओं के द्वारा। अस्पताल रोगियों को भर्ती करने के लिए तथा औषधालय चिकित्सा सहायता व दवाइयाँ देने के लिए होतें हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य केंद्र हैं।

हमारे यहाँ अधिक सूचनाएँ ऐलोपैथी संस्थाओं के बारे हैं। इस तथ्य के बावजूद कि हमारी 70-75 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है, ग्रामीण क्षेत्रों में कुल अस्पतालों का 1/3 तथा कुल बिस्तरों का 1/4 भी उपलब्ध नहीं है। सरकारी प्रबंधन के अस्पतालों में यद्यपि 60 प्रतिशत से अधिक बिस्तर हैं परंतु कुल अस्पतालों में सरकारी प्रबंधन का अनुपात केवल 30 प्रतिशत है। स्वाभाविक रूप से सरकारी अस्पताल बड़े तो हैं किंतु अच्छे नहीं। ग्रामीण क्षेत्रों में औषधालयों के वितरण की स्थिति थोड़ी अच्छी है। सरकारी व निजी औषधालयों में बिस्तरों की संख्या बराबर होती है। सरकार के अधीन 40 प्रतिशत औषधालय हैं। स्थानीय निकाय, जैसे नगरपालिका, भी कुछ हद तक चिकित्सा की देख रेख व्यवस्था में हिस्सा लेती हैं।

अब हम ग्रामीण क्षेत्रों की स्वास्थ्य देख-भाल की व्यवस्था की ओर ध्यान दें। ऊपर दर्शाए गए अस्पतालों तथा औषधालयों के अलावा हमारे यहाँ निम्नलिखित संरचनाएँ हैं :

(i) जिले के स्तर पर 1 लाख जनसंख्या की देखभाल के लिए 30 बिस्तरों वाला गर्भ विज्ञान, बाल चिकित्सा, शल्य चिकित्सा तथा दवाओं की विशिष्ट चिकित्सा सुविधा सेवा वाला, एक समुदाय स्वास्थ्य केंद्र (Community Health Center)।

(ii) ब्लॉक के स्तर पर 30,000 की जनसंख्या (पहाड़ी तथा जन-जातीय क्षेत्र में 20,000) की देख भाल करने के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, जो परिवार नियोजन संबंधी सलाहों के साथ साधारण चिकित्सा सुविधाएँ भी प्रदान करता है। समुदाय स्वास्थ्य केंद्र को सहायक स्वास्थ्य केंद्र कह सकते हैं।

(iii) 5000 जनसंख्या (पहाड़ी तथा जन-जातीय क्षेत्र के लिए 3000) की सुविधा के लिए स्वास्थ्य उप-केंद्र होते हैं। मूलतः ये केंद्र परिवार नियोजन की सेवाओं तथा आपूर्ति के लिए होते हैं। कुछ राज्यों में, जैसे केरल में एक स्वास्थ्य उप-केंद्र एक गाँव को सुविधा प्रदान करता है जबकि कुछ अन्य राज्यों जैसे नागालैण्ड में एक स्वास्थ्य उप-केंद्र 10 गाँवों को सुविधाएँ प्रदान करता है।

प्रथम योजना से ही हमने प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की परियोजना को आरंभ कर दिया था। बाद में 60 के दशक के मध्य में हमने स्वास्थ्य उप-केंद्रों तथा इसके बाद, समुदाय केंद्रों के विचार को इसमें जोड़ दिया। यह स्वाभाविक है कि इन सुविधाओं को स्थापित करने के लिए संसाधनों की आवश्यकता होती है। हम जितने ज्यादा विकसित होते हैं हमें उतनी ही ज्यादा सुविधाएँ मिलती हैं। शताब्दी के अंत तक, हमारे पास 3000 समुदाय स्वास्थ्य केंद्र, 24,000 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र तथा 140,000 उप-केंद्र थे। निश्चित किए हुए मानकों के अनुसार हमें कम-से-कम 7000-8000 समुदाय स्वास्थ्य केंद्रों तथा 25000-30000 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की आवश्यकता है। उप-केंद्रों की अधिक कमी

नहीं है। किंतु हमें इन केंद्रों की कार्यप्रणाली में सुधार लाना होगा। हमें समाचार-पत्रों से ज्ञात होता है कि हमारे डाक्टर गाँवों में नहीं रहते हैं, नर्सें प्रतिदिन आती-जाती रहती हैं तथा स्वास्थ्य कर्मचारी व सहायक/मार्ग दर्शक गायब रहते हैं। सारणी 5.6 देखें।

चिकित्सा कर्मचारी (Medical Personnel)

जब आप बीमार होते हैं तब आपको केवल अस्पताल अथवा औषधालय की ही जरूरत नहीं होगी बल्कि आपको डाक्टर, नर्स, औषधि-विक्रेता, तथा प्रयोगशाला तकनीशियन की भी आवश्यकता होगी।

कुछ बीमारियों में चिकित्सक तथा शल्य चिकित्सक के अतिरिक्त विशेषज्ञों की भी आवश्यकता होती है। जन्म के समय दाई की आवश्यकता होती है। डाक्टरों की गिनती चिकित्सा कर्मचारियों में होती है, दूसरे कर्मचारियों को जो इलाज में डाक्टरों की सहायता करते हैं उन्हें परा-चिकित्सा कर्मचारी के रूप में जाना जाता है। बड़े अस्पतालों में गैर-चिकित्सा कर्मचारी बहुत हैं। वर्ष 1951 की तुलना में, जब हमारे यहाँ केवल 60,000 चिकित्सक थे, आज हमारे यहाँ 5 लाख चिकित्सक हो गए, जिनमें से अधिकांश सरकारी संस्थानों में कार्यरत हैं। दंत चिकित्सकों की संख्या 1951 में 3300 से बढ़कर आज 29,000 हो गयी है। नर्सों की संख्या वर्ष 1951 में 15,000 की तुलना में आज 6 लाख के आस-पास है। दाइयों/प्रसाविकाओं, तथा स्वास्थ्य कर्मियों की संख्या 8000 से बढ़कर 3 लाख से अधिक हो गयी है। औसतन प्रति 1 लाख जनसंख्या के लिए व्यवसायी-जनसंख्या अनुपात जो वर्ष 1951 में 17 था, बढ़कर वर्ष 1998 में 52 हो गया। औसतन नर्स-जनसंख्या अनुपात जो 1951 में 5 था से बढ़कर 1998 में 62 हो गया है।

आवास (Housing)

पर्याप्त खाद्यान्न तथा कपड़ों की आपूर्ति के बाद लोगों को सिर पर छत की आवश्यकता होती है। प्राचीनकाल में लोग गुफाओं के अन्दर रहते थे। अधिवास (settlement) का वास्तव में अर्थ है, पशुओं को पालना, फसलों की खेती तथा झोपड़ियों

सारणी 5.6
उपचारिक स्वास्थ्य देख-रेख प्रणाली की संस्थागत सांख्यिकी

अवधि	*अस्पताल*	*औषधालय*	*CHC*	*PHC*	*HSC*
1951-56	2694	6515		725	
1961	3094	9406		2565	
1971	3862	12180		5112	28489
1981	6804	16751	214	5740	51405
1991-92	13692	27403	2070	20433	130964
1998	15128	25670	2913	23179	137006

CHC = सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र (Community Health Centre); PHC = प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (Primary Health Centre); HSC = स्वास्थ्य उप-केंद्र (Health Sub-Centre)

स्रोत : *हेल्थ इनफोर्मेशन ऑफ इंडिया 1997 व 1998, सेंट्रल ब्यूरो ऑफ हेल्थ इन्टेलिजेंस, डायरेक्टर जनरल ऑफ हेल्थ सर्विसेज, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार 2000।*

का निर्माण करना। जैसे हमारे खाद्यान्नों तथा वस्त्रों की स्थिति सुधरी है, हमने अपने आवासों में भी सुधार किया। हमे केवल रिहायशी घरों की ही आवश्यकता नहीं होती बल्कि व्यापारिक गतिविधियों के लिए घरों तथा औद्योगिक गतिविधियों के लिए भवनों की भी आवश्यकता होती है। यद्यपि हम इस तथ्य की उपेक्षा करेंगे कि घरों का अन्य उद्देश्यों के लिए अलग-अलग अथवा साथ-साथ भी प्रयोग होता है, तथापि यहाँ हम रिहायशी घरों तक ही अपनी चर्चा सीमित रखेंगे। एक दुकान घर के एक हिस्से में चलायी जा सकती है। गायों को घर के एक हिस्से में रख सकते हैं अथवा एक पूरे अलग घर को उनका निवास बनाया जा सकता है। अतः एक घर रिहायशी, गैर-रिहायशी अथवा अंशतः रिहायशी और अंशतः गैर-रिहायशी भी हो सकता है। यद्यपि अंशतः रिहायशी घरों को समूह-सांख्यिकी में रिहायशी ही समझा जाएगा क्योंकि हमारी चर्चा रिहायशी आवासों की कमी पर ही केंद्रित है।

जनगणना घर (Census House)

जनगणना के अनुसार, एक जनगणना घर एक भवन अथवा भवन का हिस्सा होगा जिसमें निम्नलिखित हों – (i) सड़क से अलग मुख्य द्वार, (ii) एक सामूहिक प्रांगण, अथवा (iii) एक सीढ़ी। यह जनगणना घर खाली अथवा भरा हुआ हो सकता है। यदि यह भरा हुआ हो, तो इसका प्रयोग रिहायशी या गैर-रिहायशी अथवा अंशतः रिहायशी या अंशतः गैर-रिहायशी उद्देश्यों के लिए हो सकता है। तथापि, हम अपने उद्देश्य के लिए रिहायशी तथा अंशतः रिहायशी इकाईयों को रिहायशी इकाईयों की तरह मानेंगे।

आवासीय-स्टॉक (Housing Stock)

हमारे यहाँ कच्चे, अर्ध-पक्के तथा पक्के घर हैं। दीवारों तथा छत में प्रयोग हुए माल के आधार पर घरों को कच्चा, अर्ध-पक्का तथा पक्का घोषित किया जाता है। कोई घर जिसमें दीवार तथा छत पक्के माल से बने हों, पक्का घर होगा जबकि कोई घर जिसमें दोनों कच्चे माल से बने हों, कच्चा घर होगा। अन्य स्थितियों में किसी घर को अर्ध-पक्का कहते हैं। कच्चे घरों को दो प्रकारों में विभाजित करते हैं — टिकाऊ तथा गैर-टिकाऊ। टिकाऊ घर दीवारों तथा छतों की न्यूनतम मरम्मत करने पर वर्षों तक रहते हैं। उनकी साधारणतया गारे की ठोस दीवार तथा फूस की छत होती है। गैर-टिकाऊ घर वे हैं, जिनका प्रत्येक मौसम अथवा वर्ष में पुनर्निर्माण अथवा प्रतिस्थापन किया जाता है, तथा इनकी दीवारें, छतें ऐसे माल (जैसे घास, पत्तियों, सरकण्डे अथवा बाँस) से बनी होती हैं जिनकी मरम्मत नहीं की जा सकती है। हम इस बात से सहमत होंगे कि अपनी अर्थव्यवस्था के विकास के स्तर को देखते हुए हमें कम से कम कच्चे टिकाऊ (मरम्मत योग्य) घरों की आवश्यकता है। भविष्य में विकास को ध्यान में रखकर प्रत्येक के लिए पक्के घर की आवश्यकता है।

वर्ष 1951 में 6.4 करोड़ घर थे इनमें से 5.4 करोड़ ग्रामीण क्षेत्र में तथा लगभग 1 करोड़ शहरी क्षेत्र में थे। वर्ष 1961 में ग्रामीण घरों के बारे में दिए गए वक्तव्य से घरों की गुणवत्ता के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 5 करोड़ घरों को या तो प्रतिस्थापित करना अथवा पर्याप्त सुधार करने की आवश्यकता थी। वे मरम्मत योग्य होते हुए भी कच्चे घर थे। जहाँ तक शहरी क्षेत्रों की बात है,

घरों के मूल्यह्रास (ह्रास) तथा पुरानेपन का ध्यान न रखते हुए, एक अनुमान के अनुसार 55 लाख घरों की कमी है। इन सब बातों तथा जनसंख्या में बढ़ोतरी और गंदी बस्तियों के घरों को (जिनका लगभग 10 लाख होने का अनुमान है) को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान में उपलब्ध एक करोड़ घरों के अलावा 80 लाख अतिरिक्त घरों की आवश्यकता है। अतः आवासों की कमी चिंताजनक है।

यदि हम इन आँकड़ों को ग्रामीण-शहरी विभाजन के अनुसार अलग करते हैं तो कुल स्टॉक, खाली स्टॉक, भरे हुए घर (भरे हुए घरों का रिहायशी और गैर-रिहायशी में वर्गीकृत) के संबंध में निम्नलिखित चित्र उभर कर सामने आता है। यद्यपि 70 तथा 80 के दशक में जनसंख्या की तुलना में कुल स्टॉक थोड़ी अधिक दर से बढ़ा है, किंतु पहले से ही वर्तमान कमी के कारण यह अपर्याप्त है। फिर भी 80 में खाली स्टॉक में 40

सारणी 5.7

ग्रामीण-शहरी विभाजन के अनुसार आवासीय स्टॉक के अभिलक्षण (1951-1991)

(लाखों में)

	1951	*1961*	*1971*	*1981*	*1991*
राष्ट्रीय					
कुल		1045	1185	1499	1903
खाली		61	75	79	112
भरे-हुए	644	984	1114	1420	1791
गैर-रिहायशी इकाई		222	219	305	349
रिहायशी इकाई		762	892	1107	1432
ग्रामीण					
कुल		860	947	1138	1391
खाली		47	58	56	78
भरे हुए	541	813	889	1082	1313
गैर-रिहायशी इकाई		188	178	242	262
रिहायशी इकाई		624	711	840	1050
शहरी					
कुल		185	239	354	512
खाली		13	18	23	44
भरे हुए	103	172	281	321	468
गैर-रिहायशी इकाई		34	41	64	87
रिहायशी इकाई		138	181	268	382

स्रोत : इंडिया 1962 ए रेफरेंस मेन्यूअल, प्रकाशन विभाग, सूचना व प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार तथा भारत की जनगणना 1991, सीरीज 1, भारत, पेपर 2 ऑफ 1993, रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

प्रतिशत से अधिक वृद्धि हुई। यह अंशतः स्टॉक की दशा तथा अंशतः स्वामियों की संवृद्धि/असुरक्षा के कारण हुआ। बेहतर अंतर्दृष्टि के लिए हमें इसे ग्रामीण-शहरी विभाजन में भी देखना चाहिए। सारणी 5.7 देखें (2001 जनगणना के आंकड़े अभी तक उपलब्ध नहीं हैं)।

हमें यह ध्यान देना चाहिए कि दोनों ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में, केवल गैर-रिहायशी उद्देश्य से कुल स्टॉक का 1/6 से 1/5 ही भरा हुआ है। बिरले की क्या हम गैर-रिहायशी उद्देश्य के स्टॉक की अपर्याप्तता के बारे में बात करते हैं? हमारा अधिकांश संबंध रिहायशी उद्देश्य की गृह निर्माण की इकाइयों की अपर्याप्तता से रहता है।

आवास की कमी (Housing Shortage)

यदि प्रत्येक परिवार के पास कम से कम एक मकान हो तथा किसी भी परिवार के पास एक से अधिक मकान नहीं हो, तब दिए हुए निवास-स्थान के लिए परिवारों की संख्या तथा मकानों की संख्या में अंतर आवास की कमी दिखाएगा। एक परिवार एक से अधिक मकान में रह भी सकता है अथवा उनको खाली रखता है, तब कमी और अधिक होगी। इसका अर्थ निम्न होगा– (i) कुछ परिवार आश्रय रहित हैं, रैन बसेरा अथवा फुटपाथ पर रहते हैं, तथा (ii) कुछ परिवार एक मकान में साझे रूप से रहते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि झुग्गी-झोपड़ी भी आवास है।

कुल राष्ट्रीय आवासीय कमी जो 1961 में 55 लाख थी, अब (1991) में केवल 38 लाख है जिसमें 31 लाख ग्रामीण क्षेत्रों में है तथा लगभग 8 लाख शहरी क्षेत्रों में। अनुपात के रूप में यह 2.5 प्रतिशत है। वास्तव में यह अनुमान उन परिवारों को भी विचार में लाता है जो दूसरों के साथ साझे में रहते हैं, किंतु उन परिवारों पर ध्यान नहीं देता जो आश्रय रहित हैं। यदि हम दोनों को जोड़ें तो अपर्याप्तता 44 लाख तक मानी जाएगी।

यदि हम एक विचार लें कि प्रत्येक परिवार के पास रहने के लिए एक टिकाऊ (मरम्मत योग्य) मकान होना चाहिए तब हमें ऐसे मकानों की संख्या भी मालुम करनी चाहिए। शहरी क्षेत्रों के 11 लाख मकानों को सम्मिलित करने पर ऐसे मकानों की संख्या 1.14 करोड़ है। अधिकतर शासकीय अधिकारी तथा विश्लेषक मरम्मत योग्य कच्चे मकानों को ग्रामीण क्षेत्रों में तो सहन कर लेते हैं, परंतु शहरी क्षेत्रों में नहीं। वे महसूस करते हैं कि शहरी क्षेत्रों में मरम्मत योग्य कच्चे मकानों को भी पक्के मकानों से प्रतिस्थापित कर देना चाहिए। तब शहरी क्षेत्रों में ऐसे मकानों की संख्या मालूम करनी चाहिए। उनकी संख्या 26 लाख से अधिक है। सरकारी प्रकाशन सभी संख्याओं को जोड़कर कुल कमी लगभग 1.85 करोड़ दिखाते हैं। शायद हमें ग्रामीण तथा शहरी आवासीय कमी को जोड़ना नहीं चाहिए जैसा कई प्रकाशन कर रहे हैं, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में गैर-मरम्मत योग्य कच्चे मकानों का मरम्मत योग्य कच्चे मकानों से प्रतिस्थापन को स्वीकृत माना गया है। मकानों की कमी के विभिन्न आयामों के लिए सारणी 5.9 देखें।

अन्य आयाम (Other Dimensions)

आप अपने मकान में रहते हैं, आप किराए के मकान में रहते हैं। आप साझे आवास में रहते हैं, आप साझे आवास में नहीं रहते हैं। आप पक्के मकान में, आधे पक्के मकान में अथवा कच्चे मकानों (जो मरम्मत योग्य अथवा गैर-मरम्मत योग्य), में रहते हैं।

सारणी 5.9
वर्ष 1991 में मकानों की अपर्याप्तता के आयाम

	ग्रामीण	*शहरी*	*कुल योग*
मकान रहित परिवार	305000	217000	520000
साझा रहने वाले परिवार	3113000	779000	3900000
गैर-मरम्मत योग्य कच्चे मकान	10306000	1140000	11440000
शहरी क्षेत्र में मरम्मत योग्य मकान		2640000	2640000
कुल योग	13724000	4776000	18500000

स्रोत : *भारत की जनगणना 1991, सीरीज-1 इंडिया पेपर 2 ऑफ 1993, रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।*

वर्ष 1971 व 1991 की एक तुलना बताती है कि पक्के मकानों का हिस्सा, ग्रामीण क्षेत्रों में 18 प्रतिशत से बढ़कर 31 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्रों में, 64 प्रतिशत से बढ़कर 73 प्रतिशत हो गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में, जैसा अपेक्षित है, लगभग 6-7 प्रतिशत परिवार आवास किराए पर देते हैं जबकि शहरी क्षेत्रों में मकान किराए पर देने वाले परिवारों की संख्या 54 प्रतिशत है। यह परिदृश्य 1961 तथा 1971 में था। वर्ष 1981 में 46.5 प्रतिशत तथा वर्ष 1991 में 36.5 प्रतिशत परिवार मकान किराए पर देते थे।

निष्कर्ष

यह अध्याय पढ़कर आप एक दृष्टिकोण विकसित कर सकते हैं कि पिछले 50 वर्षों में, केंद्र व राज्य स्तर की सरकारों की सहायता से शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आवास के सामाजिक क्षेत्र विकास की ओर अग्रसर हो रहे हैं। शिक्षा में जहाँ प्रारंभिक शिक्षा को सर्वव्यापक कर देना चाहिए था, वहीं अभी भी इसे सर्वव्यापक करना है। माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण करने में, अभी भी हम लक्ष्य से पीछे हैं। उच्च शिक्षा में सामान्य शिक्षा का आधिक्य है तथा तकनीकी शिक्षा का अभाव।

इसी तरह, स्वास्थ्य क्षेत्र में हमें मालूम हुआ कि हमारी जन्म-मरण सांख्यिकी में काफी हद तक सुधार हुआ है। इसके लिए जन-स्वास्थ्य उपाय तथा पोषण कार्यक्रम धन्यवाद के पात्र हैं। हमें शिशु मृत्यु दर को और घटाने की चिंता है तथा हमारा पोषण स्तर भी बहुत अपर्याप्त है। सभी माताएँ तथा बच्चे टीकाकरण के दायरे में आने चाहिए। ग्रामीण स्वास्थ्य देख-रेख व्यवस्था को गुणवत्ता की दृष्टि से सुधारने की, चिकित्सा कार्मिकों को नियुक्त करने की तथा नियुक्त कार्मिकों को काम पर उपस्थित रहने की आवश्यकता है।

जहाँ तक आश्रय का प्रश्न है हमारे यहाँ आवासीय स्टॉक की संख्या तथा गुणवत्ता में कमी है, यद्यपि, कुछ लोग पूर्णतया आश्रय-रहित भी हैं। समयावधि में पक्के मकानों का अनुपात बढ़ा है। मकान किराए पर देने का चलन घटता हुआ प्रतीत होता है।

अभ्यास

1. सामाजिक आधारिक संरचना से आपका क्या तात्पर्य है? तथा आप आर्थिक आधारिक संरचना से इसका अंतर कैसे करेंगे?
2. आवास को सामाजिक आधारिक संरचना के रूप में आप कैसे उचित सिद्ध करेंगे, जबकि यह माना जाता है कि आवासीय स्टॉक से वार्षिक प्राप्तियां होती हैं जिन्हें GDP में जोड़ा जाता है।
3. आप साक्षर किसे कहेंगे? साक्षरता, शिक्षा से कैसे भिन्न है?
4. अब भारत में साक्षरता दर की कैसे गणना होती है?
5. पिछले 50 वर्षों में भारत में साक्षरता के विकास का एक लेखा दीजिए, तथा समस्यात्मक क्षेत्र बताएं जहाँ पर हम भविष्य में ध्यान केंद्रित करें।
6. निरक्षरों की संख्या के संबंध में, जनगणना 2001 से क्या नए विकास हुए हैं।
7. सकल नामांकन अनुपात की कैसे संगणना होती है? प्रतिशत के रूप में क्या यह 100 से अधिक हो सकता है?
8. प्रारंभिक शिक्षा की प्रगति पर चर्चा कीजिए तथा बताइए कि हम इसको व्यापक करने में कितने पीछे हैं।
9. माध्यमिक शिक्षा की प्रगति पर विचार विमर्श कीजिए तथा इसमें सीमित सफलता के क्षेत्रों को बताइए।
10. उच्च शिक्षा से आपका क्या अभिप्राय है? विकास की मुख्य बातें तथा संबंधित क्षेत्रों पर चर्चा करें।
11. स्वतंत्रता से पहले तथा स्वतंत्रता के बाद, जीवन-प्रत्याशा, (जन्म पर,) कैसे सुधर गयी है, चर्चा करें।
12. विभिन्न आयु तथा लिंग में जीवन-प्रत्याशा की मुख्य बातें प्रस्तुत करें।
13. जन-स्वास्थ्य का अर्थ बताइए। बीमारियों को नियंत्रित करने के लिए सरकार ने हाल के वर्षों में क्या उपाय किए, चर्चा कीजिए।
14. शहरी क्षेत्रों में सफाई की भूमिका पर चर्चा करें।
15. स्वतंत्रता पश्चात् भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य देख रेख व्यवस्था कैसे विकसित हुई?
16. ग्रामीण स्वास्थ्य देख रेख व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
17. जनगणना मकान तथा आवासीय स्टॉक से आपका क्या तात्पर्य है?
18. पक्का, कच्चा तथा अर्ध-पक्का मकानों को परिभाषित करें।
19. मरम्मत योग्य कच्चे मकान तथा गैर-मरम्मत योग्य कच्चे मकान की परिभाषा दें।
20. मकान के विभिन्न प्रयोगों की चर्चा करें। कुछ मकान क्यों खाली पाए जाते हैं।

21. ग्रामीण क्षेत्र में वर्ष 1961 से आवास के दृश्य में विकास का एक लेखा दीजिए।

22. शहरी क्षेत्र में वर्ष 1961 से आवास के दृश्य में विकास का एक लेखा दीजिए।

23. आवासीय स्टॉक के विभिन्न पक्षों पर चर्चा कीजिए।

24. देश में आवासीय कमी के बारे में चर्चा करें।

गतिविधियाँ

अपने इलाके, मुहल्ले अथवा गांव में मालुम करें:

(i) कितने लड़के तथा लड़कियों ने स्कूल में नामांकन नहीं कराया है।

(ii) नामांकन के बाद कितने लड़कों तथा लड़कियों ने विभिन्न कक्षाओं से अध्ययन छोड़ दिया (drop out) है।

(iii) लड़कों तथा लड़कियों के drop out (स्कूल छोड़ने में) तथा नामांकन नहीं कराने के क्या कारक हैं।

अभिभावकों, लड़के तथा लड़कियों से बात करें जो स्कूल नहीं गए हों।

1991 तक विकास की व्यूह-रचनाएँ

परिचय

अर्थव्यवस्थाएँ स्वयं के अनुरूप बढ़ती तथा विकसित होती हैं। कुछ दार्शनिकों के अनुसार इन्हें बिना किसी अधिक हस्तक्षेप के कार्य करने देना चाहिए। बाजार अपनी दिशा अपने आप निश्चित कर लेंगे। तथापि, सभी अर्थव्यवस्थाओं में सरकार बाजारों की रुचि के कारण, कोई-न-कोई कारण ढूंढकर हस्तक्षेप करना आवश्यक समझती है। देशों के स्वरूप, विकास के स्तर, लोगों का वैचारिक पूर्वाभिमुखीकरण, उनके द्वारा चुनी हुई सरकार के अनुसार विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में विधियों, विस्तार तथा गति में भिन्नता होती है। दूसरी अर्थव्यवस्थाओं के विकास का प्रदर्शन-प्रभाव व बहुपक्षीय/अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों की विचारधारा का भी कोई प्रभाव नहीं होता।

जब भारत को स्वतंत्रता मिली तथा यह गणराज्य बना तब इसने सामाजिक तथा आर्थिक योजना का मार्ग चुना। तात्पर्य यह है कि सरकार निजी संपदा की संस्थाओं तथा बाजार का सम्मान करती हुई, आर्थिक व सामाजिक क्रियाकलापों/गतिविधियों द्वारा उत्पादन, वितरण तथा उपभोग के स्तर तथा विधियों के निर्धारण में एक अनुकूल सक्रिय भूमिका निभाएगी। हमारे संविधान ने स्वयं ही बाजारों को कार्य का अवसर दिया है, साथ ही सरकार को इसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया है। संविधान ने सरकारों को अन्य बातों के साथ निम्नलिखित का ध्यान रखते हुए नीतियाँ बनाने का निर्देश दिया है :

(i) समुदाय के भौतिक संसाधनों के स्वामित्व व नियंत्रण का वितरण जन-हित को ध्यान में रखते हुए हो,

(ii) आर्थिक प्रणाली का इस प्रकार संचालन हो जिससे संपदा तथा उत्पादन के साधनों का केंद्रीयकरण नहीं हो, जो सामान्य हानि है।

हमारे संविधान में, केवल समवर्ती सूची की 7वीं अनुसूची में उल्लिखित आर्थिक व सामाजिक योजना को छोड़कर, आर्थिक व सामाजिक विकास की क्रियाओं को चलाने वाली संस्थाओं के लिए कोई विस्तृत निर्देश नहीं है। तथापि संविधान के प्रख्यान के 50 दिनों के अंदर ही मंत्रिमंडल के एक प्रस्ताव द्वारा 15 मार्च 1950 को योजना आयोग की स्थापना हुई। जवाहर लाल नेहरू को उसका अध्यक्ष बनाया गया था। तब से, प्रधानमंत्री इसका पदेन अध्यक्ष होता है। इसके कुछ मंत्री-सदस्य पूर्णकालिक होते हैं। साधारणतः सभी सदस्य पूर्णकालिक होते हैं।

स्वतंत्रता से पूर्व योजना का इतिहास

देश की योजना का एक इतिहास-क्रम है। लोगों के आर्थिक उद्धार की दृष्टि से राजनीतिक स्वतंत्रता

को अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया था। भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अधीन हमें रियासतों में सरकार बनाने की अनुमति मिल जाने के पश्चात हमने योजना बनाने की तैयारियाँ करनी आरंभ कर दीं। इससे पहले हमारे पास तीन नमूने थे। एक, वर्ष 1928 से तात्कालिक सोवियत संघ में प्रचलन में था, दूसरा, जो वर्ष 1934 में एम. विश्वेश्वरैया (अभियंता-राजनेता) द्वारा लिखित एक पुस्तक में दिया गया था, तथा तीसरा, जो एक अर्थशास्त्री केन्स द्वारा दिया गया था। दस वर्षों में योजना ने रूस की अर्थव्यवस्था के औद्योगीकरण में अत्यधिक सफलता दिखाई। दस वर्षों में राष्ट्रीय आय को दुगुनी करने के लिए विश्वेश्वरैया ने लिखा कि, "भारत की मूल समस्या औद्योगिक है तथा इसका समाधान उसी विधि से किया जाना चाहिए, जो अमेरिका, जापान तथा कनाडा में प्रभावोत्पादक सिद्ध हो चुकी थी। तत्पश्चात् सोवियत संघ की चौंकाने वाली सफलता... भारत शीघ्रगामी औद्योगीकरण के बिना समृद्ध नहीं हो सकता है... औद्योगीकरण को संगठित तथा नियोजित किया जाता है तथा इसके लिए प्रयास किया जाता है ... भारत एक औद्योगिक विकसित देश हो सकता है अथवा विदेशी विनिर्मित वस्तुओं के लिए बाजार हो सकता है किंतु दोनों नहीं।" कीन्स (Keynes) ने यह भी कहा कि अबंध-नीति (laissez-faire) के दिन समाप्त हो गए थे तथा सरकार पूँजीवादी देशों में अर्थपूर्ण राजस्व हस्तक्षेप (विशेषकर व्यय के क्षेत्र में) की दृष्टि से एक सकारात्मक भूमिका निभा सकती है।

कांग्रेस शासित प्रांतों में उद्योग मंत्रियों का एक सम्मेलन अक्तूबर 1938 में आयोजित किया गया तथा जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में

राष्ट्रीय योजना समिति

वर्ष 1938 के अंत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष सुभाष चंद्र बोस ने 8 कांग्रेस-शासित प्रांतों के उद्योग मंत्रियों के सम्मेलन के समापन के समय जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में एक नियोजन समिति का गठन किया। स्वयं समिति ने ही विभिन्न क्षेत्रों/विषयों पर काम करने के लिए 29 उप-समितियों का गठन किया जिन्होंने प्रशंसनीय कार्य किए। परंतु इन समितियों के विचार प्रस्तुत करने से पहले ही युद्ध आरंभ हो गया तथा समिति के कई सदस्यों को (जवाहर लाल नेहरू सहित) अक्तूबर 1940 में जेल भेज दिया गया।

तदनंतर 1946-49 के दौरान, के.टी. शाह, जो समिति के सचिव थे, के नाम से 4 साधारण रिपोर्टों तथा 25 विषयानुसार रिपोर्टों का प्रकाशन किया। समिति ने अपनी अनुशंसाओं में कहा कि अपने तत्त्वावधान में आधारिक संरचना के विकास तथा मौलिक उद्योगों को आरंभ करने में तथा अपने संरक्षण में खादी एवं ग्रामोद्योग को प्रोत्साहित करने में तथा वृद्धि की शक्तियों को छूट देने की दृष्टि से भूमि के सभी मध्यस्थ स्वार्थों को समाप्त करने में राज्य एक सक्रिय भूमिका निभा सकते हैं।

एक वयस्क श्रमिक को 2400-2800 इकाई कैलोरी मूल्य का संतुलित आहार, प्रतिव्यक्ति 30 गज कपड़ा तथा प्रतिव्यक्ति 100 वर्ग फुट आवास की सुविधा प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय आय को 10 वर्षों की अवधि में दो से तीन गुना बढ़ाने की आशा की जाती है।

औद्योगीकरण, भारी अभियांत्रिक तथा मशीन-विनिर्माण के उद्योग, विद्युत-शक्ति तथा लघु इकाइयों का समायोजन, औद्योगिक विकास में राज्य तथा सरकारी क्षेत्र की प्रबल भूमिका, यथासंभव राष्ट्रीय स्व-पर्याप्तता, इस नीति के मुख्य तत्व थे।

एक राष्ट्रीय नियोजन समिति गठित करने का निर्णय लिया गया। समिति ने अपनी सिफारिशों में कहा कि आधारिक संरचना के विकास तथा अपने तत्त्वावधान में मूलभूत उद्योगों को स्थापित करने, अपने संरक्षण में कुटीर एवं ग्रामोद्योग में वृद्धि को प्रोत्साहित करने तथा वृद्धि की शक्तियों को छूट देने के लिए भूमि की मध्यस्थता संबंधी सभी स्वार्थी तत्वों को समाप्त करने में सरकार एक सक्रिय भूमिका निभा सकती है।

युद्ध की समाप्ति पर, उद्योग तथा अन्य विभागों की भावनाओं का सम्मान करते हुए, भारत सरकार ने वर्ष 1944 में नियोजन तथा विकास विभाग की स्थापना की। विभाग ने केंद्र सरकार, प्रान्तीय सरकारों तथा बड़े राजाओं के राज्यों के विभिन्न विभागों को युद्धोपरांत, योजनाओं के पुनर्निर्माण करने के लिए प्रेरित किया। इसने (नियोजन विभाग) उद्योग तथा श्रम के विकास की योजनाओं (सभी वर्ष 1944 में), जैसे बॉम्बे योजना, जन-योजना तथा गाँधी-योजना को प्रस्तुत किया। शिक्षा तथा स्वास्थ्य के लिए क्षेत्रीय योजनाएँ भी बनाई गई थीं।

वर्ष 1946 में जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में अंतरिम सरकार बनाई गई तथा भारत सरकार ने सलाहकार योजना बोर्ड का गठन किया। अन्य बातों के अतिरिक्त सलाहकर बोर्ड ने राष्ट्रीय नियोजन आयोग बनाने की अनुशंसा की, जिसका गठन स्वतंत्रता के तुरंत पश्चात् 15 मार्च 1950 में किया गया। साठ के दशक के उत्तरार्ध में राज्य-स्तरीय योजना आयोग अथवा बोर्डों ने कार्य प्रारंभ कर दिया।

आर्थिक योजना का अर्थ

योजनाएँ व्यक्तियों, संगठनों, फर्मों, किसानों तथा राष्ट्र द्वारा बनायी जाती हैं ताकि भविष्य में विशेष उद्देश्य अथवा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सोच-समझकर कार्य किया जा सके। उद्देश्य-हीन प्रवाह के विपरीत, योजना क्रियाओं का संकल्पित चुनाव है। यह मानव क्रिया-कलापों के सचेतन-गठन से संबद्ध है। **योजना एक उद्देश्य अथवा बहुत सारे उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सामाजिक-आर्थिक क्रियाओं को रूप देने के लिए सोच-समझकर बनाई गई एक रूपरेखा है। यह नीतिगत उपायों के संदर्भ में कार्य करने का एक तरीका है जिसका अनुसरण भविष्य में पूर्व-निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाएगा।** यह महत्त्वपूर्ण है कि उद्देश्य पारस्परिक अनुकूल हों तथा सही योजना के द्वारा साधनों तथा उपायों की अनुकूलता निश्चित हो। साधन स्वायत्त होते हैं क्योंकि उनका चयन आयोजकों द्वारा होता है। परंतु उनका चयन करने में एक प्रतिबंध है जो आपसी अनुकूलता के लिए एक आवश्यक शर्त है।

'योजना शब्द'

प्रबंधक की भाषा में तथा प्रबंधन की पुस्तकों में अथवा निगमों की योजना-इकाइयों में 'योजना' शब्द का अर्थ थोड़ा भिन्न होता है। नगर-आयोजकों द्वारा, भौतिक तथा स्थानिक योजना के लिए भी योजना शब्द का प्रयोग हुआ है। आजकल पर्यावरण-विशेषज्ञ संसाधनों की बात करते हैं। लोग सेवा-निवृत्ति योजना की भी बात करते हैं।

वर्तमान संदर्भ में योजना का अर्थ भिन्न है। यहाँ इसका संबंध लोगों के कल्याण से है। यह सरकार की क्रियाओं तथा हस्तक्षेप से संबद्ध है तथा इसका क्षेत्र आर्थिक एवं सामाजिक विकास है।

अन्य योजनाएँ जैसे नगर तथा देश योजना अब राष्ट्रीय योजना में संघटित हो रही है।

सरकार लोगों के लिए जिन उद्देश्यों को निर्धारित करती है, उन्हें पूरा करने में गैर-समन्वित

बाजारों की प्रक्रियाओं पर पूर्ण विश्वास नहीं कर सकती है। अनेक दिशाओं से यह सुझाव आया कि आर्थिक योजना सरकार द्वारा ही बनाई जानी चाहिए। आर्थिक कल्याण की दृष्टि से आर्थिक योजना, सरकार के अधीन सभी साधनों के द्वारा, प्रत्ययकारी साधनों (persuasive measures) सहित, आर्थिक विकास की गति को आगे बढ़ाने से संबंधित है। तथापि, भारत में हमारा संबंध आर्थिक व सामाजिक विकास की योजनाओं से है। इन योजनाओं के उद्देश्य थोड़े भिन्न हैं। हमारे देश ने जब योजना के बारे में सोचा, उस समय तक योजना शब्द ने आर्थिक अधिस्वर अर्जित कर लिया था। आरंभ में ही हमने स्पष्ट कर दिया था कि हमारी योजना आर्थिक व सामाजिक दोनों क्षेत्रों को सम्मिलित करेगी। आर्थिक क्षेत्र कृषि, उद्योग, परिवहन आदि से संबद्ध हैं, जबकि सामाजिक क्षेत्र विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों, अस्पतालों, औषधालयों, स्वास्थ्य-केंद्रों, परिवार नियोजन केंद्रों, प्रसारण आदि से संबंधित हैं। आप देख सकते हैं कि कई आर्थिक क्षेत्र कुछ 'सामाजिक' क्षेत्रों से भी संबंध रखते हैं तथा बहुत से सामाजिक क्षेत्र बहुत से 'आर्थिक' क्षेत्रों से भी संबंध रखते हैं तथा कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जो जितने सामाजिक होंगे उतने ही आर्थिक भी। इसलिए आर्थिक व सामाजिक शीर्षकों में विभाजन, सुविधा के लिए किया गया है, न कि सिद्धांतों के आधार पर। योजना के अंतर्गत हम लगभग उन सभी गतिविधियों को सम्मिलित करते हैं जिन्हें हम स्वेच्छा से विकसित करना चाहते हैं। अतः इसे हम व्यापक योजना कहते हैं।

हम अपने सशस्त्र बलों के आधुनिकीकरण, कानून-व्यवस्था के सशक्तिकरण, न्यायिक-व्यवस्था को सुधारने, सरकार के दूसरे अंगों को बेहतर बनाने में बहुत व्यय करते हैं। किंतु ऐसा हम व्यवस्था को निर्विघ्न चलाने के स्वार्थ से करते हैं अथवा ऐसा करना हमारे लिए आवश्यक होता है। इसलिए हम उनको न तो विकासात्मक गतिविधियाँ कहेंगे और न ही उनको आर्थिक अथवा सामाजिक गतिविधियों का नाम देंगे। हालाँकि उन सभी गतिविधियों का ध्यान अधिकतर सरकार द्वारा रखा जाता है।

कई प्रकार की सामाजिक तथा आर्थिक गतिविधियों को सम्मिलित करते समय सरकार अप्रत्यक्ष राजस्व एवं वित्तीय रचनातंत्र द्वारा तथा कानून बनाकर केवल सलाह दे सकती है अथवा समन्वित कर सकती है या प्रोत्साहित या हतोत्साहित कर सकती है। यह वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन तथा वितरण का कार्य भी कर सकती है। भारत ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष साधनों के विवेकपूर्ण मिश्रण के प्रयोग को चुना-कृषि तथा गैर-कृषि भूमि का विभिन्न वर्गों के लोगों अथवा विभिन्न गतिविधियों में वितरित करने के लिए कानून बनाना ; विशेष क्रियाओं पर प्रतिबंध लगाना, रोक लगाना या उन्हें अवैध घोषित करना; विशेष वित्तीय संस्थाएँ खोलकर, विभिन्न क्रियाओं के वर्गों के लिए ब्याज की दरों या साख की सीमाओं को प्रभावित करना; विशेष क्रियाओं पर कर लगाना अथवा उन्हें आर्थिक सहायता देने के लिए वित्तीय प्रावधान बनाना; विशेष सामाजिक लक्ष्यों को ध्यान में रखकर पूरक क्रियाओं के रूप में उत्पादन/वितरण करना तथा विशेष वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन व वितरण करना (स्वाभाविक एकाधिकार) । केंद्रीय मंत्रालय द्वारा अथवा राज्य सरकार द्वारा अथवा सरकार की किसी एजेंसी के द्वारा किए गए सीधे उत्पादन तथा वितरण को सार्वजनिक क्षेत्र की गतिविधि माना जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों ने

उद्देश्य तथा साधन

कुछ लोगों ने विभिन्न देशों की योजनाओं में सूचीबद्ध उद्देश्यों को संकलित किया। उनके उद्देश्यों का विस्तार पूर्ण रोजगार से लेकर कीमत-स्थिरता तक; निजी उपभोग में बढ़ोतरी से लेकर जनसंख्या का आकार तथा संरचना तक; श्रम की गतिशीलता में बढ़ोतरी से लेकर पूँजी की गतिशीलता में बढ़ोतरी तक; उत्पादन के निर्यात से लेकर भुगतान शेष में सुधार तक; उद्योगों के संरक्षण से लेकर आपूर्ति की सुरक्षा, आंतरिक प्रतिस्पर्धा के प्रोत्साहन, समन्वयन के प्रोत्साहन, तथा श्रम के घंटों में कमी तक था।

जहाँ तक साधनों की गिनती की बात है, उन्होंने 60 साधनों को दोबारा गिना : लोक वित्त के 17 साधन; मुद्रा, साख तथा विदेशी विनिमय के 16 साधन; प्रत्यक्ष नियंत्रण के 16 साधन तथा संस्थागत संरचना के 11 प्रकार के परिवर्तन।

परिशिष्ट में उद्देश्यों की सूची दी जा रही है जो हमारे योजना दस्तावेजों से ली गई है।

कुल विनिर्माण, संसाधन तथा वित्त प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण अंश अपने हाथ में ले लिया है। वास्तव में हमने सार्वजनिक क्षेत्र को एक महत्त्वपूर्ण भूमिका देकर इसे प्रभावशाली बना दिया है।

पंचवर्षीय योजनाएँ

केंद्रीय मंत्रिमंडल के एक प्रस्ताव द्वारा 15 मार्च 1950 में योजना आयोग की स्थापना हुई। आयोग को शीघ्रातिशीघ्र पंचवर्षीय योजना का पूरा खाका तैयार करने को कहा गया, जिससे इसे अप्रैल 1951 में कार्यान्वित किया जा सके। आयोग ने रूपरेखा का प्रारूप प्रस्तुत किया, जिसका उद्देश्य देश के विभिन्न वर्गों के बीच एक सार्थक वाद-विवाद आरंभ करना था, क्योंकि प्रजातांत्रिक देश में योजना एक सामाजिक विषय है, न कि तकनीकी। इसी ड्राफ्ट रूपरेखा में राष्ट्रीय विकास परिषद् के गठन का सुझाव दिया गया था, जिसकी स्थापना मंत्रिमंडल के एक प्रस्ताव द्वारा अगस्त 1952 में हुई थी। हालाँकि, यह कहा जाता कि प्रथम योजना में उन परियोजनाओं को भी शामिल कर लिया गया था, जो भारत सरकार में पहले से ही आरंभ कर छोड़ दी गई थीं। अंतिम रिपोर्ट, योजना की औपचारिक शुरुआत के 21 महीनों बाद, दिसंबर 1952 में प्रस्तुत की गई, जिसे प्रथम पंचवर्षीय योजना कहा गया।

प्रत्येक पंचवर्षीय योजना लंबी समयावधि के परिप्रेक्ष्य में बनायी जाती है। वस्तुतः प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के प्रारूप के अंतर्गत एक योजना पाँच वर्षों के लिए (मध्यावधि योजना) होती है तथा एक परिप्रेक्ष्य-योजना होती है। योजना विशेष (पंचवर्षीय योजना) इस परिप्रेक्ष्य का एक अंग होती है। यद्यपि हम कुछ संकटों का सामना भी कर रहे थे, फिर भी हमने बिना किसी बाधा के लगातार तीन पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी कीं। तीसरी पंचवर्षीय योजना के अंत में, 1965 के अंत में, पाकिस्तान के साथ युद्ध का भी सामना करना पड़ा तथा कृषि के क्षेत्र में लगातार दो वर्षों तक (1965-66 तथा 1966-67) असफलता मिलती रही, जिससे विदेशी-विनिमय का संकट उत्पन्न हो गया और रुपये का अवमूल्यन करना पड़ा। उसके बाद 1966-71 के लिए चौथी पंचवर्षीय योजना बनी, जिसे आरंभ होते ही रोक देना पड़ा। ऐसा निश्चित किया गया कि स्थिति के सामान्य होने पर ही चौथी योजना का आरंभ किया जाए। अतः चौथी पंचवर्षीय योजना 1969-74 की अवधि के लिए बनाई तथा क्रियान्वित की गई। बीच की

अवधि में तीन वार्षिक योजनाओं का कार्यान्वयन हुआ। पंचम पंचवर्षीय योजना (1974-79) के दौरान, कुछ राजनैतिक परिवर्तन हुए– आंतरिक आपात्-स्थिति लागू की गई, नए चुनाव हुए, नई गठित जनता पार्टी चुनाव में विजयी हुई। राजनैतिक परिवर्तनों के कारण जब कांग्रेस सरकार पुनः सत्ता में आई, तो इस योजना को रोक दिया गया। इसके बाद छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) का आरंभ हुआ। वर्ष 1978-79 को अब पंचम पंचवर्षीय योजना में सम्मिलित किया जाता है, जैसा मूलतः सोचा गया था तथा वर्ष 1979-80 को (योजना आयोग के संकलन सहित सभी संकलनों में) वार्षिक योजना के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। सातवीं योजना बिना बाधा के पूरी हुई। राजनैतिक अस्थिरता, कम समयावधि की सरकारें, राजीव गाँधी की हत्या तथा विदेशी विनिमय की अनिश्चित स्थिति आदि के कारण आर्थिक संकट उत्पन्न हुए। सामान्य स्थिति के आने पर आठवीं पंचवर्षीय योजना का प्रारंभ वर्ष 1992 में हुआ। यद्यपि समयावधि के मध्य में ही सरकार बदल गई परंतु न तो योजना स्थगित की गई और न ही समयावधि घटाई गई। अभी दसवीं पंचवर्षीय योजना चल रही है। सभी योजनाओं की समयावधि के विवरण तथा इनकी परिप्रेक्ष्य योजनाएँ परिशिष्टों में दी गई हैं।

मुख्य उद्देश्य

योजना किसी उद्देश्य की प्राप्ति का एक प्रभावशाली साधन है। इसके कुछ निश्चित उद्देश्य होने चाहिए। प्रजातंत्र में, संविधान में दिए गए उद्देश्यों के अतिरिक्त, देश की योजना का कोई अन्य उद्देश्य नहीं हो सकता। यदि किसी संस्था को देश के आर्थिक व सामाजिक विकास की योजना बनाने की जिम्मेदारी दी जाती है, तो वह विस्तार की सीमाओं को अधिक-से-अधिक बढ़ाता है तथा इसे अधिक विशिष्ट बनाता है। योजना का उद्देश्य विकास की प्रक्रिया को गतिशील बनाकर सही रास्ते पर रखना है। भारत को लंबे समय तक विकास में गतिरोध ह्रास तो नहीं, परंतु विकास की धीमी गति का सामना करना पड़ा है। अतः हम अधिक वृद्धि चाहते थे। हम सर्वाधिक उत्पादन (वृद्धि) चाहते थे, क्योंकि हमारा विचार था कि हम अभी सर्वोत्तम से कम स्तर पर हैं। भारत लंबे समय तक खुली-बेरोजगारी नहीं तो कम-से-कम अर्ध-बेरोजगारी की समस्या का सामना कर रहा था। हमने ऐसा सोचा कि सर्वाधिक उत्पादन (वृद्धि) द्वारा सर्वाधिक अवसर प्राप्त होंगे, जो सभी को रोजगार देने के लिए पर्याप्त होंगे। अतः हम अधिकतम उत्पादन तथा पूर्ण-रोजगार चाहते थे। भारतीय समाज में असमानता व्याप्त थी, अतः हमने अपनी आय तथा संपत्ति की असमानता को दूर करने की इच्छा की। संभवतः इन सभी उद्देश्यों को एक साथ प्राप्त करने के अंतर्विरोधों को समझकर, पहली योजना की रिपोर्ट में कहा गया कि 'इनमें से किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति दूसरे उद्देश्यों की उपेक्षा करके नहीं हो सकती है।'

उद्देश्यों को दीर्घकालिक एवं अल्पकालिक उद्देश्यों में विभाजित कर सकते हैं। एक योजना से दूसरी योजना के बीच दीर्घकालिक उद्देश्यों में कोई विशेष अंतर नहीं होता, परंतु अल्पकालिक उद्देश्यों में काफी अंतर होता है। दीर्घकालिक उद्देश्य सामान्य होते हैं, जबकि अल्पकालिक उद्देश्य विशिष्ट होते हैं। सभी योजनाओं में वृद्धि-दर के लक्ष्य निश्चित किए गए, क्योंकि उनमें से कुछ ने ही अपने उद्देश्यों की सूची में उनका उल्लेख किया, सभी ने नहीं। दूसरी योजनाओं ने दीर्घकालिक उद्देश्यों को अल्पकालिक उद्देश्यों

के साथ मिला दिया। कुछ अन्य ने तो उद्देश्यों तथा साधनों को ही मिला दिया। विशेषकर द्वितीय तथा तृतीय योजनाओं ने समाज की समाजवादी व्यवस्था पर बहुत बल दिया। बाद की योजनाओं ने उद्देश्यों, लक्ष्यों तथा साधनों के बीच बहुत अंतर नहीं किया।

यदि हम चाहें तो **दीर्घकालिक उद्देश्यों को योजनाओं के उद्देश्य तथा अल्पकालिक उद्देश्यों को योजना-विशेष के उद्देश्य कह सकते हैं**। 50 वर्षों तक दीर्घ-कालिक उद्देश्यों/विकास उद्देश्यों के लक्ष्य निम्नलिखित रहे –

(i) राष्ट्रीय तथा प्रतिव्यक्तिआय के ऊँचे स्तर की प्राप्ति के लिए उत्पादन में यथासंभव वृद्धि करना,

(ii) पूर्ण रोजगार प्राप्त करना,

(iii) आय तथा संपत्ति की असमानता तथा आर्थिक शक्ति के केंद्रीयकरण को कम करना।

इन्हें मुख्य उद्देश्य माना जा सकता है। जबकि कुछ लेखकों ने इस सूची में खाद्यान्नों की आत्म-निर्भरता को भी रखा, तो कुछ ने मौलिक तथा भारी उद्योगों के स्थापित करने की जिम्मेदारी योजना को सौंपी, कुछ ने क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता पर बल दिया। कुछ ने मुद्रा-स्फीति को स्थिर रखने तथा भुगतान-संतुलन में सुधार लाने को विशेष उल्लेख योग्य बताया। इनमें से सभी उद्देश्यों में तथ्य हैं, अतः यह योजना-विशेष के दस्तावेजों में से, अपने विवेक के आधार पर, महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों के चुनाव का प्रश्न है।

अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कुछ लेखकों के अनुसार, **विद्यमान संरचना के विघटन तथा संघटकों का इच्छानुसार एक भिन्न तथा नए रूप में पुनः एकत्रीकरण** ही योजना है।

आर्थिक नीति की मुख्य विशेषताएँ

'नीति' तथा 'व्यूह-रचना' शब्दों का लेखन में प्रयोग बहुत भ्रामक है। यदि शब्दकोष का अनुसरण करें तो 'नीति' को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं– यह विकल्पों के समूह से किसी क्रिया की समन्वित योजना है, जबकि व्यूह-रचना चुनी हुई नीति को अधिकतम सहायता प्रदान करती है। अनुसरण की जाने वाली नीति की मुख्य घोषणा के अनुसार देश में योजना के अंतर्गत मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया जाना था। मिश्रित अर्थव्यवस्था, जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट है, व्यावसायिक उद्यमों (औद्योगिक, व्यावसायिक तथा वित्तीय) में निजी क्षेत्रक तथा सार्वजनिक क्षेत्रक के सह-अस्तित्व पर बल देती है। सह-अस्तित्व के अतिरिक्त, ऐसा माना गया कि जहाँ सार्वजनिक क्षेत्रक का उद्देश्य मूलतः लोक-हित

मिश्रित अर्थव्यवस्था

पॉल ए. सैमुएलसन (अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार विजेता) तथा विलियम डी. नोरधस ने अपनी लोकप्रिय पाठ्यपुस्तक इकोनौमिक्स में मिश्रित अर्थव्यवस्था को ऐसी अर्थव्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जो आर्थिक संगठनों के लिए कीमत-तंत्र पर निर्भर करती है, परंतु समष्टि आर्थिक अस्थिरता तथा बाजार-असफलताओं के संचालन के लिए विभिन्न सरकारी हस्तक्षेपों (जैसे कर, व्यय तथा नियंत्रण) का प्रयोग करती है।

यह मौलिक अर्थ नहीं है, सैमुएलसन और उसके सहयोगियों ने इसे ग्रहण किया है।

इन अर्थशास्त्रियों से पहले, जोसेफ ई. स्टीग्लीट्ज (Joseph E. Stiglitz) ने इसको (term) बहुत सरल तरीके से परिभाषित किया। उनसे इसे सार्वजनिक तथा निजी निर्णय का मिश्रण (mix of public private dicision making) कहा।

होगा, वहीं निजी क्षेत्रक उद्यम केवल लाभ के उद्देश्य से ही कार्य नहीं करेंगे। वे देश की आर्थिक संभावनाओं को बढ़ाने की दिशा में, प्रतिद्वंद्वी होकर नहीं, बल्कि एक-दूसरे के सहयोगी होकर कार्य करेंगे।

हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमने पिछले 40 वर्षों के दौरान केवल एक ही नीति का अनुसरण किया है, वस्तुतः इनका विकास हो रहा है। परंतु इन नीतियों की कुछ विशेषताएँ समान थीं– सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार, औद्योगीकरण, आयात-प्रतिस्थापित, खाद्यान्नों में आत्म-निर्भरता, वित्तीय संसाधनों पर सरकार का नियंत्रण, विदेशी पूँजी पर नियंत्रण, लघु-उद्योगों का संरक्षण, बड़े उद्योगों का नियंत्रण, एकाधिकारों की कटौती, जन-स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रावधान तथा शिक्षा व साक्षरता का प्रसार। तथापि, इन योजनाओं की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं जिनका उल्लेख आवश्यक है, जैसे, हस्तक्षेपीय सरकार, केंद्रीकृत योजना, सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार, भारी उद्योगों का विकास, आयात-प्रतिस्थापन आदि पर बल दिया गया। हम देख सकते हैं कि अंतिम तीनों औद्योगिक क्षेत्र में हैं।

हस्तक्षेपीय सरकार

सरकार बाजार प्रक्रिया में हस्तक्षेप करेगी ताकि यह गरीबों के लिए पर्याप्त आजीविका सुरक्षित कर सके तथा विभिन्न वर्गों के बीच असमानता को कम कर सके। यह ऐसे कानून बनाएगी जिससे भूमि-बिचौलियों के स्वार्थ की समाप्ति कर, संपत्ति के केंद्रीकरण को रोक सके। यह ऐसी संस्थाएँ स्थापित करेगी जो कृषि, उद्योग तथा व्यापार को प्रोत्साहित करे। यह ऐसी राजस्व नीति अपनाएगी जो वृद्धि तथा सामाजिक न्याय को बढ़ावा दे। यह ऐसी मौद्रिक नीति अपनाएगी जो उद्योगों को अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक/पर्याप्त कोष उपलब्ध कराए तथा/या बड़ी संख्या में लोगों को नियोजित करे। यह विदेशी पूँजी निवेश को अनुमति नहीं देगी और यदि दे, तो उसके प्रयोग को संचालित करे। यह विभिन्न हितों को, विशेषकर औद्योगिक क्षेत्र में, ध्यान में रखते हुए कोषों का स्वामित्व, स्केल तथा प्रयोग निर्धारित करेगी। संक्षेप में, सरकार विभिन्न साधनों जैसे लाइसेंस तथा महत्त्वपूर्ण आगतों (विदेशी मुद्रा सहित) के आबंटन के द्वारा निजी क्षेत्र की अधिकांश आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करेगी, यदि नियंत्रित न भी करे तो भी।

केंद्रीकृत योजना

सरकार केंद्रीकृत योजना को प्रोत्साहित करेगी जिससे विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न वर्गों के हितों को प्रोत्साहन मिले। उप-राष्ट्रीय योजनाएँ राष्ट्रीय योजनाओं में समन्वित हो जाएंगी। इनका निर्माण मूलतः राष्ट्रीय योजना आयोग के स्तर पर किया जाएगा। आज भी, यद्यपि राज्य-स्तरीय योजना आयोग हैं, परंतु राज्यों के लिए स्वतंत्र योजनाएँ नहीं हैं। हमारे देश में योजनाएँ लगभग केंद्रीकृत हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार

सरकार की भूमिका पर, विशेषकर उद्योगों से संबंधित, तीस के दशक से ही विवाद आरंभ हो गया। जबकि राष्ट्रीय योजना आयोग में सर्व-सम्मति थी कि रक्षा-उद्योगों का स्वामित्व तथा नियंत्रण सरकार के पास रहेगा, यह सुझाव दिया गया कि अन्य मुख्य उद्योगों में सरकार का नियंत्रण ही पर्याप्त रहेगा। हमारे योजना बनाने के बारे में सोचने से पहले, औद्योगिक नीति ने (प्रस्ताव 1948), जो पहले से ही बन चुकी थी, निश्चित

उद्योगों में सार्वजनिक स्वामित्व के विस्तार की सीमा हटा ली (असीमित कर दिया)।

स्वतंत्रता के समय रेलवे के अतिरिक्त आर्थिक क्षेत्र में विशेष कुछ भी नहीं था, जिसे सार्वजनिक क्षेत्र के अंतर्गत कहा जा सके। औद्योगिक नीति (प्रस्ताव 1956) में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि सरकार नए औद्योगिक उपक्रमों को स्थापित करने की एवं परिवहन सुविधाओं को विकसित करने की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी धीरे-धीरे अपने आधिपत्य में ले लेगी। ऐसा विश्वास था कि निजी क्षेत्र शीघ्र-उत्पादकता वाले उद्योगों में रुचि लेगा, जो स्वामियों तथा उद्योगों को कम समय में अधिक लाभ देंगे, जिनमें जोखिम कम होंगे तथा जिनकी पक्वनावधि भी कम होगी। इसके अतिरिक्त देशीय निजी क्षेत्र के पास पर्याप्त पूँजी भी नहीं थी। विकास की प्रक्रिया को आरंभ करने तथा गतिशील बनाने के लिए मूलभूत तथा मुख्य उद्योगों एवं आधारिक संरचना के लिए बड़ी मात्रा में निवेश की आवश्यकता थी। सार्वजनिक क्षेत्र को यह भूमिका निभाने के लिए नियुक्त किया गया। संक्षेप में, सार्वजनिक क्षेत्र ने भारी तथा मूलभूत उद्योगों (इस्पात, ईंधन तथा ऊर्जा, यंत्र-निर्माण तथा रासायनिक उद्योग) तथा सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र (जैसे बैंक, अन्य वित्तीय संस्थान), रेलमार्ग तथा वायुमार्ग, विद्युत् इत्यादि विकसित करने की जिम्मेदारी अपने हाथ में ले ली, जो मूलभूत व्यूह-रचना थी। निजी क्षेत्र को उपभोक्ता वस्तुएँ, उद्योग तथा व्यापार विकसित करने का अधिकार दिया गया। कृषि, पशुधन, बागान तथा मत्स्य-पालन के अतिरिक्त, लगभग पूर्ण आंतरिक व्यापार तथा अधिकांश विदेशी व्यापार की भी, जिम्मेदारी इसके पास थी। सार्वजनिक क्षेत्र को अपने ऐसे उपक्रमों द्वारा (जो केंद्र तथा राज्यों दोनों के अंतर्गत हैं) निजी क्षेत्र का मार्ग-दर्शन करने वाला माना गया था। अतः इसकी स्थिति सबसे महत्त्वपूर्ण होने की संभावना थी।

भारी उद्योगों का विकास

स्मरण रहे कि स्वतंत्रता से पहले बनाई गई अधिकतर योजनाओं में यह सुझाव दिया गया कि भारत की अर्थव्यवस्था के नियोजित विकास के लिए भारी अभियांत्रिक व मशीन-निर्माण करने वाले उद्योगों, सर्वविदित मध्यस्थों जैसे विद्युत, मूलभूत उद्योग (सीमेंट), भारी रसायन (उर्वरक सहित), धातु-कर्म (जैसे लौह व इस्पात, एल्यूमीनियम तथा मैंगनीज) आदि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। ऐसा माना गया कि भारत का औद्योगिक विकास मूलभूत तथा भारी उद्योगों की अनुपस्थिति के कारण रुक गया था। दूसरी योजना के प्रतिपादन के आरंभ में लगातार यह सुझाव दिया गया कि हमें प्राथमिक उत्पाद का निर्यात तथा मशीनों का आयात बंद कर देना चाहिए तथा अपनी स्वयं की यंत्र बनाने की क्षमता का विकास करना चाहिए।

आयात प्रतिस्थापन

एक सामान्य विचार था कि जहाँ तक संभव हो, हमें आयातित वस्तुओं को घरेलू उत्पादित वस्तुओं से प्रतिस्थापित करना चाहिए। हमें अपने ही देश में पूँजीगत माल (उत्पादकों की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए) तथा उपभोक्ता माल, दोनों का उत्पादन करना चाहिए। इनमें से कुछ उद्योगों को विदेशी वस्तुओं के साथ प्रतिस्पर्धा के योग्य बनाने हेतु, यदि कुछ समय के लिए किसी प्रकार का संरक्षण भी देना पड़े तो, हमें प्रदान करना चाहिए। यह हमें एक ओर निर्यात से बचाएगा तथा दूसरी ओर आवश्यक ऋण से।

मुख्य उपलब्धियाँ और विफलताएँ

यद्यपि सभी उपलब्धियों के लिए, अपनाई गई व्यूह-रचना को ही श्रेय नहीं दे सकते और न ही यह कह सकते कि व्यूह-रचनाएँ आधे-रास्ते में नहीं बदली गईं, फिर भी हमने पिछले चालीस वर्षों में जो उपलब्धियाँ की हैं उन्हें जानना अच्छा रहेगा। यह कहना भी कठिन होगा कि हमने क्या पाया और क्या नहीं। स्थिति को पूरी सफलता या पूरी असफलता के रूप में नहीं देख सकते। ज्यादा से ज्यादा हम कह सकते हैं कि हम कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति में कुछ दूर तक सफल हुए हैं और कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति में नहीं। सफलता या विफलता का श्रेय योजना की नीति को भी नहीं दे सकते।

इस उद्देश्य से पहले हम अपने दीर्घ-कालिक मूलभूत उद्देश्यों, जैसे अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार, आय तथा संपत्ति की असमानता को कम करना तथा आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण आदि का उल्लेख करेंगे। उसके बाद हम अन्य क्षेत्रों की चर्चा करेंगे, जो इन उद्देश्यों के ही विस्तार हैं।

अधिकतम उत्पादन

पचास, साठ तथा सत्तर के दशकों में दीर्घकाल के आधार पर हम 3.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि-दर से अधिक प्राप्त नहीं कर सके तथा योजना-विशेष में तय किए गए लक्ष्यों को भी पूरा नहीं कर सके, जो सामान्यतः 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष से अधिक था। यह निर्णय करना कठिन होगा कि हमने अपनी क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं किया अथवा हमारे लक्ष्य यथार्थवादी अथवा तर्क-संगत थे या नहीं। उदाहरण के लिए, प्रथम योजना के लिए हमने वृद्धि का लक्ष्य बहुत कम रखा (1.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष) तथा इससे दुगुना प्राप्त किया। इसका श्रेय अच्छे मानसून को जाता है (यद्यपि यह वृद्धि अनियोजित क्षेत्रों के कारण थी)। दूसरी योजना में यद्यपि हमने पहली योजना से अधिक वृद्धि की, परंतु हम संतुष्ट नहीं थे, क्योंकि हम केवल 4.0-4.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष का लक्ष्य प्राप्त कर पाए, जबकि हमारा लक्ष्य 4.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष था (मूल लक्ष्य 5.0 प्रतिशत था)। तीसरी योजना में हमें बहुत असफलता हुई तथा हम केवल 2.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि-दर (1980-81 की कीमतों पर) तथा 2.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष (1993-94 की कीमतों पर) प्राप्त कर सके, जबकि हमारा लक्ष्य 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष था। परंतु इसका कारण 1962 में चीन के तथा 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध तथा 1965-66 में मानसून की असफलता था। सत्तर के दशक के मध्य से (1979-80 के बाद से निश्चित रूप से) भारतीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि-दर 3.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष से बढ़कर 5.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गई।

संक्षेप में, 40 वर्षों की लंबी अवधि में हमारी वृद्धि दर लगभग 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी। जनसंख्या में वृद्धि दर को दो प्रतिशत मानते हुए, हम यह कह सकते हैं कि हमारी प्रतिव्यक्ति आय में 2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई है। वर्ष 1990 में लोग, औसतन स्वतंत्रता के समय अपने माता-पिता की (जो उस समय लगभग उनकी आयु के ही रहे होंगे) तुलना में, दुगुने बेहतर ढंग से जीवन जी रहे थे।

इस संदर्भ में शायद यह जानना महत्त्वपूर्ण होगा कि किस क्षेत्र में वृद्धि हुई है और किस दर से? यदि लोग भूखे हैं, तो हमें पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्नों का उत्पादन करना होगा। वर्ष 1951 में सभी अनाजों तथा दालों को मिलाकर हमारे पास 50 मिलियन टन से कम खाद्यान्न थे। 1980

की समाप्ति के समय हमने लगभग 150 मिलियन टन खाद्यान्नों का उत्पादन किया। वर्ष 1951 में हमारी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए 5 मिलियन टन खाद्यान्नों का आयात किया गया। उस समय हमारी दशा उतनी बुरी नहीं थी कि खाद्यान्नों का आयात किया जाए, अतः आयात द्वारा केवल खाद्यान्न की उपलब्धता में सुधार आया। जबकि 50 के दशक में हमारे पास प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 400 ग्राम खाद्यान्न थे, वर्ष 1990 तक, लगातार घरेलू उत्पादन बढ़ने से, प्रतिव्यक्ति उपलब्धता लगभग 500 ग्राम हो गई। इसका सरल अर्थ यह है कि हमारे अनाज का उत्पादन, जनसंख्या की वृद्धि की तुलना में अधिक तीव्र था।

साठ के दशक के मध्य में हमने बहुत बुरे दिनो का सामना किया जब हमें 10 मिलियन टन से अधिक खाद्यान्नों का आयात करना पड़ा तथा हमें दूसरे देशों, मुख्यतः अमेरिका, से खाद्य सहायता मिली। एक बार तो अमेरिका ने खाद्य सहायता को मासिक आधार पर नियंत्रित करने की धमकी भी दी। इससे हम साठ के दशक में **हरित क्रांति** की ओर अग्रसर होने पर विवश हुए। हरित क्रांति शब्द का प्रयोग ऊँची उत्पादक किस्मों के बीज, गहन सिंचाई, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक पदार्थ आदि के लिए हुआ। इसकी सफलता के कारण हमारे आयात नाममात्र के रह गए। थोड़ी मात्रा में, निवल आधार पर, खाद्यान्नों का निर्यात करना पड़ा।

जहाँ तक जन-समूह के उपभोग की अन्य वस्तुओं का संबंध है, इन 40 वर्षों के दौरान (जिनकी समीक्षा की जा रही है) कई वस्तुओं जैसे खाद्य तेल व वनस्पति, चीनी, कपड़े, दूध, अण्डे, मछली, चाय तथा विद्युत के प्रतिव्यक्ति उपभोग में सुधार हुआ। हालाँकि, खाद्यान्नों के अतिरिक्त, अन्य क्षेत्रों में हम लक्ष्य से तथा अन्य विकासशील देशों से भी पीछे थे।

उत्पादन सीमित होने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं — क्षमता की कमी अथवा माँग की कमी। दुर्भाग्यवश बहुत से क्षेत्रों में हमें इन दोनों में से किसी का भी सामना नहीं करना पड़ा। तो क्या यह कार्यान्वयन की असफलता है या परिकल्पना का दोष है? अधिकांश लोग इसका दोष कार्यान्वयन को देते हैं। हमारे विचार से कार्यान्वियन-संबंधी बाधाओं को भी योजना बनाते समय ध्यान में रखना चाहिए।

पूर्ण रोजगार

हमारी अर्थव्यवस्था में, थोड़े-बहुत अपवादों को छोड़कर, जनसंख्या का 1/3 से 2/5 तक अनुपात कार्यरत है। इनमें से अधिकतर लोग स्व-नियोजित हैं, हालाँकि इस अवधि में उनका अनुपात 77 से घटकर लगभग 55 रह गया है। उनमें से अधिकांश कृषक हैं, किंतु शहरी क्षेत्रों में हैं जो अनौपचारिक क्षेत्रों में कार्य करते हैं, शेष भी मजदूरी का कार्य करते हैं। उनमें से कुछ लोगों को नियमित वेतन मिलता है तथा अन्य आकस्मिक मजदूर हैं। नियमित वेतन भोगियों में भी कुछ मजदूर खेतों में कम मजदूरी पर काम करते हैं। ये कारखानों, दूकानों अथवा घरों में काम करते हैं। इनमें से कई कंधे से कंधा मिलाकर अपने श्रमिकों के साथ काम भी करते हैं, परंतु ऐसे लोगों की संख्या कम है। यद्यपि नियमित वेतन-भोगियों का अनुपात कुछ कम हो गया है, आकस्मिक नियोजित श्रमिकों का अनुपात बहुत बढ़ रहा है। अस्सी के दशक के अंत में यह अनुपात 30 प्रतिशत था। अधिकतर लोग इन विकासों को महत्त्वपूर्ण नहीं मानते हैं। स्पष्टतः उनकी दृष्टि में, नियमित मजदूरी,

आकस्मिक मजदूरी से कम होते हुए भी तुलनात्मक रूप से बेहतर है।

यदि कोई पूर्ण-रोजगार की स्थिति का दावा करे तो हमें क्या आशा करनी चाहिए? वे सभी जो 15 वर्ष की आयु से ऊपर तथा 60/65 वर्ष की आयु से कम हैं तथा काम करना चाहते हैं, उन्हें काम मिलना चाहिए। यदि वे मजदूरी पर नियोजित हैं तो उनको पर्याप्त मजदूरी मिलनी चाहिए तथा यदि वे स्व-नियोजित हैं तो उनको अपने काम का पर्याप्त पारिश्रमिक मिलना चाहिए। 'इच्छा', 'पर्याप्त' तथा 'पारिश्रमिक' ऐसे शब्द हैं जो इस संदर्भ में अनिश्चित हैं। 'इच्छा' एक ओर मजदूरी के स्तर से संबंधित है तथा दूसरी ओर जीविका के लिए अन्य सहायताओं की उपलब्धता से। काम करने की विवशता, काम करने की इच्छा जैसा प्रतीत होता है। उचित पारिश्रमिक का मिलना उत्पादों के प्रकारों पर तथा क्रेताओं पर निर्भर करता है। व्यापक गरीबी की स्थिति में अधिकतर स्व-नियोजित व्यक्तियों को उचित पारिश्रमिक मिलने की कम संभावना है। कम उत्पादकता की व्यापकता के कारण मजदूरों को पर्याप्त मजदूरी नहीं मिलेगी। यह गंभीर समस्या है।

चूँकि मजदूरी कम है, अतः न्यूनतम मजदूरी की निश्चितता के लिए कानून बनाना पड़ता है। अनेक संस्थापनाएँ तथा खेत इतने छोटे हैं, कि ये कानून दोनों के लिए लाभदायक न होकर पुनः परेशानी उत्पन्न करते हैं।

विचाराधीन समयावधि में, अकुशल श्रमिकों के रोजगार दर में वृद्धि जनसंख्या वृद्धि दर की तुलना में अधिक नहीं थी, परिणामतः अनियोजितों की वृद्धि दर भी बनी रही। दीर्घ-अवधि में, विशेष परिस्थितियों में, व्यापक उतार-चढ़ावों के साथ भी बेरोजगारी दर इन वर्षों में लगातार एक जैसी रही। फसलों के मौसम को छोड़कर, कोई भी वर्ष ऐसा नहीं था जब अर्थव्यवस्था में आर्थिक गतिविधियों के कारण श्रम की माँग इतनी बढ़ी कि श्रम की अपर्याप्तता महसूस हुई।

तुलनात्मक आधार पर आँकड़े केवल 1972-73 के लिए उपलब्ध हैं। निम्नलिखित उपलब्धियों की ओर ध्यान आकर्षित करने की आवश्यकता है– (i) बेरोजगारी, **सामान्य स्थिति के आधार** पर वर्ष 1972-73 में 1.6 प्रतिशत तथा वर्ष 1977-78 में 3.9 प्रतिशत थी, जो वर्ष 1983 में 2.5 प्रतिशत तथा वर्ष 1987-88 में 3.7 प्रतिशत रही; (ii) **प्रचलित दैनिक आधार** पर बेरोजगारी 8.0 प्रतिशत से अधिक श्रम-दिनों से घटकर सत्तर व अस्सी के दशकों के आरंभ में 6.0 प्रतिशत श्रम-दिन हो गई; (iii) गरीबी निरपेक्ष संख्या रूप में वर्ष 1973-74 से 1987-88 तक लगातार लगभग 32 करोड़ रही; (iv) गरीबी-रेखा से नीचे के लोगों के संदर्भ में गरीबी जो वर्ष 1973-74 में लगभग 55 प्रतिशत थी, घटकर वर्ष 1987-88 में 39 प्रतिशत हो गई; तथा (v) गरीबों में बेराजगारी का अनुपात गैर-गरीबों की तुलना में कम है।

ऐसा मानकर कि यह प्रवृत्ति 50 तथा 60 के दशकों में समान थी, हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि रोजगार/बेरोजगारी में उतार-चढ़ाव के बावजूद, सामान्य स्थिति प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन रोजगार तथा मजदूरी में सुधार हुआ है। परिणामतः गरीबी कुछ हद तक कम हुई है। गरीबों में कम बेरोजगारी-दर दीखती है। गरीब बेरोजगार नहीं रह सकते हैं, क्योंकि उनकी जीविका का कोई अन्य साधन नहीं है। सभी के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर नहीं हैं जिससे मजदूरी पर्याप्त मात्रा में बढ़ सके। बहुत लोग ऐसी स्थिति को रोजगार की वृद्धि कहते हैं।

हमारी वृद्धि की प्रवृत्ति ने पर्याप्त रोजगार के अवसर पैदा नहीं किए, जो इस बात से प्रमाणित होता है कि सरकार को पूरक स्वरोजगार अथवा मजदूरी रोजगार के अवसर पैदा करने के लिए बहुत से कार्यक्रम चलाने पड़े। कुछ कार्यक्रम छोटे किसानों, विनिर्माणकर्त्ताओं तथा व्यापारियों पर केंद्रित थे, जिससे वे लोग अपने-आप को स्व-नियोजित कर सकें, ताकि वे वस्तुएँ बनाकर अथवा सेवाएँ प्रदान कर अपनी आजीविका अर्जित कर सकें।

असमानता में कमी

हम आय तथा उपभोग के वितरण में तथा संपत्ति के केंद्रीकरण में असमानता को कम करना चाहते थे। ऐसा विश्वास है कि विकास की प्रारंभिक स्थिति में असमानता के बढ़ने की प्रवृत्ति होती है, क्योंकि अधिकतर लोगों की संपन्नता में वृद्धि होती है। वास्तव में हमारे पास आय-वितरण के कोई आँकड़े नहीं हैं। हम केवल इतना जानते हैं कि समयावधि में निजी आयकरदाताओं के प्रतिशत में बढ़ोतरी हुई है तथा गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के प्रतिशत में कमी हुई है। वर्ष 1993-94 में, जो विचाराधीन समयावधि के निकटतम वर्ष हैं, गरीबों का अनुपात घटा है तथा उनकी निरपेक्ष संख्या समान रही है। आयकरदाताओं का अनुपात तथा निरपेक्ष संख्या, दोनों में थोड़ी बढ़ोतरी हुई है। मध्यवर्ग का आकार (संख्या तथा अनुपात दोनों में) भी बढ़ा है।

यद्यपि, जब तक हम यह नहीं दिखा देते कि लंबी समयावधि में उच्च-वर्ग के x लोगों की आय Y_1 प्रतिशत से घटकर Y_2 प्रतिशत हो गई है, तबतक हम कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। परिवारों द्वारा किए गए कुल निजी उपभोग व्यय में ग्रामीण-क्षेत्रों में, नीचे के 40 प्रतिशत के प्रत्येक दशमक के अनुपात में, सुधार आया है। दूसरी ओर, शहरी क्षेत्र में नीचे के 80 प्रतिशत के प्रत्येक दशमक (दसवें भाग) में परिवारों द्वारा किए गए व्यय में गिरावट आई है।

जहाँ तक संपत्ति का संबंध है, हम कृषि जोतों के बारे में पहले से ही थोड़ा जानते हैं। पहला, मध्यस्थों (बिचौलियों) के स्वार्थ को समाप्त कर दिया गया। सभी राज्यों में दो बार (50 के दशक के मध्य में तथा सत्तर के दशक के आरंभ में) सूखी, एक-फसल सिंचाई, दो-फसल सिंचाई जोतों की उच्चतम सीमा निर्धारित कर दी गई। अधिशेष-भूमि की घोषणा कर तथा उन्हें अपने अधिकार में लेकर छोटे किसानों, निकाले गए किराएदारों तथा भूमि-हीन श्रमिकों में वितरित कर दिया गया। 14 करोड़ हेक्टेयर निवल बोए गए क्षेत्र में से वर्ष 1951 से वर्ष 1972 तक (40 वर्षों में) हमने देखा कि सीलिंग के सरल कानून बनाने के पश्चात् भी 20 लाख हेक्टेयर भूमि भी अधिशेष नहीं हो सकी तथा केवल 10 लाख हेक्टेयर भूमि का लगभग 44 लाख व्यक्तियों में (औसतन एक एकड़ से कुछ अधिक) वितरण हुआ। समय के साथ इस मुद्दे का काफी हद तक समाधान किया गया। वर्ष 1951 में 72 मिलियन परिवार थे, उनमें से 60 मिलियन गाँवों में थे तथा 50 मिलियन के पास भूमि थी। वर्ष 1991 में, देश में 170 मिलियन परिवार थे, जिसमें से लगभग 125 मिलियन गाँवों में रहे होंगे तथा 100 मिलियन के पास भूमि होगी। जोतों का औसत आकार केवल 1.4 हेक्टेयर है। अतः समयावधि में जनसंख्या की बढ़ोतरी से जोतों का विभाजन हुआ तथा केवल दो प्रतिशत जोत ऐसे होंगे जो कि आकार में 10 हेक्टेयर से बड़े हैं। निश्चित रूप में इनके स्वामियों के पास कुल भूमि का लगभग 20 प्रतिशत है। अधिकतम लोगों के पास एक एकड़ से कम भूमि है।

क्षेत्रीय मापों के समदर्शी

10 हेक्टेयर = 1 वर्ग कि.मी.= 1000000 वर्ग मी.
हेक्टेयर = 100 एकड़ = 100 × (100 × 100) वर्ग मी.
10 एकड़ = 1 वर्ग फर्लांग = 220 × 220 वर्ग गज;
एकड़ = 4840 वर्ग गज = 4000 वर्ग मीटर (लगभग)

औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करने से पहले हम औद्योगिक क्षेत्र (गैर-कृषि) में आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण पर दृष्टि डालें। हम जानते हैं कि कंपनियाँ — सरकारी तथा निजी होती हैं। इसमें सार्वजनिक लिमिटेड तथा निजी लिमिटेड कंपनियाँ होती हैं। प्रदत्त पूँजी का प्रयोग सरकारी कंपनियों में उतना ही होता है जितना निजी कंपनियों में। वर्ष 1991 में लाखों कंपनियों में (2.5 लाख पंजीकृत कारखाने) से 1690 को बड़ी कंपनियाँ माना गया है। ऐसी कंपनियों की संख्या 83.7 प्रतिशत थी, जिनमें 100 करोड़ से कम पूँजी लगी थी तथा जिनकी परिसंपत्तियाँ 27 करोड़ के मूल्य की थीं और जो कुल कंपनियों की परिसंपत्तियों का 30 प्रतिशत भाग नियंत्रित करती थीं। ऐसी कंपनियों की संख्या 1 प्रतिशत थी जिसमें 1000 करोड़ रुपये से अधिक की पूँजी लगी थी तथा जिनकी परिसंपत्तियाँ औसत 1083 करोड़ रुपये के मूल्य की थीं और जो कुल कंपनियों की परिसंपत्तियों का 20 प्रतिशत नियंत्रित करती थीं।

वर्ष 1965 में पता चला कि 75 व्यावसायिक घराने हैं जो 1500 कंपनियों का नियंत्रण करते हैं। वर्ष 1990 के 20 सबसे ऊँचे औद्योगिक घराने ये थे– टाटा, बिड़ला, रिलायंस (जिसका सत्तर के दशक के अंत में प्रवेश हुआ), थापर, जे.के., एल. एण्ड टी., मोदी, बजाज, मफतलाल, एम.ए. चिदम्बरम्, हिंदुस्तान लीवर, यूनाइटेड बेवरेजेज़, टी.वी.एस. आयंगार, आई.टी.सी., श्री राम, ए.सी.सी., ओसवाल, महिन्द्रा एण्ड महिन्द्रा, एस्सार, किर्लोस्कर। प्रथम पाँच औद्योगिक घराने, 20 औद्योगिक घरानों की कुल संपत्ति के 60 प्रतिशत का नियंत्रण करते हैं।

जबकि प्राथमिकताओं का निर्धारण ही मुख्यतः इस केंद्रीकरण के लिए उत्तरदायी था, औद्योगिक-घरानों ने परिस्थितियों को अपने पक्ष में करने के लिए चाल चली। वर्ष 1969 से पूर्व जब बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ था, बैंकिंग उद्योग का नियंत्रण इन्हीं घरानों द्वारा किया जाता था। एक समिति द्वारा औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति की जाँच किए जाने पर मालूम हुआ कि विशिष्ट वित्तीय संस्थानों, जैसे भारतीय औद्योगिक विकास निगम (IFCI), भारतीय औद्योगिक ऋण तथा विकास निगम (ICICI) तथा भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) का 56 प्रतिशत, जीवन बीमा निगम (LIC) का 70 प्रतिशत सावधि-ऋण तथा भारतीय स्टेट

एकाधिकार जाँच समिति 1965 द्वारा अवलोकन

स्वतंत्रता के तुरंत बाद की अवधि में, उन सभी शक्तियों ने, जो देश में शीघ्र औद्योगीकरण लाना चाहती थीं, उद्योगों में शक्ति का केंद्रीकरण कुछ व्यक्तियों अथवा परिवारों में कर दिया जो पहले से ही धनाढ्य तथा शक्तिशाली थे। योजना के लिए आवश्यक संसाधनों का आवंटन तथा प्राथमिकताओं की व्यवस्था ने नए उद्योगों को आरंभ करने अथवा पुरानी संस्थापित इकाइयों का विस्तार करने अथवा विद्यमान उद्योगों में नई इकाइयाँ आरंभ करने के लिए लाइसेंसिंग प्रणाली को आवश्यक किया। पूँजी निर्गमों का नियंत्रण भी किया जाना था। उपर्युक्त सभी परिस्थितियाँ आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण को प्रोत्साहित करती हैं।

वित्तीय संस्थाएँ

आई.सी.आई.सी.आई. (ICICI) = भारतीय औद्योगिक साख तथा निवेश निगम
(Industrial Credit and Investment Corporation of India)
आई.डी.बी.आई. (IDBI) = भारतीय औद्योगिक विकास बैंक
(Industrial Development Bank of India)
आई.एफ.सी.आई. (IFCI) = भारतीय औद्योगिक वित्त निगम
(Industrial Finance Corporation of India)
एल.आई.सी. (LIC) = भारतीय जीवन बीमा निगम
(Life Insurance Corporation of India)
एस.बी.आई (SBI) = भारतीय स्टेट बैंक (State Bank of India)

बैंक (*SBI*) का 62 प्रतिशत सावधि-ऋण इन बड़े औद्योगिक घरानों द्वारा प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार आर्थिक शक्ति का केंद्रीकरण औद्योगिक क्षेत्र के कुछ हाथों में हो गया। उन्होंने 80 लाख से अधिक लोगों को रोजगार भी नहीं दिया।

अब हम संक्षेप में कुछ अन्य उद्देश्यों की चर्चा करेंगे, जिनका बाद की योजनाओं में स्पष्ट रूप से उल्लेख है।

गरीबी में कमी

ऐसा सोचा गया कि वृद्धि की व्यूह-रचना से; संपत्ति व आय (भूमि के) के पुनर्वितरण से; करों के राजस्व कारकों द्वारा तथा मूल्य नियंत्रण व सार्वजनिक वितरण द्वारा उपभोग की अनिवार्य वस्तुओं के बाजारों में हस्तक्षेप द्वारा सामूहिक गरीबी स्वतः दूर हो जाएगी। संतुलित वृद्धि के साथ पुनर्वितरण के साधनों के प्रचालन के बावजूद ऐसा लगा कि गरीबी में महत्त्वपूर्ण कमी नहीं हो रही थी। पाँचवीं योजना ने गरीबी निवारण का अपना मुख्य उद्देश्य रखा। यद्यपि चौथी योजना के दौरान ही समाज के गरीब वर्ग के लिए कुछ पूरक कार्यक्रम आरंभ कर दिए गए थे। गरीबी का अनुमान लगाने की विधि पर वाद-विवाद हुए। इससे पता चला कि गरीबी (गरीबी रेखा से नीचे के लोगों का अनुपात) वर्ष 1973-74 तक स्थायी रूप से कम नहीं हुई थी। किंतु उसके बाद यह 56 प्रतिशत से घटकर वर्ष 1993-94 तक 36 प्रतिशत हो गई। वे, जो गरीबी-रेखा से नीचे थे, गरीबी-रेखा के निकट आ गए। फिर भी, गरीबों की निरपेक्ष संख्या 32 करोड़ रही।

आर्थिक गतिविधियों की विविधता

सार्वजनिक क्षेत्र के योगदान तथा निजी क्षेत्र की सहायता द्वारा हमारे औद्योगिक आधार में, वर्ष 1991 में, काफी विविधता आई। फिर भी हमारी वृद्धि दर का मूल्यांकन अधिक नहीं हुआ। हमारी आवश्यकताएँ संबंधी कई वस्तुएँ ऐसी हैं, जिनका उत्पादन हम कर सकते हैं तथा उनका आयात करने की जरूरत नहीं थी। पेट्रोलियम तथा पेट्रोलियम उत्पादों का आयात इसलिए किया गया ताकि हम अपने भंडार को सुरक्षित रख सकें। इस क्षेत्र में हम कुछ विशेष नहीं कर सकते हैं।

बहुत से ऐसे भारी रासायनिकों तथा उर्वरकों का उत्पादन देश में होने लगा था जिनका हम पहले आयात करते थे। हमने भारी अभियांत्रिक उद्योग में काफी उन्नति की है। हमने प्रौद्योगिकी

के क्षेत्र में काफी प्रगति की है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ हमें यह उपलब्ध न हो सकी ।

स्वास्थ्य एवं कल्याण

बहुत-सी ऐसी उपलब्धियाँ हुईं जिनकी चर्चा यहाँ नहीं हुई है। उल्लेखनीय है कि हमारी जीवन-प्रत्याशा (जन्म के समय) दुगुनी हो गई तथा अन्य आयु पर जीवन-प्रत्याशा में भी काफी सुधार हुआ है। हमारी शिशु मृत्यु-दर, जो पचास के दशक में 140 प्रति हजार थी, घटकर अस्सी के दशक के अंत तक 80 प्रति हजार रह गई। फिर भी यह दूसरे देशों की तुलना में बहुत अधिक थी। मृत्यु-दर जो वर्ष 1951 में लगभग 23 प्रति हजार थी, घटकर वर्ष 1991 में 10 प्रति हजार रह गई। जन्म-दर भी, जो वर्ष 1950 में 45 प्रति हजार थी, घटकर वर्ष 1951 में 30 प्रति हजार रह गई।

निष्कर्ष

हमने योजनाओं को अपनाए जाने के तर्काधार के विषय में जानकारी प्राप्त की तथा स्वतंत्रता के पूर्व की योजनाओं के बारे में भी जाना। हमने योजना के व्यापक अर्थ को भी समझने का प्रयास किया तथा देश की राष्ट्रीय योजना के विशेष संदर्भ को भी समझा। हमने आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र की परिधि में व्यापक योजना के बारे में जाना। उसके बाद हमने योजना के इतिहास की एक झलक देखी। फिर हमने योजना के उद्देश्य तथा उद्देश्यों की योजना में भिन्नता पर चर्चा की, जिन्हें दीर्घकालिक लक्ष्य कहा तथा इनका वर्णन वृद्धि, रोजगार तथा असमानता को कम करने की दृष्टि से किया। आर्थिक नीति की मुख्य विशेषताओं का चित्रण, हस्तक्षेपीय राज्य, केंद्रीकृत योजनाओं, सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार तथा आयात-प्रतिस्थापन के रूप में किया।

अंत में हमने वर्ष 1951 से 40 वर्षों में योजना-नीति की उपलब्धियों एवं असफलताओं के बारे में चर्चा की। हमारा दावा है कि हमने सभी क्षेत्रों में सुधार किया है। हमारी उपलब्धियाँ हमारी आशा से कम रहीं। हमारी उपलब्धियों का स्तर वांछित स्तर से कम रहा। यदि हम अपनी उपलब्धियों की तुलना स्वतंत्रता-पूर्व की स्थिति से करें तो हमारी उपलब्धियाँ निश्चित रूप से प्रशंसनीय हैं तथा इसका श्रेय हमारी आर्थिक एवं सामाजिक विकास-योजनाओं की नीतियों को जाता है। किंतु हम गरीबी कम करने में तथा बेरोजगारी को दूर करने में कुछ हद तक असफल रहे। हम औद्योगिक क्षेत्र में संपत्ति या आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण को कम करने में बुरी तरह असफल रहे।

अभ्यास

1. भारतीय संविधान माल तथा संसाधनों के स्वामित्व तथा नियंत्रण की अनुमित देता है तथा साथ ही बाजारों की प्रक्रिया का हस्तक्षेप भी यह चाहता है, क्यों?
2. संविधान में आर्थिक एवं सामाजिक योजना के लिए प्रावधान कहाँ हैं?
3. तीस के दशक के अंत में कौन-से तीन मॉडल थे जिन्होंने भारतीय नेताओं को योजनाओं के पक्ष में निर्णय लेने के लिए प्रोत्साहित किया?

4. राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किसने तथा कब किया? योजना आयोग के अध्यक्ष तथा सचिव कौन थे? एक अर्थव्यवस्था में सरकार द्वारा, हस्तक्षेप करने के तरीकों, विस्तार तथा गति को निर्धारित करने वाले क्या कारक हैं।

5. राष्ट्रीय योजना समिति की मुख्य अनुशंसाएँ क्या थी?

6. आर्थिक योजना से आपका क्या तात्पर्य है? उद्देश्यों तथा साधनों को कार्यान्वित करने योग्य बनाने की क्या क्या मूलभूत शर्तें हैं।

7. व्यापक विकास योजना से आपका क्या तात्पर्य है?

8. कुछ आर्थिक क्षेत्रों तथा सामाजिक क्षेत्रों को सूचीबद्ध करें।

9. अर्थव्यवस्था के कार्य करने में राज्य द्वारा हस्तक्षेप की कुछ विधियों को सूचीबद्ध करें।

10. हमारी योजनाओं का संक्षिप्त इतिहास लिखिए तथा उन कारणों का उल्लेख कीजिए जिनके कारण एक पंचवर्षीय योजना तब क्यों नहीं तैयार की गयी जब इसका बनना उचित था।

11. योजना के दीर्घकालिक उद्देश्यों तथा योजना उद्देश्यों में अंतर कीजिए। योजना उद्देश्यों के बारे में लिखिए तथा इसके तर्काधार बताएँ।

12. हमारी योजना का मुख्य ढांचा क्या है? क्या यह मिश्रित अर्थव्यवस्था के अस्तित्व को बनाए रखता है? मिश्रित अर्थव्यवस्था से आपका क्या आशय है?

13. 1991 तक की हमारी आर्थिक-नीति की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ क्या उनकी पृष्ठभूमि को न्यायोचित ठहराते हुए है, विस्तार से प्रत्येक की चर्चा करें।

14. अधिकतम उत्पादन के क्षेत्र में विशेषकर खाद्यान्नों में उपलब्धियों/असफलताओं पर चर्चा करें।

15. स्व-रोजगार तथा मजदूरी-रोजगार से आपका क्या तात्पर्य है?

15. 'श्रम-दिन' से आपका क्या अभिप्राय है?

17. नयी आर्थिक नीति के लागू होने के समय रोजगार के क्षेत्र में हमारी उपलब्धियों तथा असफलताओं पर चर्चा कीजिए।

18. वर्ष 1951-1991 के दौरान निम्न क्षेत्रों में हमारे आँकड़े असमानता कम करने के बारे में क्या कहते हैं– (i) आय वितरण में, (ii) ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में उपभोग व्यय के वितरण में, (iii) भू-जोतों के वितरण में ।

19. आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण विशेषकर औद्योगिक संपत्ति के संदर्भ में हमारे आँकड़े क्या हैं?

20. विभिन्न उद्देश्यों की तुलनात्मक सफलता पर प्रकाश डालते हुए वर्ष 1951-1991 के दौरान हमारी उपलब्धियों पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए।

गतिविधियाँ

6.1 यदि हम अपने खाद्यान्नों के लिए आयातों पर निर्भर नहीं रहना चाहते हैं, तो देश में हमें कितने खाद्यान्नों का उत्पादन करना चाहिए, यदि हममें से प्रत्येक प्रतिदिन 500 ग्राम खाद्यान्नों का उपभोग करता है (12.5 प्रतिशत खाद्यान्न बीज, दाना तथा हानि के लिए सुनिश्चित करें) । आपको याद होगा कि निवल निर्गत सकल निर्गत का 87.5 प्रतिशत हो गया है।

6.2 माना कि 40 करोड़ लोग उपलब्ध कुल श्रम-दिन किसी विशेष वर्ष के दौरान 40 करोड़ कार्यरत लोगों के द्वारा 14600 करोड़ व्यक्ति दिन (= 40 cr* 365 days) उपलब्ध होता है। बेरोजगारी दर 10 प्रतिशत लेने पर हमें 1460 करोड़ श्रम-दिनों की = 14600 मिलियन श्रम-दिनों की आवश्यकता होगी (क्षेत्रीय आयामों के साथ श्रम बल के संघटन रूपरेखा का पूरा ध्यान रखते हुए) बताएँ कि रोजगार की विभिन्न परियोजनाओं के द्वारा कितने श्रम-दिनों का सृजन हुआ? क्या यह हमारी आवश्यकता का आधा था?

6.3 समूह गतिविधि– संविधान को देखिए। यह जानने का प्रयास कीजिए कि 'राज्य' शब्द का प्रयोग संविधान में कितने अर्थों में हुआ है। अपने अध्यापक की उपस्थिति में आपस में विचार-विमर्श कीजिए।

वर्ष 1991 से आर्थिक सुधार

परिचय

हमने पिछले अध्याय में संकेत दिया था कि वर्ष 1951 से 40 वर्षों तक किसी एक नीति/नीतियों का अनुसरण नहीं किया गया। हमने बहुत क्षेत्रों में परिवर्तन किए किंतु वे सभी शायद एक ही दिशा में थे – हस्तक्षेपीय राज्य, केंद्रित योजना तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढांचे में सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार। वास्तव में हमने किसी अधिकृत मार्ग का अनुसरण नहीं किया बल्कि कई मार्गों को आज़मा रहे थे। हम 40 वर्षों के दौरान तथा वर्तमान सुधारों से पहले हुए मुख्य विकासों की यहाँ पर फिर से चर्चा करेंगे।

वर्ष 1960 के अंत में बहुत-सी बातें सामने आईं जिसके परिणामस्वरूप कुछ नीतियों की कार्य प्रणालियों की जाँच करने के लिए समितियों का गठन किया गया। यह ज्ञात हुआ कि औद्योगिक नीति, प्रस्ताव 1956 के अनुकूल नहीं थी। अतः इसको और सख्त किया गया। यह पाया गया कि बड़े औद्योगिक घराने वित्तीय संसाधनों का नियंत्रण करते थे, क्योंकि व्यावसायिक बैंकों का स्वामित्व उनके पास था। इसीलिए 14 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण वर्ष 1969 में (तथा 6 और बैंकों का वर्ष 1980 में) हुआ जिससे कृषि विकास तथा छोटे तथा कुटीर उद्योगों के विकास के लिए कोष उपलब्ध हो सके। यह भी मालुम हुआ कि बहुत से औद्योगिक घरानों का निश्चित गतिविधियों पर एकाधिकार था तथा वे प्रतिस्पर्धा को रोकने का प्रयास कर रहे थे। इसके नियंत्रण के लिए एक अधिनियम मोनोपोलीस एण्ड रिस्ट्रिक्टिव ट्रेड प्रैक्टिसेज (MRTP) ऐक्ट लागू किया। ऐसे कार्यों को रोकने के लिए एक आयोग (MRTPC) की स्थापना हुई।

वर्ष 1970 के अंत में कुटीर तथा लघु पैमाने के उद्योगों के विकास को बढ़ावा देने के लिए, सार्वजनिक क्षेत्रों के उत्तरदायित्व का विस्तार करने के लिए तथा निजी क्षेत्र से रूग्ण उद्योगों को अपने अधिकार में लेने के लिए एक आंदोलन का सुझाव दिया गया, परंतु इसे और आगे नहीं बढ़ाया जा सका।

सत्तर के दशक के अंत में यह व्यापक रूप से उद्योगों द्वारा अनुभव किया गया कि लघु उद्योगों के संरक्षण के नाम पर प्रतिस्पर्धा से बचाने के लिए (वस्तुओं को आरक्षित करके, कच्चे माल की उपलब्धता निश्चित करके, उत्पादित माल के क्रय तथा विक्रय में आर्थिक सहायता देकर) ऊँचे प्रशुल्क लगाकर, विदेशी पूंजी तथा तकनीकी के प्रवाह पर रोक लगाकर तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उन उपक्रमों को, जो कि बहुत हानि उठा रहे थे, विशेष सुविधाएँ देकर सरकार अनावश्यक ही निजी क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों की गतिविधि पर रोक लगा रही है।

विदेशी हितों के द्वारा स्वार्थों को इस दृष्टि से अभिव्यक्त किया गया कि सरकार कोटा प्रणाली लगाकर (यद्यपि विदेशी मुद्रा की सीमितता के कारण जिसकी आवश्यकता थी) तथा ऊँचे कस्टम प्रशुल्कों द्वारा तथा विदेशी पूंजी के प्रवाह, सहायता तथा ऋण के प्रवाह को रोक कर विदेशी व्यापार पर प्रतिबंध लगा रही हैं। मध्यम वर्ग के उपभोक्ताओं ने सोचा कि ऊँचे प्रशुल्कों द्वारा विदेशी प्रतिस्पर्धा से घरेलू उद्योग का अतिसंरक्षण किया जा रहा था तथा सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम अर्थव्यवस्था के हित में कार्य नहीं कर रहे थे।

इनमें से कुछ मुद्दों को संबोधित करने के लिए अस्सी में ही एक शुरुआत हो गयी थी। वर्ष 1980 में एक नई औद्योगिक नीति वक्तव्य की घोषणा की गई थी। इस वक्तव्य में यह स्पष्टतौर पर उल्लेख किया गया कि वर्ष 1950 प्रस्ताव ही वर्तमान वक्तव्य का आधार बना है। नयी नीति ने सार्वजनिक क्षेत्र की कुशलता पर से सरकार का विश्वास उठ जाने की बात को स्वीकार किया। वस्तुतः वर्ष 1977 के वक्तव्य में दिए गए निर्देशों को 1980 में वक्तव्य में काफी हद तक स्वीकृत किया। इसने एक उदारवादी दृष्टिकोण अपनाया तथा उद्योगपतियों को आवश्यकता से अधिक क्षमता स्थापित करने के लिए दण्डित करने के बजाय, बिना लाइसेंस के अधिक क्षमता (उन वस्तुओं को छोड़कर जो लघु क्षेत्र के लिए सुरक्षित है अथवा वे स्थितियाँ जहाँ कंपनियाँ MRTPA अथवा FERA के लिए पंजीकृत हैं) नियमित करने का सुझाव दिया। अस्सी के दशक के दौरान, लाइसेंसिंग नीति में निम्नलिखित छूटें दी गई —

1. 15 करोड़ रुपये के मूल्य की स्थायी संपत्तियों वाले उद्योगों को लाइसेंस से पूर्णरूप से मुक्त कर दिया गया तथा यदि वे भारत सरकार द्वारा घोषित पिछड़े क्षेत्र में स्थित हैं तो उनकी सीमा 50 करोड़ रुपये रखी गई।
2. प्रौद्योगिकी के आधुनिकीकरण के कारण होने वाली, पैमाने की मितव्ययताओं को ध्यान में रखते हुए लाइसेंस क्षमता को 49 प्रतिशत बढ़ा दिया गया।
3. एम.आर.टी.पी.सी. आयोग में पंजीकरण करने के लिए अवसीमा को 20 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 100 करोड़ रुपये कर दिया गया।
4. विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए फेरा (FERA) कानूनों को उदार कर दिया गया, तथा
5. निगम आय के नियमों के अंतर्गत रियायत दी गयीं।

उनके अतिरिक्त, सभी स्रोतों से उदारतापूर्वक विदेशी पूंजी उधार ली गई। गैर-निवासी भारतियों (*NRIs*) ने बहुत देश-भक्ति का परिचय दिया तथा अपनी जमाओं के द्वारा विदेशी मुद्रा भण्डार में बहुत बड़ा योगदान किया।

पचास, साठ और सत्तर के दशक में औसत वृद्धि-दर 3.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी, जो अस्सी के दशक में, दो योजनाओं (छठी और सातवीं योजनाओं) में बढ़कर 5.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गयी। आयातों के लिए आवश्यक विदेशी मुद्रा की राशि संतोषजनक थी। फिर भी, यह ध्यान देना चाहिए कि अस्सी के दशक के दौरान :

(क) राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद के 5 प्रतिशत से बढ़कर 8.5 से अधिक हो गया।

(ख) राजस्व घाटा वर्ष (1981-82 में) सकल घरेलू उत्पाद 0.2 से बढ़कर 3.5 प्रतिशत हो गया।

(ग) चालू लेखा घाटा (बाहरी भुगतान में) 1.2 प्रतिशत से बढ़कर 2.5 प्रतिशत हो गया।

ये तथ्य अस्सी के दशक के दौरान अपनाई गई नीतियों की कमजोरियों को प्रतिबिंबित करते हैं। इन नीतियों ने वृद्धि को प्रोत्साहन दिया, फिर भी ये नीतियाँ आंतरिक तथा बाह्य ऋणों पर निर्भर थीं। अतः अस्सी के दशक के दौरान वृद्धि-दर की स्थिरता संदिग्ध थी किंतु परिणाम आशा के विपरीत शीघ्र ही आए।

तात्कालिक संकट

खाड़ी के देशों में संकट के कारण अंतरराष्ट्रीय वातावरण में परिवर्तन से गंभीर विदेशी मुद्रा का संकट उत्पन्न हुआ। खाड़ी देशों को हमारा निर्यात समाप्त हो गया जिससे विदेशी मुद्रा के प्रवाह (दुर्लभ मुद्रा के रूप में) में कमी हो गयी। प्रेषित धन (remittances), जो अप्रवासी भारतियों द्वारा खाड़ी-देशों से आते थे, समाप्त हो गए। पेट्रोलियम तेल तथा स्नेहक (लुब्रिकेंट) पदार्थों के आयात का बिल बढ़ गया। इन सभी कारकों के संयुक्त प्रभाव से हमारी विदेशी मुद्रा का भण्डार घटकर एक बिलियन डॉलर तक हो गया।

राजनीतिक अस्थिरता ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है जिससे बड़ी मात्रा में पूँजी का पलायन हुआ, और हमारी विदेशी मुद्रा का कोष समाप्त हो गया। अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक बैंकों ने नए ऋण देने से मना कर दिया। ऋण मूल्यांकन एजेंसियों ने अपनी व्यावसायिक कुशलता से भारत के अस्तित्व का मूल्यांकन बहुत कम किया। इस कारण, गैर-निवासी भारतियों ने अचानक ही अपने जमाओं (deposits) को वापिस ले लिया। वर्ष 1991 के मध्य से हम अपनी किश्तों का भुगतान न करने के कारण दोषी (default) होने के कगार पर आ गए। दो सप्ताहों के आयातों के भुगतान के लिए भी हमारे पास पर्याप्त मात्रा में विदेशी मुद्रा का भंडार नहीं था। निर्यातों से उपार्जन तथा विदेशी मुद्रा का भंडार हमारे बंधनों (obligations) का शोधन करने में कम पड़ गया। ऐसा आर्थिक सर्वेक्षण 1991-92 में बताया गया है।

जून 1991 से भुगतान शेष का संकट

सरकार के लिए भुगतान शेष के प्रबंध की योग्यता व आत्म विश्वास की कमी अत्यधिक संकट का कारण हो गयी। जून 1991 तक, भुगतान शेष के

हमें कितनी विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है

आप जानते होंगे कि प्रत्येक व्यक्ति को भविष्य में निर्वाह करने के लिए कुछ वस्तुओं के आरक्षित स्टॉक की आवश्यकता होती है, जैसे– सब्जियों/फल/मिठाई कुछ दिनों के लिए, चीनी/चाय/कॉफी कुछ सप्ताहों के लिए, चावल/गेंहूँ कुछ महीनों/मौसम के लिए। आपके स्कूटर तथा कार में भी आपातकालीन जरूरतों के लिए सुरक्षित स्टॉक (तेल) होता है। सरकार भी खाद्यान्नों का सुरक्षित भंडार रखती है, जो फसलों के खराब होने पर काम आता है।

इसी तरह हमें विदेशी मुद्रा के भंडार की आवश्यकता होती है। हम उनको किसी विशेष मात्रा में अथवा विशेष वर्षों के लिए नहीं रखते । हमें विदेशी मुद्रा भंडार के एक विशेष स्तर की आवश्यकता होती है, जो 11-12 सप्ताह के आयातों के लिए पर्याप्त हो।

हम अतिरिक्त भंडार बनाने के लिए अपने संसाधनों को अवरुद्ध नहीं कर सकते हैं, क्योंकि संसाधनों के वैकल्पिक प्रयोग भी होते हैं। इसी तरह, हमें वर्षों के लिए विदेशी मुद्रा के भंडार रखने की आवश्यकता नहीं है। इनका वापिस भुगतान ब्याज के साथ करना पड़ता है।

बढ़ते हुए संकट ने सरकार की भुगतान शेष के प्रबंधन की योग्यता पर एक प्रश्नचिन्ह लगा दिया। इससे विदेशी-ऋण के सभी रास्ते बंद हो गए। हमारे देश के इतिहास में जून 1991 में पहली बार भुगतान का दोष एक गंभीर समस्या हो गयी।

आंतरिक तथा बाह्य विश्वास को वापस स्थापित करने की दृष्टि से, समष्टि आर्थिक स्थिरता के उपाय आरंभ करने की अत्यधिक आवश्यकता महसूस हुई। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि समष्टि आर्थिक उपाय व्यापक होते हैं तथा पूरी अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं न कि किसी क्षेत्र विशेष को। राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति, विनिमय-दर नीति तथा मजदूरी-आय नीति में परिवर्तन ही वे उपाय हैं, जो समष्टि आर्थिक संतुलन (आंतरिक तथा बाह्य) को स्थिर/अस्थिर करते हैं। स्थिरता लाने की दृष्टि से, इन मुख्य नीतियों में सुधारों का सुझाव दिया गया था, जो बहुत बड़ी आवश्यकता थी।

किंतु कई समष्टि आर्थिक (क्षेत्रीय) नीतियों को सुधारने के अवसर भी बंद हो गए थे यह नहीं कहा जा सकता है कि इन समष्टि आर्थिक नीतियों में सुधार किए बिना स्थिरता के उपायों में सुधार प्रभावशाली नहीं होंगे। राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ऐसा माना जा रहा था कि हमारी नीतियाँ वस्तुओं की कीमतों और संसाधनों के आवंटन को विकृत कर रही होंगी। हमने सोचा कि हमारी नीतियाँ भेद-मूलक थी, किंतु यह कहा गया था कि वास्तव में हमारी नीतियाँ कीमतों में विकृति के द्वारा संसाधनों के आवंटनों को विकृत कर रही थीं। इस क्षेत्र में किए गए सुधारों को **संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम** (structural adjustment programme) कहा गया। व्यापार नीति, औद्योगिक नीति, सार्वजनिक क्षेत्र नीति, निर्देशित कीमतों की नीति, शुल्क नीति तथा कारक-बाजार नीति, में सुधार इस संदर्भ में विशेषकर उल्लेखनीय हैं।

कुछ विद्वानों के अनुसार, स्थिरता सामूहिक माँग से तथा संरचनात्मक समायोजन सामूहिक आपूर्ति से संबंधित है। किंतु दूसरे विद्वानों के अनुसार स्थिरता का अभिप्राय समष्टि आर्थिक असंतुलनों को दूर करने के अल्प-कालिक उपायों से है तथा संरचनात्मक समायोजन का श्रम तथा पूँजी की उत्पादकता में सुधार के उपायों से। भारत सरकार ने दूसरे दृष्टिकोण को स्वीकार किया। उदाहरण के लिए, औद्योगिक नीति, श्रम नीति तथा व्यापार नीति में होने वाले परिवर्तन उस दिशा के सूचक हैं। राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति तथा विदेशी मुद्रा नीति में परिवर्तन लाने के प्रयास समष्टि आर्थिक असंतुलन में सुधार करने के लिए हैं। यहाँ इस स्थिति में, दोनों प्रकार के उपायों को साथ-साथ प्रारंभ किया गया।

सुधारों की मुख्य विशेषताएँ

ऊपर दिए गए सुझावों के अनुसार नब्बे के दशक में, लाइसेंस, कोटा, परमिट (LQP) राज का प्रतिस्थापक उदारीकरण, निजीकरण तथा विश्वीकरण प्रणाली द्वारा किया गया। उद्योग तथा व्यापार के अतिरिक्त सुधार के अन्य बहुत से क्षेत्र हैं। किंतु हम सुधार के उपर्युक्त क्षेत्रों की ही चर्चा करेंगे, क्योंकि ये उपाय ही इन क्षेत्रों को निर्णायक ढंग से प्रभावित करेंगे। समष्टि आर्थिक क्षेत्र में आर्थिक सुधारों की मुख्य विशेषताओं को निम्नलिखित रूप में सूचीबद्ध किया है– उदारीकरण, निजीकरण तथा विश्वीकरण।

उदारीकरण (Liberalisation)

यदि आर्थिक गतिविधियों पर सरकारी नीतियों द्वारा प्रतिबंध लगाए जाते हैं तो इस प्रणाली को

प्रतिबंधन की नीति कहेंगे अथवा प्रतिबंधित नीति कहेंगे। इसके विपरीत, यदि सरकार ने कोई प्रतिबंध नहीं लगाए हैं तो इस प्रणाली को अबंध नीति (laissez-faire) कहेंगे। यद्यपि, कोई वास्तविक अर्थव्यवस्था कभी भी पूर्णतया प्रतिबंधों से मुक्त नहीं होगी। जब इनमें से कुछ प्रतिबंध हटा दिए जाते हैं अथवा उनमें ढील दी जाती है तो इस प्रणाली को उदारीकरण कहेंगे। इसके विपरीत यदि अधिक प्रतिबंध लगा दिए जाते हैं तो इस प्रणाली को कठोर नियंत्रण वाली प्रणाली कहेंगे। वास्तव में यह संभव है कि कुछ क्षेत्रों में अधिक प्रतिबंधित, तो कुछ अन्य क्षेत्रों में अधिक उदार नीतियों को अपनाया गया है।

अपने उद्योगों के मामले में हमने देखा था कि औद्योगिक गतिविधियों के विस्तार पर ऊँचे प्रतिबंध निम्नलिखित विधियों से लगाए गए– किसी न किसी अधिनियम के द्वारा कीमतों पर प्रतिबंध लगाकर, औद्योगिक घरानों के निवेश के स्तर पर प्रतिबंध लगाकर, वित्तीय संस्थाओं का साख-नियंत्रण करके, पूंजी निर्गम (शेयर/ऋण पत्र) पर नियंत्रण करके; विदेशी निवेश/तकनीकी पर आयात लाइसेंस द्वारा रोक लगाकर तथा उद्योगों अथवा उनके श्रम के बाहर निकालने पर प्रतिबंध लगाकर।

बहुत लोगों ने ऐसा सोचा कि इन बातों ने एक तरफ लोगों की पहल तथा उद्यमशीलता पर रोक लगाई तथा दूसरी ओर बाजार में प्रतिस्पर्धा पर।

यह भी कहा गया कि बड़े उद्योगपति नौकरशाही के साथ मिलकर इन बाधाओं को अभी पार कर सकते थे, जो इन प्रतिबंधनों को रोकने में सफल हुए। उनका हित इस प्रणाली के चालू रहने में है ताकि उनको प्रतिस्पर्धा का सामना न करना पड़े। अतः अंतिम परिणाम भ्रष्टाचार तथा विलम्ब था। इससे न तो वृद्धि को बढ़ावा मिला और न ही सामाजिक न्याय को। यह तर्क दिया गया कि कम वृद्धि दर ने अर्थव्यवस्था की सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने की क्षमता को कम कर दिया। एक शब्द में, मध्यस्थता, हस्तक्षेप में बदल गयी।

मध्यस्थता तथा हस्तक्षेप

ये शब्द एक-दूसरे के पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। किंतु देश तथा बाजार के संबंधों के संदर्भ में हस्तक्षेप की तुलना में मध्यस्थता शब्द का प्रयोग बेहतर है।

लोगों को यह कहते हुए देखा गया है कि 'कृपया मध्यस्थता कीजिए' (kindly intervene) जब वे किसी तीसरे पक्ष को सम्मिलित कर किसी झगड़े का समाधान शांतिपूर्वक करना चाहते हैं।

लोगों को यह कहते हुए भी देखा गया है कि 'कृपया हस्तक्षेप न करें' (please do not interfere) जब वे किसी मामले का समाधान करने के लिए किसी तीसरे पक्ष को सम्मिलित नहीं करना चाहते हैं।

ऐसी परिस्थितियों के अंतर्गत, तत्कालीन वित्त मंत्री डा. मनमोहन सिंह ने जुलाई-अगस्त 1991 तथा बाद में अप्रैल 1993 में एक नयी औद्योगिक नीति की घोषणा की थी, जिसमें निम्नलिखित क्षेत्रों में उदारवादी प्रावधान थे अथवा प्रोत्साहन देने वाली विशेषताएँ थीं :

(क) व्यवसाय को लाईसेंस,
(ख) विदेशी निवेश,
(ग) विदेशी तकनीकी समझौता,
(घ) प्रतिष्ठानों का विलयन/सम्मेलन, इकाइयों का अधिग्रहण तथा विशेष निदेशकों की नियुक्ति,
(ङ.) सरल निर्गम नीतियाँ।

लाइसेंसिंग प्रणाली मूलतः 18 वस्तुओं तक ही सीमित थी। बाद में तीन वस्तुओं, रेफ्रीजिरेटर, कपड़े धोने की मशीन तथा एयर कंडीशनर को इस सूची से बाहर निकाल दिया गया। विदेशी निवेशों विशेषकर, प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों, को आमंत्रित किया गया तथा प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों का अनुमोदन सरल बना दिया गया था। विदेशी तकनीकी के सहयोग को प्रोत्साहित किया गया। विलयन/अधिग्रहण पर लगे प्रतिबंधों को हटा लिया गया। श्रम कानूनों को निर्गम की अनुमति देने के लिए थोड़ा आसान बना दिया गया।

अतः मुद्दा यह है (किसी अर्थशास्त्री के अनुसार) क्या उदारीकरण का तात्पर्य नौकरशाही को खत्म करना अथवा बाजारीकरण है? हम में से बहुत लोग यह महसूस करते हैं कि हम नौकर शाही को समाप्त करने में कम सफल हुए हैं तथा बाजारीकरण को प्रोत्साहित किया है। बहुत-सी नीतियों में परिवर्तन करना पड़ा क्योंकि जिन उद्देश्यों के लिए वास्तव में नीतियाँ बनाई गई थी उनसे या तो बहुत अधिक हो रहा है या बहुत कम।

निजीकरण

'सरकार का कार्य व्यवसाय करना नही है' (Government has no business to do business) यह मुहावरा एक नया मंत्र बन गया। यह विश्व में निजीकरण की तरंग के अनुरूप स्वर था। एक समय था जब तथाकथित पूंजीवादी देशों में अनेक निजी उद्योगों (तथा व्यापार) का राष्ट्रीयकरण हुआ था। अब स्थिति विपरीत है तथा अ-राष्ट्रीयकरण एक चलन हो गया है। हमारे देश में बहुत से सार्वजनिक उद्यमों के भावशून्य प्रदर्शन ने ऐसा अवसर दिया।

इस संदर्भ में यह महसूस किया कि सरकार अनेक क्षेत्रों में प्रत्यक्ष रूप से प्रचालन कर रही थी जहाँ नहीं करना चाहिए था तथा इसके अनेक उपक्रम अपने लक्ष्य के अनुरूप स्तर तक का भी प्रदर्शन नहीं कर रहे थे। पहली स्थिति में सरकार आसानी से पीछे हट सकती थी। इसका तात्पर्य है कि ऐसे उपक्रमों को बेच देना चाहिए था। इसे विनिवेश (*disinvestment*) कहा जाने लगा। बाद की स्थिति में, उपक्रमों के इतने सुधार हो गए कि उनके प्रदर्शन अच्छे हो गए, भले ही उन्हें इसके लिए निजी क्षेत्र के साथ साझेदारी भी करनी पड़े। यहाँ विचाराधीन है कि खराब प्रदर्शन व हानि उठाने वाले उद्यमों को कौन खरीदेगा तथा यदि कोई खरीदने का इच्छुक भी होगा तो वह अधिक राशि क्यों देगा। एक ऐसी सरकार, जिसके पास कोषों की कमी हो, तो वह अच्छे प्रदर्शन करने वाले उद्यमों के शेयर को बेचने के बारे में सोच सकती है ताकि वह अपना बजट कुछ बेहतर संतुलित कर सके।

यदि निजीकरण का कुछ यथार्थ मूल्य है, तो हमें इसे प्रोत्साहन देने में संकोच नहीं करना चाहिए। हम निजीकरण के विभिन्न निदर्शों का परीक्षण कर रहे हैं। उनमें सबसे सरल, स्वामित्व के मुद्दे से संबंधित है। उपक्रम को पूर्ण रूप से बेच देना, 26 प्रतिशत स्टॉक निषेधाकार (veto) शक्ति के साथ रखकर, 51 प्रतिशत स्टॉक अपने पास रखकर तथा 75 प्रतिशत स्टॉक अपने पास रखकर, इन सभी तरीकों का किसी न किसी स्थिति में परीक्षण किया जा चुका है। कौन-सा रूप अपनाया जाए, यह इस बात पर निर्भर करता है कि एक विशिष्ट उद्यम कौन-सा उत्पाद विनिर्मित करता है अथवा कौन-सी सेवा प्रदान करता है। अधिकार-हरण या उपक्रम को पूर्णतया बेच देना,

ऐसे क्षेत्र में सोचा जा सकता है जिसके सार्वजनिक क्षेत्र में रहने का कोई औचित्य नहीं है। यदि उत्पाद की गयी वस्तुएँ/सेवाएँ ऐसी श्रेणी में आते हैं जो सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित हैं तो सरकार को शेयर-पूंजी कम से कम 51 प्रतिशत हिस्सा अपने पास रखना चाहिए तथा कुल स्टॉक में से 49 प्रतिशत से अधिक विनिवेश नहीं करना चाहिए (यदि अंतिम तीन विकल्पों का सहारा लिया जाता है तो इसका तात्पर्य है कि ये उद्यम संयुक्त उद्यमों में बदल जाएंगे)। शेयरों को अपने कर्मचारियों को बेचकर उद्यम का सहकारिता सिद्धांत पर चलना इसका दूसरा विकल्प है। बाद में, भारत सरकार ने लाभ देने वाले उद्यमों तथा हानि पहुँचाने वाले उद्यमों के शेयरों को इकट्ठा करके (बंडल बनाकर) प्रयोग किया परंतु कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

निजीकरण के बारे में दूसरे मत भी हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में व्यावसायिक आत्मा जागृत करना एक ऐसा ही मत है। रेलवे को निगमित करने का सुझाव आया है, जिसका तात्पर्य है कि रेलवे बोर्ड को ऐसे सार्वजनिक निगम में परिवर्तित कर देना चाहिए, जिसमें स्वायत्तता है। इसको परिचालन की दृष्टि से निजीकरण कहा जा सकता है। यथापि इसमें विनिवेश सम्मिलित नहीं है। दूसरे सुझाव के अनुसार सार्वजनिक उद्यम को निजी-पार्टी को पट्टे पर दे दिया जाए अथवा इसकी आगतों के रूप में प्रयुक्त बहुत-सी सेवाओं को ठेके पर दे दिया जाए। संगठन की दृष्टि से इसे निजीकरण माना गया है। किंतु सही शब्दों में यह स्वामित्व का प्रश्न है। स्वामित्व के साथ नियंत्रण आता है। सामान्य सरकार अभी भी संक्रियात्मक तथा संगठनात्मक स्वायत्तता प्रदान कर सकती है तथा प्रबंधन के साथ समझौते का ज्ञापन दे सकती है। अंत में हम यह कह सकते हैं कि विनिवेश द्वारा हमारे निजीकरण के कार्यक्रम को केवल 50 प्रतिशत ही सफलता मिली है।

विश्वीकरण

विश्वीकरण शब्द को अभी भी कोई निश्चित अर्थ नहीं मिल सका है। एक अर्थशास्त्री ने इसे विशिष्ट उद्योग में विश्व नेता के साथ प्रतिस्पर्धा में प्रदर्शन के रूप में परिभाषित किया है। दूसरे यह सोचते हैं कि यह उत्पादन के कारकों की मुक्त अंतर्राष्ट्रीय गतिशीलता के साथ, यह वस्तुओं व सेवाओं का राष्ट्रों के बीच मुक्त व्यापार है। हमें केवल भारतीय अर्थव्यवस्था के विश्वीकरण के बारे में ही बात करनी चाहिए। इसका अर्थ भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ बेहतर एकीकरण के संदर्भ में लें। दो अर्थव्यवस्थाओं का एकीकरण कैसे हो सकता है? सहायता द्वारा नहीं (जो एक-पक्षीय प्रवाह है), बल्कि व्यापार द्वारा (जो द्वि-पक्षीय प्रवाह है) । सरकारों के बीच आर्थिक संबंधों द्वारा नहीं, बल्कि हमारे बाजारों के विश्व के बाजारों के साथ आमना-सामना के द्वारा।

एक देश-दूसरे देश में अपनी वस्तुएँ कैसे बेच सकता है, यदि सरकार आयात पर 'कोटा' द्वारा प्रतिबंध लगा देती है, (जबकि हम आपूर्ति करने के इच्छुक हैं तथा दूसरे लोग खरीदने के इच्छुक हैं) अथवा 300 प्रतिशत आयात शुल्क लगाकर (ऊँचे प्रशुल्क लगाकर) रोक लगा देती है। हम ऐसे उपायों के द्वारा प्रतियोगिताओं से बाहर हो गए तथा सरकार अकुशल देशीय उत्पादकों को संरक्षण देती रही। यदि सरकार ऐसे प्रतिबंध हटा देती है, तो देशीय उत्पादक या तो कुशलता में सुधार लाएंगे अन्यथा उत्पादन की दूसरी धाराओं को अपना लेंगे। यदि आप इस तर्क से सहमत हैं

तो आप, प्रशुल्क तथा गैर-प्रशुल्क, दोनों को हटाने की वकालत करेंगे। किंतु इस प्रकार के तर्क से असहमत होने के कई कारण हो सकते हैं। कोई भी सरकार यह खुशी से नहीं करती है। कुछ क्षेत्रों में घरेलू उद्योगों को प्रतिस्पर्धा से संरक्षण देना वांछनीय हो सकता है।

क्या आप अपने देश में उत्पादन करके दूसरे देश में विक्रय करना पसंद करेंगे? बहुराष्ट्रीय निगम तथा अंतरराष्ट्रीय निगमों के संयंत्र बहुत से देशों में हैं। मेज़बान देश में उत्पादन उनको परिवहन लागत से बचाता है। इसलिए हमें पूंजी के गमनागमन को भी अनुमति देनी चाहिए। अतः कारक बाजारों का भी एकीकरण हो जाता है। एक बार उत्पादक देश में जम गया तो वह बेहतर प्रौद्योगिक प्रबंधकीय प्रणालियों तथा उद्यमीय निपुणताएँ लाने का प्रयास करेगा। इसके दूरगामी प्रभाव होंगे।

हम में से बहुत लोग जानना चाहेंगे कि क्या श्रम तथा मानव शक्ति का संचालन उतना ही सरल होगा? हम जानते है कि यह इतना सरल नहीं है।

संक्षेप में विश्वीकरण निम्नलिखित बातों की अनुमति देती है :

(क) वस्तुओं को मुक्त प्रवाह की अनुमति देने के लिए व्यापार के रुकावटों में कमी,

(ख) प्रेरक वातावरण तथा प्रस्तावों की आसान स्वीकृतियों द्वारा सावधि निवेश (प्रत्यक्ष तथा पत्राधान/portfolio) के रूप में विदेशी पूँजी का मुक्त प्रवाह,

(ग) तकनीकी का मुक्त प्रवाह, तथा

(घ) श्रम तथा मानवशक्ति की मुक्त गतिशीलता

गैर-प्रशुल्क प्रतिबंधों को हटाकर प्रशुल्क-प्रतिबंधों में पर्याप्त कमी करके तथा आर्थिक सहायता को कम करके/हटाकर असंरक्षित प्रतिस्पर्धा द्वारा विश्व व्यापार संगठन (WTO) मुक्त व्यापार के लिए कार्य कर रही है। इसने परंपरागत रूप में GATT में किए गए समझौतों के क्षेत्रों को बढ़ा लिया है। इसमें व्यापार सेवाओं में सामान्य समझौता (GATT), व्यापार संबंधी बुद्धिजीवी संपदा अधिकार (TRIPS) तथा व्यापार संबंधित निवेश उपायों (TRIMS) को सम्मिलित किया गया है।

निष्कर्ष

हमने यह अध्याय भारत में औद्योगिक अर्थव्यवस्था तथा नीतियों के विकास को चित्रित करते हुए आरंभ किया। सबसे पहले हमने देखा कि हमने नीतियों के सही अभिप्रायों का अनुसरण नहीं किया है। न चाहते हुए भी शक्ति के केंद्रीकरण में बढ़ोतरी हुई। सत्तर के दशक में विदेशी मुद्रा की खराब होती स्थिति ने सख्त नियंत्रणों को बढ़ावा दिया। अतः सख्ती बरती गई। किंतु अस्सी के दशक तक यह देखा गया कि हमारी नीतियाँ बहुत प्रतिबंधित हो गयी हैं। लाइसेंस, परमिट व कोटा राज व्यापक हो गया है। अतः प्रतिबंधन कुछ ढ़ीले किए गए। अंतरराष्ट्रीय बाजार से उदारता पूर्वक ऋण लिए गए, क्योंकि अंशतः सहायता-धन राशि समाप्त हो रही थी। आयातों को उदार कर दिया। वृद्धि-पथ में आश्चर्यजनक सुधार हुआ। तथापि, कार्यक्रम की कुछ कमियाँ थीं जो इसे विरासत में मिली थीं। ये समष्टि आर्थिक दृश्य से स्पष्ट हैं। हमें इसका पता, राजस्व घाटे, राजकोषीय घाटे, भुगतान शेष में चालू लेखा घाटे की बिगड़ती हुई स्थिति से चलता है।

वर्ष 1991 में खाड़ी युद्ध होने से अर्थव्यवस्था के प्रेषित धन में कमी आयी। राजनीतिक अस्थिरता के कारण पूंजी का काफी पलायन हुआ। हमारे विदेशी मुद्रा के भंडार इस स्तर तक संकुचित हो

गए कि वे दो सप्ताह के आयातों की आवश्यकता को मुश्किल से पूरा कर सकते थे। हमें समष्टि आर्थिक स्थिरता तथा व्यष्टि आर्थिक सामंजस्य संबंधी नीतिगत सुधार लाने की सलाह दी गयी। यह कहा गया कि हमने देश की गति को पीछे मोड़ दिया है। कुछ लोग कहते हैं कि हमने केवल हस्तक्षेप की संरचना में परिवर्तन किया है न कि दूसरे स्तरों में।

अंत में, हमने आर्थिक सुधारों की तीन मौलिक विशेषताओं, अर्थात् उदारता, निजीकरण तथा विश्वीकरण के सूक्ष्म भेद पर विचार-विमर्श करने का प्रयास किया। हमने कुछ सुधारों को भी आगे बढ़ाया तथा हमें इसमें कुछ हद तक सफलता मिली। उनमें से कुछ को, जिन्हें दूसरी पीढ़ी के सुधार के रूप में जाना जाता है, लागू करने में विलम्ब हुआ है। सुधारों के दो समूहों में यह अंतर है कि, पहली पीढ़ी के सुधारों को कार्यकारी तथा प्रशासकीय यंत्र द्वारा लागू किया जा सका, जबकि दूसरी पीढ़ी के सुधार लागू करने के लिए वैधानिक क्रिया की आवश्यकता हुई।

अभ्यास

1. साठ, सत्तर तथा अस्सी के दशकों में भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास (विशेषकर औद्योगिक क्षेत्र में) की चर्चा करें।
2. अस्सी के दशक में आगे बढ़ायी गयी नीतियों के गुणों तथा मुख्य कमियों का उल्लेख कीजिए।
3. हम कुछ गतिविधियों पर प्रतिबंध क्यों लगाते है? उदाहरण सहित समझाइए।
4. मूलभूत समस्या क्या थी जिसने हमें हमारी नीतियों को U-घुमाव (U-turn) लेने पर विवश किया?
5. वर्ष 1991 में विदेशी मुद्रा भंडार का क्या स्तर था?
6. समष्टि आर्थिक स्थिरता के कार्यक्रमों से आपका क्या तात्पर्य है? साधनों तथा विस्तार के आधार पर इनकी विशेषताएँ बताइए।
7. व्यष्टि आर्थिक सामंजस्य के कार्यक्रमों से आपका क्या तात्पर्य है? साधनों तथा विस्तार के आधार पर इनकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
8. आर्थिक सुधारों की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?
9. अबंध-नीति से आपका क्या आशय है? अबंध-नीति तथा उदारीकरण की नीतियों के बीच अंतर बताएँ।
10. प्रतिबंध की नीतियों तथा उदारीकरण की नीतियों में अंतर कीजिए।
11. निजीकरण से आपका क्या तात्पर्य है? यह अ-राष्ट्रीयकरण से कैसे भिन्न है, चर्चा करें।
12. विनिवेश से आपका कया आशय है? इस कार्यक्रम में हम कितने सफल हुए?
13. विश्वीकरण से आपका क्या तात्पर्य है?
14. विश्व व्यापार संगठन द्वारा पूंजी बाजार तथा श्रम बाजार के असमान व्यवहार पर आप की क्या प्रतिक्रिया है?
15. विश्व व्यापार संगठन क्या है? इससे किन कार्यों की आशा की जा सकती है?

इकाई III

भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष वर्तमान चुनौतियाँ

इस इकाई में आप भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष जो वर्तमान चुनौतियाँ हैं, उनकी जानकारी प्राप्त करेंगे। हम उन स्थायी समस्याओं की चर्चा करेंगे जिनके साथ हम वर्षों से जूझ रहे हैं। ये हैं, जनसंख्या, निर्धनता तथा बेरोजगारी।

बहुधा ऐसा कहा जाता है कि आधारिक संरचना की कमी के कारण आर्थिक विकास की गति अवरुद्ध होती है। कुछ आधारिक संरचना सेवाओं में पिछले पचास वर्षों में हुई प्रगति के बारे में हम पहले पढ़ चुके हैं। यहाँ जिन आधारिक संरचनाओं की चर्चा की गई वे हैं: ऊर्जा, परिवहन, तथा संचार। यहाँ हम उन चुनौतियों का अध्ययन करेंगे, जिनका उन्हें सामना करना पड़ रहा है।

अंतिम अध्याय में हम कुछ उभरते हुए विषयों पर चर्चा करेंगे। यहाँ जो विषय लिए गए हैं वे हैं– पर्यावरण, लिंग तथा प्रवसन।

अध्याय 8

भारत में जनसंख्या

परिचय

एक समय था जब जनसंख्या में वृद्धि वांछनीय मानी जाती थी। कुछ विकसित और अविकसित समाजों में जनसंख्या में वृद्धि अभी भी वांछनीय मानी जाती है। यूरोप के कई देश परिवारों का आकार बड़ा रखने के लिए प्रोत्साहन भी देते हैं। परंतु, **कुछ अर्थव्यवस्थाएँ और कुछ समय ऐसे होते हैं जहाँ जनसंख्या में वृद्धि अवांछनीय होती है, विशेषकर यदि यह वृद्धि तेज हो तो।** भारत में, जनसंख्या की वृद्धि तीस के दशक से ही अवांछनीय मानी जा रही थी जब यह जानकारी हुई कि 1921 से 1931 के बीच जनसंख्या में 10 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई है। उसके बाद, यह अधिक तेजी से बढ़ी और पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह इससे भी दूनी तेजी से बढ़ी।

जनसंख्या के द्वारा जहाँ एक ओर उत्पादन के लिए श्रमबल प्राप्त होता है वहीं दूसरी ओर इन उत्पादों के लिए बाजार भी। जनसंख्या का आकार यदि छोटा हो तो इससे उत्पादन की नवीन प्रक्रियाओं को प्रोत्साहन नहीं मिलता और फलस्वरूप उत्पादकता में वृद्धि नहीं होती। आकार के छोटे होने से विशिष्टीकरण तथा श्रम-विभाजन का लाभ भी नहीं मिलता। जनसंख्या का आकार बड़ा हो तो हाथों की संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि उन्हें काम में लगाना संभव नहीं। बड़े आकार की जनसंख्या पर्यावरण तथा संसाधनों के लिए भी समस्याएँ उत्पन्न कर सकती है। जब भी अति जनसंख्या की बात उठती है तो कुछ विद्वान या बुद्धिजीवी या तो इसे मानते ही नहीं या यदि मानते भी हैं तो इसके लिए वे व्यवस्था तथा उसकी संस्थाओं तथा प्रौद्योगिकी को जिम्मेदार मानते हैं। वस्तुतः जनसंख्या कम है या अधिक यह एक ओर तो उपलब्ध संसाधनों या प्रौद्योगिकी के द्वारा तथा दूसरी ओर लोगों को उपलब्ध और उनके द्वारा अपेक्षित जीवन-स्तर द्वारा निर्धारित होता है। फिर भी हमें जनसंख्या की वृद्धि-दर को कम करने की आवश्यकता हो सकती है।

आकार के अतिरिक्त जनसंख्या के अन्य पक्ष भी हैं जो समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। आकार इनमें से एक है। दूसरा रोचक पक्ष लिंग और आयु की दृष्टि से जनसंख्या का संघटन है। बच्चे अधिक हैं या कम? बुजुर्गों की संख्या अधिक है या कम? कार्य करने योग्य वयस्कों की संख्या अधिक है या उनकी कमी है? क्या महिलाओं की संख्या सभी आयु-वर्ग में कम है या किसी विशेष आयु-वर्ग में ही?

ध्यान दिया जाना चाहिए कि 'बहुत अधिक या बहुत कम' किसी वस्तुस्थिति से संबद्ध होता है अर्थात् सापेक्ष होता है। हम इन्ही विषयों का अध्ययन इस अध्याय में करेंगे।

हमारी जनसंख्या कितनी है

कई बार हमारा सामना ऐसे प्रचिलत अंधविश्वासों से होता है जिनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता। ये अनावश्यक रूप से भय का वातावरण पैदा करते हैं।

ऐसा एक उदाहरण है– हमारी जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का छठा भाग है जबकि हमारी भूमि विश्व की कुल भूमि का 2.5 प्रतिशत है। दूसरा उदाहरण है– भारत चीन के बाद विश्व में दूसरा ऐसा देश है जो एक बिलियन की संख्या को पार कर चुका है। यदि स्थिति ऐसी ही बनी रही तो हमारा आकार जल्दी ही चीन से बड़ा हो जाएगा।

ये तथ्य सही हैं। स्थिति की गंभीरता और इन आँकड़ों को एकत्र करने का उद्देश्य ही हमारी विषय-वस्तु है।

आज हमारा आकार विश्व में सबसे बड़ा होता यदि पाकिस्तान और बांग्लादेश (म्यांमार को छोड़कर) हमारे देश के अंग होते। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि 2001 में चीन पाकिस्तान तथा बांग्लादेश की जनसंख्या निम्नलिखित थी– चीन की 127.76 करोड़ (01.02.2000), पाकिस्तान की 15.65 करोड़ (01.07.2000) तथा बांग्लादेश की 12.92 करोड़ (01.07.2000) । भारत पाकिस्तान तथा बांग्लादेश इन तीनों की जनसंख्या मिलकर 131.33 करोड़ होती है जो चीन की जनसंख्या से अधिक है। क्या यह राजनैतिक सीमाओं की बात नहीं है? चीन का क्षेत्रफल (96 लाख वर्ग कि.मी.) भारत के क्षेत्रफल (33 लाख वर्ग कि.मी.) से तीन गुना तथा एक साथ तीन दक्षिण एशियाई देशों के कुल क्षेत्रफल से दो गुने से भी अधिक है। पाकिस्तान का क्षेत्रफल 8 लाख वर्ग किलोमीटर तथा बांग्लादेश का 1.45 लाख वर्ग किलोमीटर है।

इन बातों का तात्पर्य है कि हमारा देश सघन आबादी वाला देश है। हमारी जनसंख्या की सघनता चीन की तुलना में अधिक है परंतु जापान तथा अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में कम है। ज़रा यूरोप के बारे में सोचें। यदि उनके निवासी नई दुनिया या ऑस्ट्रेलिया में आकर नहीं बसते तो क्या होता।

यदि कृषि योग्य भूमि पर विचार करें तो देखेंगे कि हमारी भूमि चीन के बराबर है। हालाँकि कुछ देश ऐसे हैं जो अपनी खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पूरी तरह आयातों पर निर्भर हैं, पर उनके पास इसके बदले में देने के लिए कुछ और है।

यह कहानी अंतहीन है। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि बिना उपयुक्त तुलना के केवल कुछ तथ्यों की चर्चा का कोई अर्थ नहीं।

जनसंख्या का आकार

जनसंख्या के आकार को लोगों की संख्या द्वारा मापते हैं। यदि हम देश की वर्तमान सीमाओं को ध्यान में रखकर विचार करें तो देखेंगे कि हमारी संख्या इस शताब्दी के आरंभ में 25 करोड़ से कम थी जो शताब्दी के अंत तक बढ़कर 100 करोड़ से अधिक हो गई। एक शताब्दी के अंदर हमारी संख्या में चार गुनी वृद्धि हो गई। आरंभ में तीन गुनी वृद्धि हो रही थी। शताब्दी के मध्य में हम 36 करोड़ थे। शताब्दी के पूर्वार्द्ध में, जनसंख्या में 50 प्रतिशत की दर से वृद्धि हो रही थी जो उत्तरार्द्ध में बढ़कर 150 प्रतिशत से भी अधिक हो गई। यह वृद्धि 180 प्रतिशत थी।

सारणी 8.1 में, विभिन्न जनगणना में जनसंख्या के आँकड़े दिए गए हैं जो रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इण्डिया के नवीनतम प्रकाशनों से लिए गए हैं। यहाँ दिए गए आँकड़े इकाइयों में हैं (परंतु आप उन्हें करोड़ या मिलियन में पूर्ण कर सकते हैं) । निम्न सारणी आधारभूत है जिससे कुछ अन्य सारणियों का निर्माण भी किया जाएगा।

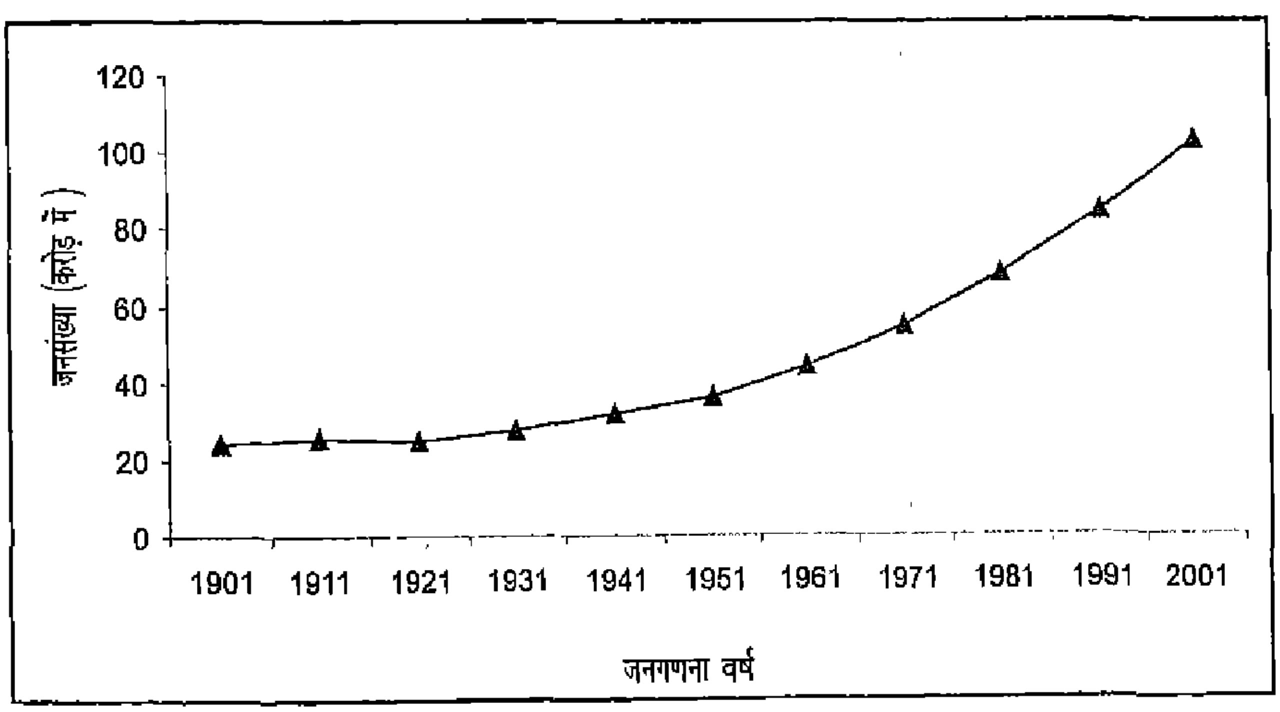
सारणी 8.1
जनगणना के अनुसार बीसवीं शताब्दी में भारत की जनसंख्या

वर्ष	जनसंख्या
1901	23,83,96,327
1911	25,20,93,390
1921	25,13,21,213
1931	27,89,77,238
1941	31,86,60,580
1951	36,10,88,090
1961	43,92,34,771
1971	54,81,59,652
1981	68,33,29,097
1991	84,33,87,888
2001	102,70,15,247

स्रोत : *भारत की जनगणना, 2001, शृंखला 1 भारत: अनंतिम जनसंख्या योग — 2001 का पेपर 1, रजिस्ट्रार जनरल तथा सेन्सस कमिश्नर, भारत।*

इस सारणी से हम देख सकते हैं कि 1921 में देश की जनसंख्या (वर्तमान सीमाओं के भीतर) 1911 की तुलना में कम थी। जनसंख्या गणनाकारों के अनुसार इसका कारण 1918 में देश के कई भागों में फैलने वाली फ्लू की महामारी थी। इसके कारण यद्यपि जनसंख्या में 8 लाख की कमी बताई गई थी, परंतु वास्तव में यह संख्या 1.5 करोड़ से कम नहीं थी। बीसवीं शताब्दी के दौरान सिर्फ एक ही बार एक ही दशक में ऐसा हुआ था कि मृत्यु की संख्या जन्म की संख्या से अधिक थी। 1921 के बाद से जनसंख्या में नियमित वृद्धि होती रही, कमी कभी नहीं हुई। देखें आरेख 8.1।

1921 के बाद के हर दशक में हमारी संख्या में पूर्ववर्ती दशक की तुलना में अधिक वृद्धि होती रही है। पहले यह कहा जाता था कि प्रत्येक वर्ष हम एक आस्ट्रेलिया जोड़ रहे हैं। नब्बे के दशक में, हम में पूरा एक अर्जेन्टीना जुड़ गया,



आरेख 8.1 : भारत की जनसंख्या

जो संसार का पाँचवाँ बड़ा देश है, जब हमारी जनसंख्या में 18 करोड़ की वृद्धि हुई। सारणी 8.2 को देखिए। चूँकि हमारी जनसंख्या का आधार अब पहले से बड़ा है, हम देख सकते हैं कि जनसंख्या की निरपेक्ष संख्या बहुत अधिक है और अब भी बढ़ रही है। परंतु आप ध्यान दे सकते हैं कि दोनों निरपेक्ष वृद्धियों में अंतर घट रहा है।

सारणी 8.2
बीसवीं शताब्दी के दशकों में निरपेक्ष वृद्धि

दशक	*निरपेक्ष वृद्धि*
1901-1911	1,36,97,063
1911-1921	-7,72,177
1921-1931	2,76,56,025
1931-1941	3,96,83,342
1941-1951	4,24,27,510
1951-1961	7,81,46,681
1961-1971	10,89,24,881
1971-1981	13,51,69,445
1981-1991	16,30,58,791
1991-2001	18,0627,359

स्रोत : सारणी 8.1 पर आधारित।

वृद्धि की दर

दशकवार वृद्धि

अब हम दशकों के लिए वृद्धि दर निकालें। इसके लिए निरपेक्ष वृद्धि को आधार जनसंख्या से भाग देकर भागफल को 100 से गुणा करें। वृद्धि दर प्रतिशत (प्रति दशक) के रूप में होगी। देखें सारणी 8.3 जिसमें में हर दशक में प्रतिवर्ष वृद्धि दर दी गई है।

सारणी 8.3
शताब्दी के विभिन्न दशकों में जनसंख्या की वृद्धि

(प्रतिशत में)

दशक	*वृद्धि दर*	
	प्रतिदशक	*प्रतिवर्ष*
1901-1911	05.74	00.56
1911-1921	(-) 00.31	(-) 00.03
1921-1931	11.00	01.05
1931-1941	14.22	01.34
1941-1951	13.31	01.26
1951-1961	21.64	01.98
1961-1971	24.80	02.24
1971-1981	24.66	02.23
1981-1991	23.42	02.13
1991-2001	21.77	01.99

स्रोत : सारणी 8.1 पर आधारित।

विशाल और लघु विभाजक

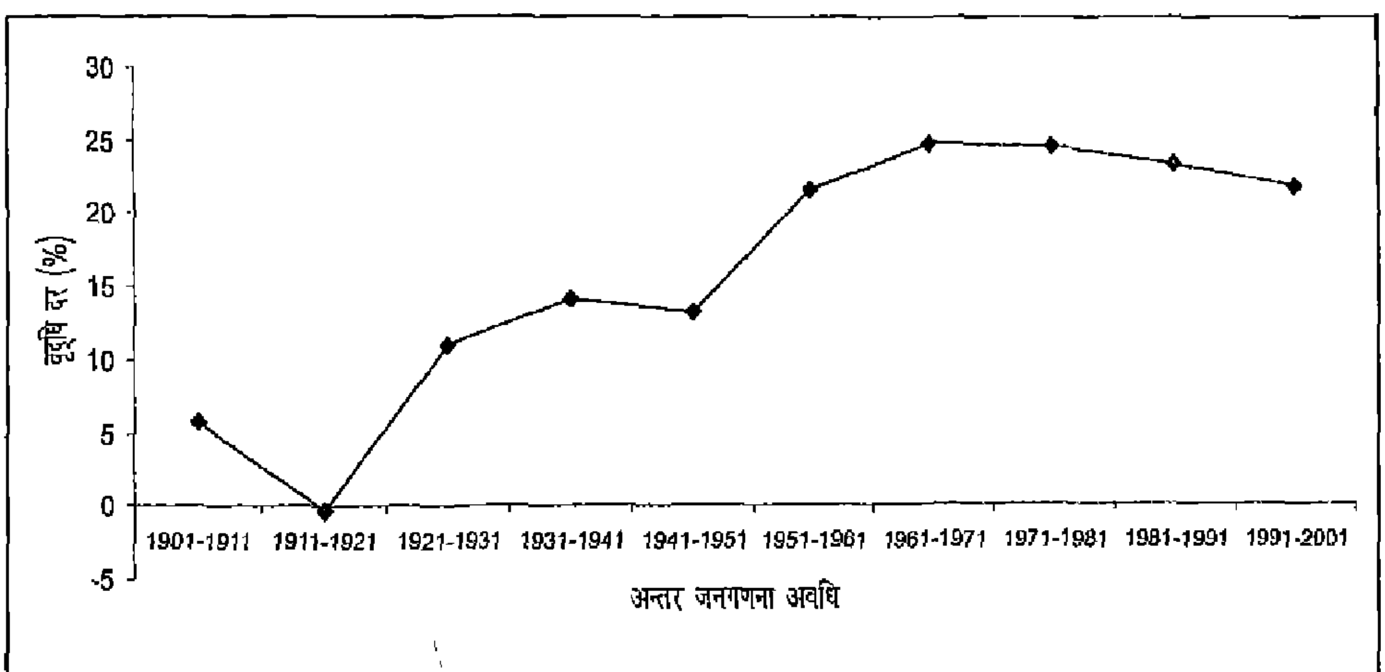
बीस, तीस और चालीस के दशकों में जनसंख्या वृद्धि क्रमशः 11,14, तथा 13 प्रतिशत थी। चालीस के दशक में थोड़ी कमी हुई थी जो विभाजन के बाद लोगों के पाकिस्तान चले जाने तथा विभाजन के दौरान हुई मौतों के कारण हुई थी। अतः **वर्ष 1921** भारतीय जनांकिकी में **विशाल विभाजनिक वर्ष** के रूप में जाना जाता है क्योंकि उसके बाद से जनसंख्या के आकार में उतार-चढ़ाव समाप्त हो गया।

1951 के बाद से जनसंख्या की प्रति दशक वृद्धि दर 20 प्रतिशत के निशान से बढ़ गई। अतः 1951 को लघु विभाजक वर्ष माना जाता था। हालाँकि सबसे अधिक वृद्धि 1971 के दशक में हुई जो 24.8 प्रतिशत थी। परंतु सत्तर के दशक में वृद्धि दर में कोई प्रत्यक्ष कमी नहीं आई। अतः 1981 को एक अन्य प्रवृत्ति के समापन का वर्ष माना जाता है। अस्सी और नब्बे के दशकों के

दौरान वृद्धि दरों में स्पष्ट कमी आई। नब्बे के दशक में वृद्धि-दर पचास के दशक की वृद्धि दर के लगभग बराबर थी (हम यहाँ दस वर्षों की लंबी अवधि पर विचार कर रहे हैं)। निश्चय ही वृद्धि दरों का घटना आरंभ को चुका है। देखें आरेख 8.2।

जनांकिकीय अवस्थाएँ

जैसा चार्ट में दिखाया गया है, जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति के आधार पर, भारत के जनांकिकीय इतिहास को चार अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है। 1941 से 1951 के बीच की गिरावट को एक अपवाद माना जाता है। 1921 के पहले जनसंख्या बढ़ नहीं रही थी बल्कि इसमें उतार-चढ़ाव हो रहा था। अतः 1921 के पहले की अवधि को स्थिरता (या उतार-चढ़ाव) की अवधि माना जाता है। 1901-1921 के दौरान, जनसंख्या में 1.3 करोड़ की वृद्धि हुई जो केवल 5.4 प्रतिशत थी। **विशाल विभाजक वर्ष (1921)** के बीच जनसंख्या में 11 करोड़ की वृद्धि हुई जो 44 प्रतिशत थी। इस अवधि को सतत (नियमित) वृद्धि की अवस्था के रूप में माना जाता है। इस अवधि के प्रत्येक दशक में वृद्धि-दर 10 प्रतिशत से अधिक और 15 प्रतिशत से कम रही। उसके बाद मात्रात्मक उछाल आया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पाँचों दशकों में दशकवार वृद्धि दर 20 प्रतिशत से अधिक रही परंतु पहले



आरेख 8.2 : जनसंख्या में दशकवार कमी

यह तीव्र गति से बढ़ी फिर धीमी गति से। शोधकर्त्ता 1981 को दूसरा **लघु विभाजक वर्ष** मानते हैं। वे 1951-81 जिसमें जनसंख्या 34 करोड़ या 89 प्रतिशत बढ़ी अवधि को तीव्र वृद्धि की अवधि कहते हैं। इसको हम उच्च एवं त्वरित वृद्धि की अवस्था भी कह सकते हैं। इसके विपरीत 1981 के बाद की अवधि को ऊँची परंतु धीमी वृद्धि की अवधि कह सकते हैं। 1981-2001 के बीच जनसंख्या में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

वार्षिक वृद्धि दरें

कुछ लोग 'प्रतिशत प्रतिवर्ष' के रूप में वृद्धि दर को मापने में विश्वास करते हैं। चूँकि दो ही संख्याएँ उपलब्ध हैं– आरंभिक तथा अंतिम। अतः प्रतिवर्ष वृद्धि दर के परिकलन के लिए चक्रवृद्धि ब्याज के सूत्र का प्रयोग किया जाना चाहिए। देखें सारणी 8.3 । एक प्रतिशत प्रतिवर्ष से कुछ अधिक से आरंभ कर, पचास के दशक में वृद्धि दर बढ़कर दो प्रतिशत प्रतिवर्ष तथा साठ और सत्तर के दशकों में 2.25 प्रतिशत प्रतिवर्ष तक पहुँच गई। अस्सी के दशक में यह 2.13 प्रतिशत प्रतिवर्ष से घटकर नब्बे के दशक में 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गई।

हमारी वृद्धि दरें यूरोप में आजतक की उच्चतम वृद्धि दर की तुलना में दुगुनी तथा कई विकासोन्मुख देशों की उच्च्तम वृद्धि दरों की तुलना में दो-तिहाई या तीन-चौथाई है। हमारी वृद्धि दरें काफी ऊँची मानी जाती हैं। अतः वृद्धि दर को कम करने के प्रयास में कोई समझौता करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

ऊँची वृद्धि के मूलभूत कारक

जनसंख्या की वृद्धि चार मूलभूत कारकों पर निर्भर करती है – जन्म, मृत्यु तथा अप्रवसन (in migration तथा out migration) । हमारे देश की तरह बड़े देश के लिए, प्रवसन अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है (छोटे तथा सीमावर्त्ती राज्यों के लिए हम इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते) । अतः दो मुख्य कारक हैं जो वृद्धि के लिए उत्तरदायी हैं। जन्म का धनात्मक तथा मृत्यु का ऋणात्मक योगदान। अतः सामान्यतः वृद्धि दर को जन्म-दर और मृत्यु-दर के अंतर के रूप में वर्णित करते हैं। वृद्धि-दर को बहुधा प्राकृतिक वृद्धि या प्राकृतिक बढ़ोत्तरी कहते हैं क्योंकि जन्म तथा मृत्यु को प्रवसन की तुलना में प्राकृतिक तथ्य मानते हैं तथा प्रवसन को सामाजिक या आर्थिक। ये सभी दरें जनगणनाकारों के द्वारा प्रति सैंकड़े (प्रतिशत) के रूप में नहीं बल्कि प्रति हजार के रूप में वर्णित की जाती हैं। पहले जनगणना के आँकड़ों के आधार पर **जन्म-दर** तथा **मृत्यु-दर** का परिकलन किया जाता था। अब इसके स्थान पर सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम द्वारा एकत्र किए गए आँकड़ों का प्रयोग किया जाता है। सारणी 8.4 में, बीसवीं सदी के पहले सात दशकों तथा दशक के अंतराल के वर्षों में जन्म और मृत्यु-दर की सूचनाएँ दी जा रही हैं जो जनगणना तथा सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम पर आधारित हैं। आरेख 8.4 भी देखें।

जन्म व मृत्यु-दरों की प्रवृत्ति

1911 तथा 1921 की जनगणनाओं के अनुसार, मृत्यु-दर तथा जन्म-दर लगभग बराबर थे। प्राकृतिक वृद्धि दर 0.09 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी। यह दशक ऐसा था जब जनसंख्या में सचमुच कमी आई थी। जन्म-दर और मृत्यु-दर दोनों में कमी आई थी। हालाँकि कमियों का अंतर यह निर्धारित करेगा कि वृद्धि दर में वृद्धि हुई थी या कमी। जन्म-दर की कमी की तुलना में मृत्य-दर में कमी सामान्यतः

सारणी 8.4
जन्म-दर, मृत्यु-दर और प्राकृतिक वृद्धि दर

(प्रति हजार)

दशक	जन्म-दर	मृत्यु-दर	प्राकृतिक वृद्धि दर	वर्ष	जन्म-दर	मृत्यु-दर	प्राकृतिक वृद्धि दर
1901-1911	49.2	42.6	6.6	1971	36.9	14.9	22.0
1911-1921	48.1	47.2	0.9	1976	34.4	15.0	19.4
1921-1931	46.4	36.3	10.1	1981	33.9	12.5	21.4
1931-1941	45.2	31.2	14.0	1986	32.6	11.1	21.5
1941-1951	39.9	27.4	12.5	1991	29.5	9.8	19.7
1951-1961	41.7	22.8	18.9	1996	27.5	9.0	18.5
1961-1971	41.7	18.9	22.2	1998	26.5	9.0	

स्रोत : भारत के जन्म और मृत्यु-दरों का सारांश, 1971-1997, सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम, रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इण्डिया, 1999 तथा इण्डिया ईयर बुक मैनपावर प्रोफाइल, जन साधन अनुसंधान संस्थान, 2001।

अधिक थी, परिणामस्वरूप वृद्धि दर बढ़ी। हालाँकि तीस तथा चालीस के दशकों के बीच विभाजन के दौरान हुई मौतों के बावजूद जन्म-दर में कमी मृत्यु-दर में कमी की तुलना में अधिक थी। परंतु, सामान्य प्रवृत्ति वृद्धि दर के बढ़ने की ही थी जो मृत्यु-दर में आई भारी कमी के कारण थी। अतः **वृद्धि दर के तेजी से बढ़ने का कारण जन्म-दर का बढ़ना नहीं है बल्कि मृत्यु-दर का घटना है।** जन्म-दर, मृत्यु-दर तथा वृद्धि दर के लिए आरेख 8.3 देखें।

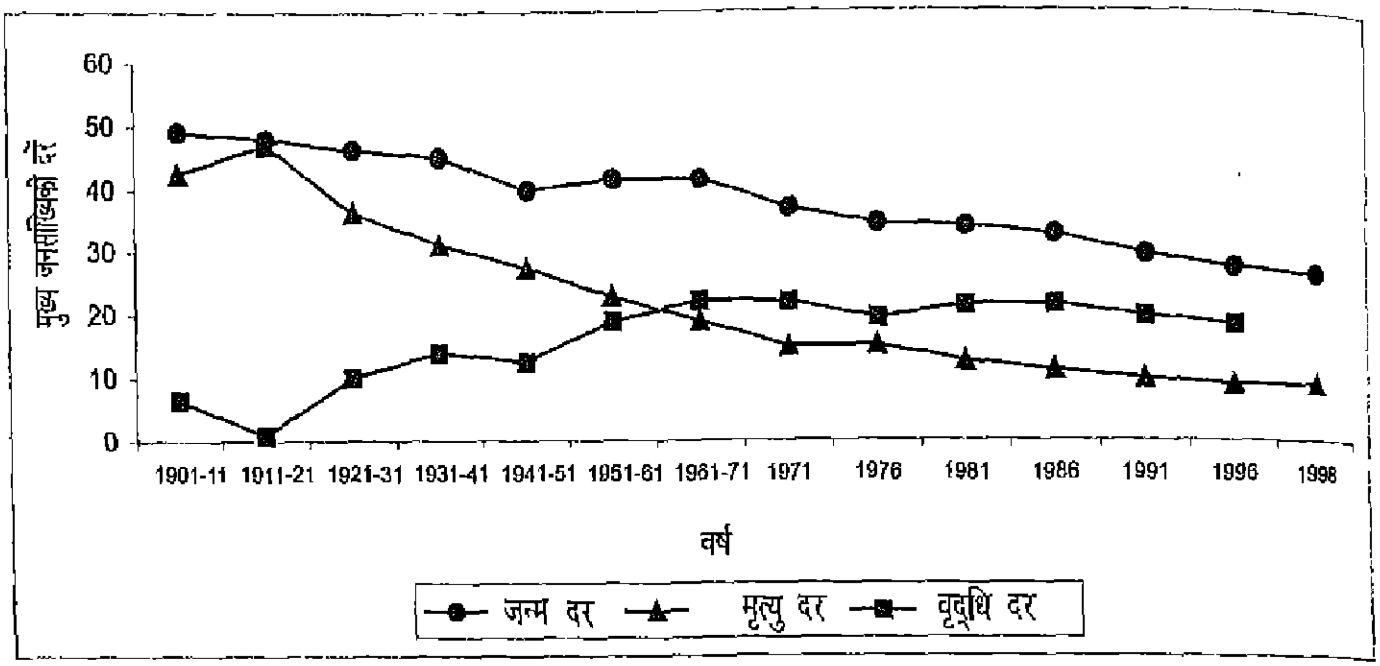
इस आरेख से यह पता चलता है कि यद्यपि मृत्यु-दर में कमी जन्म-दरों में कमी की तुलना में तीव्र थी। लेकिन जन्म-दर में भी कमी हो रही थी। चूँकि मृत्यु-दर कम होती हुई एक पठार जैसी स्थिति में पहुँच गयी है, अतः जन्म-दर को ही कम करने की आशा की जा सकती है।

जनांकिकीय संक्रमण

पश्चिमी देशों के जनांकिकीय इतिहास के आधार पर ऐसा कहा जाता है कि संक्रमण के आरंभ में जन्म-दर तथा मृत्यु-दर दोनों अधिक थे जिससे जनसंख्या वृद्धि दर कम रही या बढ़ती-घटती रही। विकास के साथ, पहले मृत्यु-दर में कमी होती है और जन्म-दर में कोई अंतर नहीं होता, जिसके कारण वृद्धि दर बढ़ती है। अगले चरण में, जन्म-दर तथा मृत्यु-दर दोनों समांतर रूप से कम होते हैं, वृद्धि-दर को ऊँची किंतु स्थिर रखते हुए। अगले चरण में, जहाँ मृत्यु-दर में कमी तथा गतिहीनता आती है, वहीं जन्म-दर में कमी होती है। इस चरण में, वृद्धि दर कम होती है। अंततः जन्म-दर भी कम और स्थिर हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप वृद्धि दर कम हो जाती है। यहाँ हम जनांकिकीय परिवर्तन के तीसरे चरण में हैं। हम देख सकते हैं कि संक्रमण के बाद जीवन-प्रत्याशा बढ़ी है जबकि संक्रमण के पहले यह कम है।

जीवन और मृत्यु का विषय

यदि हमारी जन्म-दरें कम होतीं तो यह कहा जा सकता था कि वृद्धि कम हो सकती थी।



आरेख 8.3 : जन्म, मृत्यु तथा वृद्धि दरों की प्रवृत्तियाँ

यदि जन्म-दर, मृत्यु-दर की तुलना में तेजी से कम होती, तो वृद्धि दर में वास्तविक कमी हो सकती थी। परंतु ऐसा नहीं हुआ। जनांकिकीय परिवर्तन का सिद्धांत यह बताता है कि जन्म-दर में कमी हमेशा मृत्यु-दर में कमी के बाद आती है।

सत्तर वर्षों में, 1971 तक जन्म-दर में 7.5 प्रति हजार अंक की कमी की तुलना में 1971 के बाद से 10 प्रति हजार अंक की कमी उल्लेखनीय है। सत्तर वर्षों में 1971 तक मृत्यु-दर में 25 हजार अंक की कमी की तुलना में 1971 के बाद से 6 प्रति हजार अंक की कमी काफी कम है। हालाँकि, हमें यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि एक सीमा तक पहुँचने के बाद से इन दरों में और कमी नहीं होती। ये दरें, विशेषकर मृत्यु दरें अब अपनी सीमा तक पहुँच रही हैं।

मनुष्य सदा अधिक से अधिक लंबा जीवन जीने का इच्छुक रहा है। हमें जितना संभव हो सके उतने लोगों को मृत्यु से बचाना है। हम ऐसा कर भी रहे हैं। किसी को जन्म लेने से तो रोका जा सकता है, पर एक बार जन्म लेने के बाद उसे मौत से बचाना पुण्य-कार्य तथा शिशु-हत्या को, यदि यह किया जाता है, जघन्य अपराध माना जाता है।

कुल प्रजनन दर, जो सामान्यरूप से प्रति स्त्री जन्म की संख्या है, 8 से घटकर 3 हो गई है, फिर भी जन्म-दर में वृद्धि हुई है, क्योंकि मृत्यु दरों में कमी के कारण स्त्रियों (तथा पुरुषों) की संख्या बढ़ गई है। यदि प्रत्येक दम्पति अपने को प्रतिस्थापित भी करना आरंभ करें तो संख्या के रूप में लगभग सत्तर वर्षों में जनसंख्या में स्थिरता आ पाएगी क्योंकि औसत रूप से एक दम्पति सत्तर वर्षों तक जीवित रहता है।

आजकल माँ-बाप द्वारा अपने बच्चों की संख्या कम रखने का कारण शिशु मृत्यु-दर में कमी है। मृत्यु-दर में कमी का प्रमुख कारण भी शिशु मृत्यु-दर में कमी है। इससे जन्म-दर में और अधिक कमी आने की संभावना है। मृत्यु-दर निम्नतम के निकट पहुँच चुका है। संसार भर में निम्नतम मृत्यु-दर 7 प्रति हजार है। मृत्यु-दर में इससे अधिक कमी कठिन है क्योंकि यदि जन्म-दर कम हो रही है तो अधिकांश जनसंख्या वृद्ध हो रही है। जन्म-दर में कमी के कारण आर्थिक स्थितियों तथा शिक्षा के प्रसार में सुधार आता है। अर्थव्यवस्था की विविधता और स्त्रियों की जीविका की रूपरेखा जन्म-दर में कमी को और कम करने में योगदान देती है।

जनसंख्या का संघटन

लिंग-अनुपात

किसी भी सुव्यवस्थित जनसंख्या में दोनों लिंगों का होना अनिवार्य है। इनकी संख्या में संतुलन होना चाहिए। ऐसा पाया गया है कि प्रकृति बालिकाओं की तुलना में अधिक बालकों को जन्म देती है। साथ ही प्रकृति ने स्त्रियों को अधिक मजबूत बनाया है। अतः यदि समाज में किसी तरह का पक्षपात न किया जाए तो इन दोनों संख्याओं में संतुलन बना रहना चाहिए। दोनों में से किसी एक का भी बहुत अधिक या बहुत कम होना अच्छा नहीं क्योंकि ये दोनों कई प्रकार से एक-दूसरे के पूरक हैं। संसार में कुछ देश ऐसे हैं जैसे रूसी राष्ट्र संघ (1140), जापान (1041), संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (1029) तथा इण्डोनेशिया (1004), जहाँ लिंग-अनुपात स्त्रियों के पक्ष में है तथा कई अन्य देश हैं जहाँ ये पुरुषों के पक्ष में हैं। हमारे देश में भी ऐसी ही स्थिति है।

भारत में, सामान्यतः लिंग-अनुपात को प्रति हजार पुरुषों में महिलाओं की संख्या के रूप में परिभाषित करते हैं। बीसवीं सदी में लिंग-अनुपात पूरे देश के लिए महिलाओं के पक्ष में नहीं रहा। सदी के आरंभ में यह 972 थी जो 1991 में घटकर 927 हो गई, यद्यपि थोड़े-बहुत अपवाद थे। इस परिप्रेक्ष्य में 2001 में 933 का लिंग-अनुपात एक महत्त्वपूर्ण सुधार माना जाता है। साठ के दौरान लिंग-अनुपात में सबसे अधिक कमी आई थी।

ध्यान दें कि शताब्दी के आरंभ में कई राज्यों में लिंग अनुपात 1000 से अधिक था। उदाहरण के लिए, जहाँ बिहार में लिंग-अनुपात 1061 तथा तमिलनाडु में 1044 था, वहीं केरल में यह केवल 1004 था। शताब्दी के अंत में जहाँ केरल में यह बढ़कर 1058 हो गया, वहीं बिहार और तमिलनाडु में घटकर 921 तथा 986 हो गया। पंजाब और हरियाणा में भी लिंग-अनुपात अच्छा नहीं था।

सारणी 8.5
भारत में बीसवीं सदी में लिंग-अनुपात

(प्रति हजार पुरुषों में महिलाओं की संख्या)

वर्ष	1901	1911	9121	1931	1941	1951	1961	1971	1981	1991	2001
लिंग-अनुपात	972	964	955	950	945	946	941	930	934	927	933

स्रोत : भारत की जनगणना 2001 श्रृंखला 1 भारतः अनंतिम जनसंख्या योग 2001 का पेपर 1, रजिस्ट्रार जनरल और सेन्सस कमिश्नर, भारत।

परंतु महत्त्वपूर्ण यह है कि 0-6 वर्ष के आयु-वर्ग के लिए लिंग-अनुपात 1991 में 945 से घटकर 2001 में 927 हो गया। पंजाब में लिंग-अनुपात 1991 में 875 से घटकर 2001 में 793 हो गया तथा हरियाणा में उसी अवधि में 879 से घटकर 820। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि लड़कियों की उपेक्षा सभी जगह समान रूप से हो रही है।

आयु संरचना

क्या हमारे यहाँ मैदानों में खेलते हुए बच्चों की संख्या अधिक है या पार्क में छड़ी लेकर टहलते हुए वृद्धों की या खेतों और फैक्टरियों के काम करते हुए वयस्कों की? 2001 की जनगणना के आयु संरचना के आँकड़े अभी उपलब्ध नहीं हैं। उपर्युक्त तीनों वर्गों अर्थात् बच्चों (0-14), वयस्क (15-60) तथा वृद्ध (60+) के लिए चुने हुए वर्षों के आँकड़े नीचे सारणी 8.6 में दिए जा रहे हैं। देखा जा सकता है कि बच्चों का अनुपात, जो धीरे-धीरे बढ़ता हुआ 1971 में 41% से ऊपर हो गया था फिर से घटने लगा और 1991 में न्यूनतम हो गया। वृद्धों की संख्या बढ़ती गई और इसके अनुपात में छः गुनी वृद्धि हुई। यदि बच्चों के अनुपात की वृद्धि U-अक्षर के आकार के विपरीत है तो वृद्धों के अनुपात में वृद्धि U-अक्षर के आकार के समान है।

अतः यह स्पष्ट है कि सत्तर के दशक तक जन्म दर ऊँची रही परंतु मृत्यु दरों में गिरावट बहुत पहले से शुरू हो गई थी। बच्चों के अनुपात में कमी भी घटते हुए जन्म दर पर प्रकाश डालती है। वृद्धों के बढ़ते हुए अनुपात के कारण कई समस्याएँ पैदा हो सकती हैं।

विकास पर प्रभाव

परस्पर विरोधी तर्क

कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि जनसंख्या समस्या नहीं है। आप उनके पक्ष में तर्क दे सकते हैं कि माल्थस के आगाह करने के बाद, पिछली दो शताब्दियों में विश्व की जनसंख्या जो एक सौ करोड़ से भी कम थी, बढ़कर छः सौ करोड़ हो गई है जो छः गुने से भी अधिक है। फिर भी, अधिकांश देशों में अधिकांश लोग पहले की तुलना में तीन गुनी लंबी आयु और दोगुना बेहतर जीवन जी रहे हैं।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो यह तर्क दे रहे हैं कि जनसंख्या ही एकमात्र समस्या है। बहुतों की तरह आप तर्क दे सकते हैं कि गरीबी, कुपोषण, अस्वस्थता, पर्यावरण, प्रदूषण तथा अपराध आदि सामाजिक समस्याएँ जनसंख्या के बढ़ने के कारण ही उत्पन्न हो रही हैं। कुछ लोग जनसंख्या-बम तथा जनसंख्या-विस्फोट जैसे शब्दों का

सारणी 8.6

आयु वर्गों के अनुसार चुने हुए वर्षों के लिए आयु संरचना

(प्रतिशत)

वर्ग	*आयु वर्ग*	*1911*	*1921*	*1931*	*1961*	*1971*	*1981*	*1991*
बच्चे	0-14	38.8	39.2	38.3	41.0	41.4	39.7	36.5
वयस्क	15-60	60.2	59.6	60.2	53.3	53.4	54.1	57.1
वृद्ध	60+	1.0	1.2	1.5	5.7	5.2	6.2	6.4

स्रोत : *इण्डिया ईयरबुक प्रोफाइल, जन साधन अनुसंधान संस्थान, 2001।*

प्रयोग कर रहे हैं। हाँ, ऐसी भविष्यवाणियाँ अवश्य हैं कि अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि खाद्य एवं पर्यावरण संबंधी घोर विपत्तियों का कारण हो सकती है।

जनांकिकीय निवेश

ऐसा मान लेना अधिक संतुलित दृष्टिकोण होगा कि जन्म दर में गिरावट के द्वारा वृद्धि की गति को कम रखना **अ-जनांकिकीय निवेश** का एक बेहतर उद्देश्य प्रदान करेगा।

मृत्यु हर आयु में होती है, यद्यपि बाल्यावस्था या वृद्धावस्था में इसका प्रकोप अधिक होता है। यदि जन्म दर अधिक होगी तो बच्चों की संख्या अधिक होगी। शिशु मृत्यु दर में कमी होने पर, जो सदा हमारा उद्देश्य रहा है, अधिक-से-अधिक बच्चे जीवित रहेंगे। बच्चों की संख्या जितनी अधिक होगी, उतने ही अधिक स्कूलों और स्वास्थ्य-सुविधाओं की आवश्यकता होगी। इसे **जनांकिकीय निवेश** कहते हैं। जनांकिकीय निवेश जितना अधिक होगा, विकास-संबंधी निवेश उतना ही कम होगा। यदि अधिक बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य-संबंधी सुविधाएं उपलब्ध कराने में अधिक व्यय करना पड़ा तो शिक्षा और स्वास्थ्य में सुधार संबंधी कार्यों पर व्यय स्वतः कम हो जाएगा।

निर्भरता का बोझ

निर्भरता के बोझ के संबंध में भी यही बातें सही हैं। बच्चे बचपन में शुद्ध और सीधे उपभोक्ता होते हैं, इसलिए समाज के लिए बोझ होते हैं। उपभोग का बोझ जितना अधिक होगा, बचत और पूँजी निर्माण की संभावना उतनी ही अधिक होगी। अतः पूँजी की गहराई कम हो पाएगी।

इस तर्क के अनुसार, बच्चों पर किया गया व्यय मानव पूँजी निर्माण पर निवेश नहीं माना गया है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि जनसंख्या वृद्धि के साथ श्रम बल में भी वृद्धि होती है तथा अधिक श्रमबल को साधनों और उपकरणों के रूप में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। इस प्रकार नई तकनीकों में निवेश के लिए कम पूँजी बच जाती है जिससे प्रति श्रमिक उत्पादन बढ़ाने में मदद मिलती है।

कुछ लोग निम्नलिखित तर्क देते हैं :

(i) जनसंख्या की तेज वृद्धि के कारण पड़ने वाला दबाव हरित क्रांति के पीछे एक मुख्य प्रेरणा था।

(ii) अल्पवयस्क जनसंख्या परिवर्तन को स्वीकारती है, नए विचारों को अपनाती है, संसाधनों को अल्प उत्पादक क्षेत्रों से हटाकर अधिक उत्पादक क्षेत्रों में ले जाने की इच्छुक होता है।

(iii) जनसंख्या बढ़ने से निर्णयकर्त्ताओं की संख्या में वृद्धि होती है, बाजार का विस्तार होता है तथा कमियों (जो माँग बढ़ने से उत्पन्न होती हैं) के द्वारा विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि विकसित देश अपनी जनसंख्या में वृद्धि की इच्छा क्यों कर रहे हैं, कुछ अन्य प्रवसन को क्यों प्रोत्साहित कर रहे हैं और कुछ विकासशील देश ऐसा क्यों मानते हैं कि जनसंख्या की वृद्धि विकास को कम कर देगी। **एक अधिक संयत विचार यह होगा कि स्थिर जनसंख्या में थोड़ी वृद्धि आवश्यक है तथा तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या को कम करने की आवश्यकता है।**

वृद्धि की तीव्र दर को रोकने के उपाय

विश्लेषण

हाल में भारत में हुए सर्वेक्षणों से पता चलता है कि निम्नलिखित तीन कारणों से प्रजनन दरें ऊँची रहती हैं :

(i) इसे ऊँची रखने में प्रजनन आयु-वर्ग की महिलाओं के अधिक अनुपात के कारण प्रजनन दरों में 60 प्रतिशत वृद्धि होती है।

(ii) गर्भनिरोधकों का आवश्यकता से कम मात्रा में उपलब्ध होने के कारण प्रजनन दरों में 20 प्रतिशत की वृद्धि होती है।

(iii) शिशु मृत्यु दर के ऊँचे होने के कारण अपनी इच्छा से प्रजनन दरें अधिक रखने के कारण प्रजनन दरों में 20 प्रतिशत की वृद्धि।

हम महिलाओं की संख्या तो कम नहीं कर सकते और न ही कम करना चाहिए परंतु हम उनके विवाह की आयु को बढ़ाकर उनकी प्रजनन अवधि को नियंत्रित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त दो अन्य उपाय भी हैं। पहला, विवाहित दम्पतियों को उचित कीमतों पर गर्भनिरोधक साधन उपलब्ध कराना तथा दूसरा, शिशु मृत्यु दर को और कम करना ताकि लोग अपने परिवार के आकार अपनी इच्छानुसार रख सकें। यदि शिशु मृत्यु दर कम हो जाए तो अगली पीढ़ी तक यह संख्या और भी कम हो सकती है।

प्रचलित मत यह भी है कि एक पुत्र की आशा में कुछ दम्पति कई पुत्रियों को जन्म दे देते हैं और कई बार बालिकाओं की हत्या शैशव में या भ्रूण में ही कर दी जाती है। अधिक बालिकाओं को जन्म देना अन्य विकल्पों से बेहतर है। पुत्र की कामना-मात्र ही हमारे समाज में 12 प्रतिशत अधिक जन्म दर के लिए उत्तरदायी है। इसके लिए लोगों को लैंगिक समानता के संबंध में शिक्षित किया जा रहा है।

प्रजनन क्षमता में कमी के कारण

वृद्धि की दर में कमी जन्म दर में कमी पर निर्भर है। जन्म दर आयु विशेष जन्म (प्रजनन) दरों तथा आयु-विशेष में महिलाओं की संख्या पर निर्भर करती है। हम महिलाओं की संख्या को तो कम नहीं कर सकते बल्कि जैसे-जैसे जीवन-प्रत्याशा में सुधार होता है, महिलाओं की संख्या बढ़ती जाती है। अतः आयु विशेष प्रजनन दर को ही धीरे-धीरे कम करने की आवश्यकता है। जन्म-दर के धीरे-धीरे कम होने का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि प्रजनन आयु वर्ग में विवाहित महिलाओं की संख्या बहुत अधिक है। आइए देखें, वस्तु-स्थिति क्या है? पाँच-पाँच वर्षों के आयु-वर्गों के लिए आयु-विशेष प्रजनन क्षमता के अनुसार प्रजनन आयु की जानकारी के लिए सारणी 8.7 देखें। आँकड़े सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम (SRS) पर आधारित हैं इसलिए केवल 1971 से हैं।

सबसे पहले हमें ध्यान देना चाहिए कि पिछले तीन दशकों में कुल प्रजनन दर 5.2 से घटकर 3.2 हो गई है अर्थात् इसमें 40 प्रतिशत की कमी आई है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि बहुत कम और बहुत अधिक आयु वर्गों के प्रजनन दरों में भी काफी कमी आई है। अन्य वर्गों में प्रजनन दरें भी कम हुई हैं। आयु-विशेष प्रजनन में कमी बहुत अधिक तो नहीं फिर भी महत्त्वपूर्ण कमी हुई है। सबसे अधिक गर्भाधान 20-24, 25-29 तथा 30-34 आयु वर्गों में होता है। जन्म लेने वाले शिशु पहले या दूसरे शिशु हो सकते हैं। यद्यपि 30-34 के आयु वर्ग के प्रजनन दर में महत्त्वपूर्ण कमी हुई है यदि महिलाओं का विवाह अधिक आयु में किया

सारणी 8.7

प्रजनन अवधि (प्रति हजार) के अनुसार आयु वर्गों में आयु-विशेष प्रजनन क्षमता

आयु-वर्ग	*1971*	*1981*	*1991*	*1998*
15-19	100.8	90.4	76.1	54.0
20-24	250.8	246.9	234.0	220.3
25-29	254.8	232.1	191.3	182.8
30-34	202.2	167.7	117.0	104.2
35-39	137.8	102.5	66.8	54.3
40-44	62.2	44.0	30.6	25.0
45-49	24.2	19.6	12.1	9.0
टी.एफ.आर*	5.2	4.5	3.6	3.2

टी.एफ.आर – कुल प्रजनन दर।*

टिप्पणी : *1971 में बिहार और पश्चिम बंगाल शामिल नहीं हैं। 1991 और 1998 में जम्मू कश्मीर भी शामिल नहीं है।*

स्रोत : *रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इण्डिया, 1999 तथा जन साधन अनुसंधान संस्थान 2001।*

जाए तो गर्भ निरोधकों की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होती। इससे अधिक संख्या में बच्चे पैदा होने की संभावना कम रहती है।

इसी प्रकार हम यह भी देखते हैं कि शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों व पुरुषों के विवाह की औसत आयु बढ़ रही है तथा कम आयु-वर्ग में विवाहितों के अनुपात में महत्त्वपूर्ण कमी आई है।

प्रजनन दरों को और कम करने के सामान्य निर्देशक सिद्धांत

महिलाएँ 15 वर्ष से लेकर 45/49 वर्ष की आयु की अवधि में प्रजनन करती हैं। विवाह लगभग 20 वर्ष की आयु तक टालने से ऐसे बच्चों के जन्म की संख्या में कुछ कमी आएगी जो बहुत स्वस्थ नहीं होते। 20 से 35 वर्ष के बीच सबसे प्रजनन-अवधि है, परंतु व्यक्तिगत एवं सामाजिक कारणों से विवाह का 20-29 वर्ष की आयु के बीच हो जाना आवश्यक है। अतः इस आयु-वर्ग के दम्पति यह समझ सकें कि उन्हें कम बच्चे पैदा करने चाहिए तथा गर्भ-निरोध के लिए कृत्रिम साधन आदि उपलब्ध हैं। जैसे-जैसे पति-पत्नी, विशेषकर पत्नियाँ, अधिक शिक्षित होती हैं तथा कृषि के अतिरिक्त अन्य नौकरियाँ करती हैं और शिशु-मृत्यु दरों में होने वाली कमियों की जानकारी रखने लगती हैं तो ऐसी संभावना होती है कि वे कम बच्चे पैदा करें।

जो पति-पत्नी आर्थिक आधार पर अधिक बच्चे पैदा करने के इच्छुक हों तो उन्हें शिक्षित करने के लिए कार्यक्रम होने चाहिए कि यह उनके हित में नहीं है। साथ ही उन्हें यह भी बताना चाहिए कि इससे उनके जीवन-स्तर में सुधार आने की भी संभावना है– उनके बेहतर जीवन की आशा की एक किरण।

सरकार द्वारा बनाई गई कई योजनाओं ने जन्म दर तथा कुल प्रजनन दर में कमी के साथ

जीवन स्तर में सामान्य सुधार और मृत्यु दर में विशेषकर शिशु मृत्यु दर में कमी लाने में योगदान दिया है।

विशिष्ट उपाय

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार को ऐसा सुझाव दिया गया कि एक जनसंख्या-नीति बनाई जानी चाहिए तथा एक जनसंख्या-आयोग (कमीशन) की स्थापना होनी चाहिए। अभी हमने आधा रास्ता ही तय किया है। परिवार-नियोजन कार्यक्रम बने जो आगे चलकर परिवार-कल्याण कार्यक्रम में परिवर्तित हो गए। हमारे देश में जनसंख्या के लिए एक राष्ट्रीय आयोग (कमीशन) भी है।

जनसंख्या वृद्धि की धीमी गति के बावजूद यह महत्त्वपूर्ण है कि हमने एक सर्वांगीण नीति अपनाई है न कि केवल जनसंख्या नियंत्रण। माता और शिशु का स्वास्थ्य सदा हमारे कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण अंग रहा है, यद्यपि इससे जनसंख्या बढ़ने का खतरा रहता है। हमने एक समन्वित पद्धति अपनाई है तथा हमारा विश्वास अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने पर अधिक रहा है। अतः परिवार कल्याण के मुख्य उद्देश्य अभी भी निम्नलिखित रहे हैं :

(i) पति-पत्नियों द्वारा परिवार नियोजन की विधियों को अपनाया जाना (गर्भ निरोधक तरीकों द्वारा) ।

(ii) मीडिया, स्वास्थ्य कर्मचारी/परिवार कल्याण कर्मचारी आदि द्वारा गर्भनिरोध की जानकारी देना।

(iii) प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों तथा स्वास्थ्य उप-केंद्रों व डिस्पेंसरियों के द्वारा गर्भनिरोधकों की आपूर्ति करना।

(iv) वैसेक्टोमी और ट्यूबेक्टोमी जैसी अंतिम विधियों को प्रचलित करना, तथा

(v) शिशु मृत्यु-दर में कमी और माताओं के स्वास्थ्य में सुधार लाना।

श्रीमती इंदिरा गाँधी ने एक बार कहा था कि विकास सर्वोत्तम गर्भनिरोधक है। हम देखते हैं कि विकास के साथ जन्म-दर, मृत्यु-दर तथा वृद्धि-दर में महत्त्वपूर्ण कमी दृष्टिगोचर है। सरकार मृत्यु दर को विशेषकर शिशु मृत्यु-दर को कम करने का काफी प्रयास कर रही है। लोगों ने भी परिवार नियोजन की विधियों को स्वयं अपनाना आरंभ कर दिया है।

निष्कर्ष

बीसवीं शताब्दी की जनगणना के उपलब्ध आँकड़ों से हमने जनसंख्या की वृद्धि की प्रवृत्ति को जानने का प्रयत्न किया तथा जनसंख्या की सतत बढ़ती हुई निरपेक्ष संख्या का अध्ययन किया। इस अध्ययन से हमें पता चलता है कि वृद्धि-दर ने अधिकतम सीमा का अतिक्रमण सत्तर के दशक में ही कर लिया था। हमने वृद्धि की प्रवृत्ति का विश्लेषण किया और इस आधार पर दो विभाजकों और चार अवस्थाओं का वर्णन किया।

वृद्धि दरों को जन्म-दर तथा मृत्यु-दर के रूप में बाँटते हुए हमने पिछली सदी में जन्म तथा मृत्यु-दर के स्वरूप का अध्ययन किया। जनांकिकीय परिवर्तन के सिद्धांत के अनुसार, हमने देखा कि हम एक ऐसी अवस्था में उलझे हुए हैं जहाँ मृत्यु-दर स्थिर हो चुकी है परंतु जन्म-दर में कमी अभी हो ही रही है।

पिछली शताब्दी में आयु तथा लिंग संरचना के बारे में जानकारी भी हमें प्राप्त करनी थी। 1991 की तुलना में 2001 में जहाँ लिंग-अनुपात

में सुधार हुआ है वहीं बच्चों (0-6) के लिंग अनुपात में बहुत गिरावट आई है। जैसा अपेक्षित था, जनसंख्या में बच्चों का अनुपात पहले बढ़ा क्योंकि जन्म-दर ऊँची थी परंतु बाद में जन्म-दर में कमी आने के कारण यह भी कम हो गया। अतः वृद्धों का अनुपात बढ़ रहा है, जो कि कुछ समस्याओं को जन्म दे सकता है।

उसके बाद जनसंख्या के बड़े आकार और इसकी वृद्धि के प्रभावों पर विचार किया। बढ़ती हुई जनसंख्या को समस्या स्वीकारने वाले वैकल्पिक मतों को जानने के बाद हमने जनसंख्या की वृद्धि-दर को नियंत्रित करने के विषय पर सोचा। हमने जनांकिकीय निवेश तथा बढ़ती हुई जनसंख्या की निर्भरता-बोझ के प्रभावों पर भी चर्चा की। हमने यह भी माना कि युवा-वर्ग की संख्या का अधिक होना अच्छा है।

अंत में हमने जनसंख्या की वृद्धि को कम करने पर विचार किया। मृत्यु-दर में अभी और अधिक कमी की संभावना है, इसलिए जन्म-दर को कम करने के उपायों का महत्त्व अधिक हो जाता है। आयु-विशेष की प्रजनन क्षमता के अध्ययन के द्वारा हमने देखा कि प्रजनन दरों में संतोषजनक कमी आई है। विवाह की आयु को कुछ बढ़ाकर प्रजनन दरों को कुछ कम किया जा सकता है। गर्भनिरोधकों की अपूर्ण माँग को पूरा करने में अभी वक्त लगेगा। कुछ दम्पत्तियों को छोटे परिवार के आदर्श को अपनाने के लिए प्रेरित करने की दिशा में शिशु मृत्यु-दर में कमी का महत्त्वपूर्ण योगदान होगा। समन्वित स्वास्थ्य सेवाओं ने संतोषजनक योग दिया है तथा आगे भी लोगों के विश्वास को बढ़ाने में सहयोग देंगी। इस कार्यक्रम में समुदाय को, जितना संभव हो सके उतनी दूर तक, शामिल किया जाना चाहिए। इस क्रम में हम श्रीमती गाँधी द्वारा विकास को सर्वोत्तम औषधि माने जाने के विचार से भी परिचित हुए।

अभ्यास

1. किसी देश की जनसंख्या अधिक है, इसका निर्णय करने का आधार क्या होना चाहिए?
2. पूर्ण अंकों का प्रयोग करते हुए गत सौ वर्षों में भारत की जनंसख्या की वृद्धि की चर्चा कीजिए?
3. भारत में जनसंख्या का क्या परिदृश्य दिखाई देता है?
4. कुछ वर्षों को महान विभाजक तथा कुछ को लघु विभाजक क्यों कहा जाता हैं?
5. भारत में जनसंख्या की वृद्धि के स्तर तथा प्रवृत्ति के आधार पर भारतीय जनसंख्या के चार जनसांख्यिकीय चरणों की विशेषताओं की चर्चा कीजिए?
6. जनांकिकीय संक्रमण के पीछे क्या विचार है, संक्षेप में व्याख्या कीजिए?
7. शताब्दी के अंतर्गत जन्म-दर तथा मृत्यु-दर की तथा जनसंख्या वृद्धि-दर पर इनके प्रभाव की चर्चा कीजिए?
8. क्या आप भारत में जन्म-दर की कमी को प्रशंसनीय मानते हैं?

9. जनसंख्या में अभूतपूर्व वृद्धि का मौलिक कारण क्या रहा है– उच्च जन्म-दर या निम्न मृत्यु-दर या दोनों ही?
10. लिंग-अनुपात की प्रवृत्ति तथा इसके सामाजिक परिणामों की चर्चा कीजिए?
11. शताब्दी के अंतर्गत जनसंख्या में आयु-संरचना के परिवर्तन की व्याख्या कीजिए।
12. वाद-विवाद कीजिए– (i) जनसंख्या एकमात्र समस्या है (ii) जनसंख्या कोई समस्या नहीं है।
13. अर्थव्यवस्था के लिए बढ़ती हुई जनसंख्या का परिणाम जनांकिकीय निवेश है या निर्भरता भार? व्याख्या कीजिए। इसके विपरीत विचारों को भी अभिव्यक्त कीजिए।
14. उच्च प्रजनन-दर को बढ़ाने वाले मुख्य कारक क्या हैं?
15. उच्च जन्म-दर को रोकने के सामान्य सिद्धांत क्या हैं?
16. जनसंख्या की वृद्धि-दर को रोकने के प्रयुक्त मुख्य उपाय क्या हैं?
17. अंतर कीजिए– जन्म नियंत्रण तथा जनसंख्या नियंत्रण, परिवार नियोजन तथा परिवार कल्याण।
18. शिशु मृत्यु-दर में कमी से जनसंख्या में तत्काल वृद्धि होगी परंतु दीर्घकाल में इससे वृद्धि को कम किया जा सकता है, इसलिए इसे उच्च प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। इस विचार पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है।

गतिविधियाँ

अपने इलाके में उन बातों (तर्कों) को नोट (Note) करें जो बड़े परिवार के पक्ष में हैं तथा छोटे परिवार के पक्ष में हैं। इन व्यक्तव्यों का विश्लेषण उन लोगों की सामाजिक-आर्थिक रूपरेखा के आधार पर करें।

अध्याय 9

भारत में गरीबी

परिचय

गरीबी संभवतः हमारे समाज के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। किसी भी समाज में गरीबी का असमानता के साथ घनिष्ठ संबंध है। एक समय ऐसा भी था जब सभी लोग गरीब थे, कच्चे अनाज और माँस खाकर जीवन बिताते थे। लोग अपने लिए काम करते थे। ऐसे समाजों में निजी संपत्ति की अवधारणा नहीं रही होगी और न ही वहाँ के लोगों ने विक्रय या विनिमय के लिए वस्तुओं के उत्पादन किए होंगे। हजारों वर्षों से समाज में निरपेक्ष तथा सापेक्ष गरीबी व्याप्त रही है। समाज में सदा से कुछ लोग ऐसे भी रहे हैं जो गरीबी को दूर करना और असमानता को कम करना चाहते थे। यहाँ पर हम गरीबी और असमानता की वर्तमान स्थिति तथा उन्हें दूर करने के उपायों की चर्चा करेंगे।

हम यहाँ भारत में गरीबी के मापकों और इसके आकलन पर भी विचार करेंगे। अध्याय के अंत में हम भारत सरकार द्वारा गरीबी दूर करने के लिए चलाए गए कुछ विशेष कार्यक्रमों का भी उल्लेख करेंगे।

निरपेक्ष तथा सापेक्ष गरीबी

कुछ समाज निर्धन होते हैं और कुछ धनी। इन दोनों समाजों के बीच स्वाभाविक असमानता होती है। एक ही समाज में भी कुछ लोग गरीब होते हैं और कुछ अमीर। व्यक्तियों की गरीबी या अमीरी सापेक्ष होती है और उसी प्रकार समाजों या राष्ट्रों की। जब हम यह कहते हैं कि कुछ लोग गरीब हैं और कुछ अमीर (या कम-से-कम गरीब तो नहीं) तो हम लोगों को किसी मानदण्ड के मापक (मान लें कि आय) के अनुसार दो वर्गों में बाँट देते हैं। यह विभाजक बिंदु गरीबी-रेखा के रूप में जानी जाती है।

जब हम अपेक्षाकृत गरीब या अमीर की बात करते हैं तो हम जोड़े बनाकर तुलना करते हैं। तुलना के लिए अपनाए गए मानदण्ड के स्केल (अर्थात् आय) के अनुसार व्यक्ति 'क' 'ख' की अपेक्षा गरीब या अमीर या उसके समान गरीब या धनी हो सकता है। इसे सापेक्ष गरीबी या असमानता कह सकते हैं। यह आवश्यक नहीं कि मानदण्ड के मापक पर एक बिंदु या स्तर तय किया जाए। यह दो व्यक्तियों के बीच तुलना है। यदि कुल व्यक्तियों की संख्या n है तो $\frac{n(n-1)}{2}$ जोड़े बन सकते हैं, यदि हम स्वयं अपनी तुलना अपने आप से न करें तो, अन्यथा $\frac{n^2}{2}$ जोड़े बन सकते हैं। किसी दिए गए जोड़े के लोगों की आय के बीच निरपेक्ष अंतर के रूप में प्रत्येक जोड़े की असमानता पर विचार किया जा सकता है। पूरे समाज के लिए असमानता

के स्तर को मापने के लिए इन तुलनाओं को संक्षिप्त करने की आवश्यकता है। **गिनी गुणांक** (Gini Coefficient) ऐसा ही एक मापक है जो शोधकर्त्ताओं के बीच बहुत प्रचलित है।

सभी जोड़ों पर विचार न कर, हम किसी भी स्थिति की तुलना वितरण के किसी प्राचल (मान लें, औसत) से कर सकते हैं। इस प्रकार कुल तुलनाओं की संख्या n है। असमानता के स्तर की माप करने के लिए इन तुलनाओं को (जो माध्य आय से किसी की भी आय का अंतर है) एक संख्या के रूप में संक्षिप्त किया जाना चाहिए। असमानता का एक ऐसा ही मापक है मानक विचलन या माध्य से इसका भागफल।

वितरण के कुछ मूल्यों का चुनाव करने के लिए कुछ प्रयास किए गए हैं। उदाहरण के लिए, परास एक ऐसा ही मापक है। परास की परिभाषा अधिकतम और न्यूनतम मूल्य के रूप में दी जाती है। कुछ लोग परास को माध्य से भाग देना पसंद करते हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि असमानता का संबंध आपस में जोड़े बनाकर की गई तुलना से है। दूसरी ओर, निर्धनता का संबंध किसी स्थायी रेखा से की गई तुलना से है जिसे गरीबी रेखा कहते हैं। आप देख सकते हैं कि जैसे-जैसे वितरण में परिवर्तन होता है, वितरण का प्राचल परिवर्तित होता रहता है। परंतु गरीबी रेखा बाहर से निर्धारित की जाती है, अतः स्थायी होती है।

गरीबी रेखा

गरीबी को सामान्यतः गरीबी रेखा के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया जाता है। परंतु गरीबी रेखा है क्या और कैसे निर्धारित होती है? **गरीबी रेखा वितरण-रेखा का विभाजक बिंदु है जो जनसंख्या को दो भागों में विभाजित करता है, ऐसे लोग जो गरीब हैं तथा ऐसे जो गरीब नहीं हैं।** सरलता के लिए, हम आय के वितरण पर विचार करें। गरीबी रेखा से नीचे के लोग गरीब हैं। तथा गरीबी रेखा से ऊपर के लोग गरीब नहीं हैं। मान लें कि हम प्रतिमाह और प्रतिवर्ष आय के वितरण पर विचार कर रहे हैं। मान लें कि दस व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी आय है 10, 17, 23, 30, 40, 50, 60, 70, 80, 90, इकाइयाँ (रुपये, सौ रुपये, हजार रुपये)। मान लें कि गरीबी-रेखा 50 इकाई है। स्पष्ट है कि पाँच लोग गरीबी-रेखा से नीचे होंगे। दूसरे शब्दों में 50 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं। हम देखेंगे कि गरीबी की इस माप को, गरीबी रेखा से नीचे के लोगों का प्रतिशत, व्यक्ति-गणना-अनुपात (head count ratio) कहते हैं। परंतु हम यह संख्या कैसे निर्धारित करते हैं जिसे गरीबी रेखा कहते हैं? इससे पहले कि हम इस प्रश्न का उत्तर दें, गरीबी रेखा का स्तर बहुत ऊँचा या बहुत नीचा रखने के परिणामों पर विचार कर लें।

ऊँची/नीची गरीबी रेखा

प्रायः लोग यह कहते हैं कि गरीबी बहुत कम है और यह भी कि विशेष गरीबी रेखा हमें यह बताती है कि भारत में 90 प्रतिशत लोग वास्तविक रूप से गरीब हैं। कुछ अन्य लोग भी हैं जो यह कहते हैं कि ये रेखाएँ कुछ विशेष लोगों द्वारा किसी विशेष स्तर पर निर्धारित की जाती हैं जो यह दिखाना चाहते हैं कि लोगों का अधिक अनुपात गरीब है ताकि वे गरीबी निवारण कार्यक्रम बनाते जाएँ और उन्हें कार्यान्वित करते जाएँ और अपने आप को व्यस्त रखें। पहले हम इन बातों का आशय समझ लें।

मान लें कि गरीबी रेखा 100 इकाई है, तो प्रत्येक व्यक्ति गरीब है तथा प्रत्येक व्यक्ति को सहायता की आवश्यकता है। सहायता के लिए संसाधन (रुपये) कहाँ से मिलते हैं? इसके लिए प्रतीक्षा करनी होगी और देखना होगा कि यदि लोग स्वयं गरीबी रेखा से ऊपर आ सकते हैं तो आएँ। स्थिति ऐसी ही होगी यदि गरीबी रेखा के दूसरी ओर बहुत कम लोग होंगे। दूसरी ओर, यदि गरीबी रेखा सिर्फ 5 इकाई है तो हर आदमी गरीबी रेखा से ऊपर होगा तथा गरीबी की कोई समस्या होगी ही नहीं क्योंकि हमने जान-बूझकर गरीबी रेखा के स्तर को बहुत नीचे रखा है।

अतः गरीबी रेखा न तो बहुत ऊँची होनी चाहिए और न ही बहुत नीची। नीति/योजनाओं के कार्यान्वयन की दृष्टि से उचित प्रबंधक राष्ट्र की क्षमता के साथ भी इसका थोड़ा संबंध होना चाहिए जिसे हम प्रतिव्यक्ति आय के रूप में ले सकते हैं।

उपभोग या आय के रूप में गरीबी रेखा

लोग गरीबी की परिभाषा संपत्ति के माध्यम से देते हैं। कई लोगों के अनुसार आय गरीबी का सबसे व्यापक मानदण्ड है। आय को एक बेहतर माप समझा जा सकता है क्योंकि इसे संभावित उपभोग मानते हैं क्योंकि आय से बचत के द्वारा लंबी अवधि में चुनाव के अवसर मिलते हैं। परंतु आय का उतार-चढ़ाव उपभोग की तुलना में अधिक होता है। यदि आय में उतार-चढ़ाव होता है तो उपभोग में अपेक्षाकृत स्थिरता होती है क्योंकि यह बचत के संचय या विसंचय के द्वारा संचालित होती है। आय तथा उपभोग के अंतर को बचत कह सकते हैं। बचत धनात्मक या ऋणात्मक हो सकती है। ऋणात्मक बचत को निर्बचत (dis-saving) भी कहते हैं।

उन देशों में जहाँ आय के वितरण के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं, उपभोग के वितरण के आँकड़ों को आय के वितरण के स्थान पर ले लिया जाता है। भारत एक ऐसा ही देश है। इसका तात्पर्य है कि गरीबी रेखा पर लोग न तो बचतकर्ता माने जाते हैं और न ही निर्बचतकर्त्ता, न ऋणदाता और न ही ऋणी। भारत में हमें एक अन्य कारण से भी उपभोग पर विचार करना चाहिए। इसका कारण है कि हमारे पास राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन (National Sample Survey Organisation) के प्रतिदर्श सर्वेक्षणों द्वारा एकत्र किए गए आँकड़ों की लंबी श्रेणी है।

डॉलर गरीबी रेखा

अंतरराष्ट्रीय संगठन प्रायः संसार भर के लिए कोई भी आकलन करने के लिए \$ 1 या \$ 2 गरीबी रेखा की बात करते हैं। \$ 2 से कम आय वाले लोग गरीब तथा \$ 1 से कम आय वाले लोग बहुत गरीब माने जाते हैं।

विनिमय-दर से परिवर्तित करके यदि डालर के रूप में किसी धनी देश की प्रति व्यक्ति आय 30,000 डालर प्रतिवर्ष है, तब उनके लिए गरीबी रेखा को \$ 350 या \$ 700 मानने में कोई समस्या नहीं होगी।

हम अर्ध-विकसित देशों में प्रायः इसके निहितार्थों को समझे बिना ऐसी गरीबी रेखा की बात करते हैं। यदि हममें से प्रत्येक का \$ 1 प्रति दिन की गरीबी रेखा के स्तर पर रहना पड़ा तो वर्तमान विनिमय दर पर कुल आवश्यक राष्ट्रीय आय 19,00,000 करोड़ रु. होगी जो लगभग कुल राष्ट्रीय आय के बराबर होगी। \$ 2 प्रति दिन गरीबी रेखा के बारे में सोचें, तो आय के पुनर्वितरण के बाद भी हम सभी गरीब ही रहेंगे।

गरीबी रेखा का निर्धारण

गरीबी रेखा तब कैसे निर्धारित होती है? इसके निर्धारण की कई विधियाँ हैं। खाद्य-सामग्रियों का उपभोग सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि खाद्य-सामग्रियाँ जीवन के लिए अनिवार्य हैं। भोजन में अनिवार्य वस्तुओं की निम्नतम मात्राएँ निर्धारित कर लें। इस भोजन की लागत का परिकलन करें। खाद्य-सामग्रियों के इस लागत में अन्य (गैर-खाद्य-सामग्रियों) मदों, जैसे वस्त्र, आवास, बिजली आदि के उपभोग हेतु 50 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी करें क्योंकि हम जानते हैं कि किसी भी सभ्य समाज में लोग सिर्फ भोजन पर ही आश्रित नहीं होते हैं। चिकित्सा के लिए भी कुछ प्रतिशत जोड़ने की आवश्यकता हो सकती है, यदि यह निःशुल्क प्रदान न की जाती हो। यह गरीबी की उपभोग-व्यय रेखा है, जिनमें खाद्य तथा गैर-खाद्य-सामग्रियाँ दोनों ही शामिल हैं।

कुछ लोग ऐसी सलाह देते हैं कि ऐसे परिकलन घेरलू स्तर पर किए जाने चाहिए क्योंकि भोजन परिवार के सभी सदस्यों के लिए बनाया जाता है, यद्यपि इसे सभी लोग अलग-अलग खाते हैं। इसी प्रकार कई अन्य वस्तुओं के उपभोग में भी उनके हिस्से होते हैं। परिवार की गरीबी रेखा को परिवार के आकार से भाग देकर, प्रतिव्यक्ति गरीबी रेखा मिलती है। इसके साथ इसमें बच्चों की शिक्षा पर हुए व्यय को भी जोड़ना पड़ सकता है। कुछ लोग अपव्यय के लिए भी कुछ छूट देना चाहते हैं। अतः इन सभी बातों को जानने के लिए लोगों को शिक्षित करने की आवश्यकता है।

भारत में गरीबी रेखा के निर्धारण की वर्तमान प्रक्रिया

कुछ लोग सरकार द्वारा गरीबी रेखा निर्धारित करने की प्रक्रिया को काफी उलझा हुआ मानते हैं। इसे समझने के लिए धैर्य की आवश्यकता है। हम यहाँ पर वास्तविक विधि का एक अत्यंत सरल स्पष्टीकरण करेंगे। यह पहले ही बताया जा चुका है कि हम आय के स्थान पर निजी उपभोग व्यय का प्रयोग करेंगे, आंशिक रूप से इसलिए कि आय के वितरण के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

दादाभाई नौरोजी तथा गरीबी रेखा

भारत के वयोवृद्ध पुरुष दादाभाई नौरोजी गरीबी रेखा की आवधारणा का प्रयोग करने वाले पहले व्यक्ति थे। उन्होंने उपयुक्त प्रचलित कीमतों के प्रयोग द्वारा एक कैदी के भोजन की कीमत निकाली और उसे 'जेल-निर्वाह व्यय' का नाम दिया।

हालाँकि जेल में केवल वयस्क रहते हैं जबकि समाज में बच्चे भी रहते हैं। उन्होंने निर्वाह व्यय को उपयुक्त ढंग से समायोजित करके गरीबी रेखा निर्धारित की। इस समायोजन के लिए, उन्होंने ऐसा माना कि एक-तिहाई जनसंख्या बच्चों की थी जिसमें से आधे ऐसे थे जिनके उपभोग की मात्रा बहुत कम थी और बाकी आधे वयस्कों के उपभोग की आधी मात्रा का उपभोग करते हैं।

अतः इन तीनों खण्डों के उपभोग के भारित औसत हमें औसत गरीबी रेखा बताते हैं, जो जेल निर्वाह-व्यय का 3/4वाँ भाग होता है। आप नीचे देख सकते हैं कि (3/4) का गुणनखंड कैसे प्राप्त होता है--

$$\left(\frac{1}{6}\right) \text{(शून्य)} + \left(\frac{1}{6}\right) \text{(आधा)} + \left(\frac{2}{3}\right) \text{(कुल)} = \left(\frac{3}{4}\right) \text{(कुल)}$$

प्रक्रिया

सबसे पहले, हम गरीबी को निजी उपभोग व्यय तक सीमित रखते हैं, जो न भोजन पर किया गया उपभोग व्यय है और न ही पूरी तरह आय। इसमें हम सार्वजनिक उपभोग व्यय को भी शामिल नहीं करते। हम यह व्यय खाद्य और अखाद्य-सामग्रियों को खरीदने के लिए करते हैं। कोई भी ऐसा नहीं करता कि खाने की आवश्यकता पूरी होने के बाद ही कपड़े खरीदे या बिजली जलाए। लोग खाद्य व अखाद्य-सामग्रियों को एक ही साथ खरीदते हैं। उदाहरण के लिए बीड़ी का सेवन करने वाले लोग ऐसा तो नहीं करते कि अपेक्षित कैलोरी युक्त भोजन करने के बाद ही बीड़ी खरीदें। अतः हम लोगों को सामान्य लोगों की भाँति अपने व्यय करने के तरीके चुनने की अनुमति देते हैं।

दूसरे, प्रति व्यक्ति पारिवारिक उपभोग के अनुसार वर्गीकृत किए गए लोगों के प्रत्येक समूह के द्वारा उपभोग की गई खाद्य व गैर-खाद्य-सामग्रियों की मात्राओं को सारणियों के रूप में लिखते हैं।

तीसरे, किसी विशेष खाद्य-सामग्री में पाई जाने वाली एक इकाई कैलोरी की मात्रा का प्रयोग करते हुए हम प्रतिव्यक्ति उपभोग की गई कुल कैलोरी की गणना कर सकते हैं।

चौथे, निम्नतम व्यय वर्ग से आरंभ करते हुए हम ऊपर चलते हैं तथा उस उपभोग व्यय वर्ग की जानकारी लेते हैं जिस वर्ग में कैलोरी की आवश्यकताएँ पूरी होती हों। चूँकि उपभोग-वर्गों के सामने दिए गए परिमाण औसत परिमाण हैं, हम इन कैलोरियों को उन उपभोग वर्गों के मध्य मानों के साथ जोड़ सकते हैं।

कैलोरी प्रतिमान (Calorie Norms)

कैलोरी की आवश्यकताएँ कैसे निश्चित की जाती हैं? कुछ बच्चे हैं, कुछ वयस्क और कुछ वृद्ध। कुछ पुरुष हैं और कुछ महिलाएँ। कुछ बैठ कर काम करने वाले हैं और कुछ कठिन परिश्रम करने वाले, यदि हम उनके निवास-क्षेत्रों की जलवायु के अंतर की उपेक्षा भी कर दें तो।

आहार-विशेषज्ञों ने लोगों के द्वारा जीवन में स्वस्थ रहने तथा अपने सामान्य उत्पादक क्रियाकलापों को संचालित करने के लिए विभिन्न वर्गों के लोगों के लिए कैलोरी की विभिन्न मात्राओं के उपभोग का सुझाव दिया है। वर्गों को सामान्यतः आयु, लिंग और क्रियाओं के अनुसार परिभाषित करते हैं। हमारे आहार विशेषज्ञों ने जनसंख्या को आयु, लिंग तथा कार्यों के अनुसार सोलह वर्गों में बाँटा है तथा एक वर्ष से नीचे के बच्चों के लिए न्यूनतम कैलोरी 300 तथा भारी कार्यों में लगे वयस्कों के लिए न्यूनतम कैलोरी 3600 निर्धारित की है।

जनसंख्या संघटन

वर्ष 1970 में जब गरीबी के अनुमान लगाने का प्रथम प्रयास किया गया तब जनसंख्या के आंकड़े जो 1971 की जनगणना द्वारा उपलब्ध कराए गए थे उन्हें प्रयोग किया गया। उदाहरण के लिए, जहाँ शहरी क्षेत्रों में महिला गैर-श्रमिक कुल शहरी जनसंख्या का 23 प्रतिशत हैं, वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमिक कुल ग्रामीण जनसंख्या का 22 प्रतिशत हैं। ऐसा शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए अलग-अलग सोलह वर्गों के लिए निकाला गया है।

ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के औसत कैलोरी प्रतिमान

किसी वर्ग विशेष की जनसंख्या के अनुपात को उस वर्ग की कैलोरी आवश्यकता से गुणा कर तथा इन कैलोरियों को प्रदान करने वाले सभी

उत्पादों को जोड़कर हम जनसंख्या की औसत कैलोरी आवश्यकता जान सकते हैं। ऐसा शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए अलग-अलग किया गया। भारी उद्योगों में शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक लोग कार्यरत पाए गए। परिणामस्वरूप ग्रामीण और शहरी लोगों के लिए औसत कैलोरी आवश्यकता क्रमशः 2435 तथा 2095 कैलोरी निर्धारित की गई जिनका सन्निकटन 2400 तथा 2100 कैलोरी किया गया जैसा हर जगह उल्लेख किया जाता है। यदि जनसंख्या संघटन में परिवर्तन होता है तो ये औसत कैलोरी आवश्यकताएँ भी बदल जाएँगी। परंतु ये परिवर्तन नाममात्र के होंगे। परंतु **भारत में गरीबी रेखा, निजी उपभोग व्यय का वह स्तर है जो अपेक्षित मात्रा में कैलोरी युक्त भोजन द्वारा निर्धारित होता है।** इसका अर्थ केवल निर्धारित कैलोरी प्रदान करने वाली खाद्य-सामग्री की कीमत ही नहीं है। लोगों के सामान्य क्रय को स्वीकर किया जाता है तथा अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त आवश्यक परिमाणों में कैलोरी युक्त खाद्य-सामग्रियों पर व्यय को ही गरीबी रेखा के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार परिकलन की गई कैलोरी की मात्रा न्यूनतम मात्रा है। साथ ही लोग अन्य वस्तुओं का लाभ भी उतने परिमाण में उठा सकते हैं जितना वे इन स्थितियों में उठा सकें।

राजकीय कार्यवाई के समय 1973-74 के लिए राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (एन.एस.एस.) उपलब्ध था। उपभोग-सर्वेक्षण आँकड़ों को प्रतिव्यक्ति परिवारिक उपभोग व्यय के द्वारा सारणीबद्ध किया जाता है। प्रतिव्यक्ति पारिवारिक उपभोग व्यय के वर्ग-अंतराल के सामने उपभोग की मदों के परिमाण लिखे जाते हैं। अतः उस अंतराल के लिए, हम कैलोरी के परिमाण का परिकलन कर सकते हैं यदि हम यह जानते हों किसी विशेष खाद्य-पदार्थ की एक इकाई का उपभोग मनुष्य को कितनी कैलोरियाँ प्रदान करता है। कैलोरियों के आवश्यक परिमाण किसी एक वर्ग-अंतराल के बराबर होंगे या दो वर्ग-अंतरालों के बीच में होंगे। प्रतिलोम अंतर्वेशन (inverse interpolation) के द्वारा हम आसानी से उपभोग व्यय की मात्रा जान सकते हैं जो कैलोरी आवश्यकताओं को पूरा करता हो। यह गरीबी रेखा है। 1973-74 की प्रतिमाह कीमतों पर ग्रामीण गरीबी रेखा 49.9 रु. तथा शहरी गरीबी रेखा 56.64 रु. थी।

भारत में गरीबी का आकलन

हम जानते हैं कि हमारे आँकड़े प्रतिदर्श आँकड़े हैं। प्रतिदर्श प्रतिशत को समष्टि प्रतिशत मानते हैं। इन प्रतिशतों को उपयुक्त जनसंख्या आकारों से गुणा कर हम प्रत्येक राज्य के शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के गरीबों की निरपेक्ष संख्या निकाल सकते हैं। इन संख्याओं द्वारा कई प्रकार के समुच्चय बनाए जा सकते हैं। किसी विशेष राज्य में गरीबों की कुल संख्या जानने के लिए उस राज्य के शहरों तथा गाँवों में रहने वाले गरीबों की कुल संख्या का योग निकालें। मान लें कि कई राज्यों के एक विशेष समूह में, जैसे दक्षिणी राज्यों मे गरीबी की कुल संख्या निकालनी है। इसके लिए समूह के सभी राज्यों के गाँवों तथा शहरों में रहने वाले गरीबों की संख्या का योग कर लें। देश में ग्रामीण (या शहरी) गरीबों की संख्या जानने के लिए, सभी राज्यों के ग्रामीण (या शहरी) गरीब लोगों की संख्या का योग निकालें। देश में गरीबों की कुल संख्या जानने के लिए, देश के गाँवों में रहने वाले गरीबों की संख्या को जोड़ें। इन योगों को उपयुक्त जनसंख्या समुच्चयों से भाग दें, जिससे

हमें गरीबी रेखा से नीचे वाले लोगों का प्रतिशत मिलेगा। गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के प्रतिशत को जनगणना अनुपात (head count ratio) या गरीबी आपतन अनुपात (poverty incidence ratio) भी कहते हैं।

भारत में गरीबी के आँकड़े

भारत में गरीबी का आकलन जनगणना अनुपात (head count ratio) के रूप में किया जाता है। कई विद्वानों ने आकलन का कार्य किया है। भारत सरकार तथा विश्व बैंक ने भारत की गरीबी का आकलन किया है। इनमें से कई श्रेणियाँ पचास के दशक के मध्य से आरंभ होती हैं। हम यहाँ गरीबी का जो आकलन दे रहे हैं वह प्रचलित विधि तथा 1973-74 से उपभोग व्यय के तुलना योग्य प्रतिदर्श सर्वेक्षणों से प्रतिदर्श विधि द्वारा निकाले गए हैं। योजना आयोग ने तीन आकलन तैयार किए हैं। देखें सारणी 9.1।

रिपोर्ट किए गए किंहीं दो वर्षों की तुलना करने पर आप देखेंगे कि गरीबी में कमी आई है। ऐसा भी हो सकता है कि किसी एक या दो वर्षों

सारणी 9.1

गरीबी का जनगणना अनुपात-ग्रामीण, शहरी तथा भारत

(प्रतिशत में)

वर्ष	*ग्रामीण*	*शहरी*	*भारत*
1973-74	56.4	49.0	54.9
1974-78	53.1	45.2	51.3
1983	45.7	40.8	44.5
1987-88	39.1	39.2	38.9
1993-94	37.3	32.4	36.0
1999-00	27.1	27.6	26.1

स्रोत : *आर्थिक सर्वेक्षण 2001-2002, आर्थिक प्रभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।*

के दौरान यह कमी नहीं हुई हो। छोटे प्रतिदर्शों के आधार पर कुछ विद्वानों ने इसे निकाला है। परंतु लंबी अवधि के लिए ऐसे निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं कि समय के साथ गरीबी में गिरावट आ रही है। 1956-57 के बीच तथा 1973-74 के बीच की अवधियों को छोड़कर, जब गरीबी अनुपात में उतार-चढ़ाव ही होते रहे थे, आप आगे देख सकते हैं कि 1993-94 से छः वर्षों तक ग्रामीण और शहरी दोनों प्रकार की गरीबी में 10 अंकों की कमी आई है। सारणी 9.1 से, कुछ अन्य सामान्य अनुमान भी निकाले जा सकते हैं:

(i) सत्तर के दशक के मध्य में गरीबी 50 प्रतिशत से अधिक थी, शताब्दी के अंत में यह घटकर लगभग 25 प्रतिशत हो गई।

(ii) ग्रामीण गरीबी शहरी गरीबी से थोड़ी अधिक रही है।

(iii) 1977-78 तथा 1983 के बीच गरीबी में पहली महत्त्वपूर्ण कमी हुई, तथा

(iv) 1993-94 तथा 1999-2000 के बीच गरीबी में आश्चर्यजनक रूप से कमी आई।

हालाँकि जब हम गरीबों की निरपेक्ष संख्या निकालने की कोशिश करते हैं तो स्थिति संतोष-जनक नहीं प्रतीत होती। गरीबों की निरपेक्ष संख्या निकालने के लिए हम इन प्रतिशत आँकड़ों को संबद्ध जनसंख्या के निरपेक्ष आँकड़ों से गुणा करते हैं (और उन्हें 100 से भाग देते हैं)। सारणी 9.2 में इन आँकड़ों को निकाला गया है।

आप देख सकते हैं कि देश भर के लिए केवल वर्ष 1999-2000 को छोड़कर कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है। देश में गरीबों की कुल संख्या 32 करोड़ थी, उसके बाद यह बढ़ी तथा घटकर 31 से 33 करोड़ के बीच हो गई। गाँवों में

सारणी 9.2
गरीबी का जनगणना आकलन : ग्रामीण, शहरी तथा भारत (करोड़ में)

वर्ष	*ग्रामीण*	*शहरी*	*भारत*
1973-74	26.1	6.0	32.1
1977-78	26.4	6.5	32.9
1983	25.2	7.1	32.3
1987-88	23.2	7.5	30.7
1993-94	24.4	7.6	32.0
1999-00	19.3	6.7	26.0

स्रोत : *आर्थिक सर्वेक्षण 2001-02, आर्थिक प्रभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।*

भी ऐसा ही हुआ, कोई विशेष कमी नहीं हुई। शहरी क्षेत्रों में वृद्धि नियमित रही, केवल वृद्धि के आकार में उतार-चढाव होता रहा। ग्रामीण क्षेत्रों में जो कमी आई उसे शहरी क्षेत्रों में हुई वृद्धि ने निष्क्रिय कर दिया। 1999-2000 में गरीबों की संख्या 1973-74 की संख्या का दो-तिहाई है। 1999-2000 में शहरी गरीबों की संख्या 1977-78 की संख्या से अधिक है। जनसंख्या में वृद्धि भी इसके लिए कुछ दूर तक उत्तरदायी रही होगी। परंतु, इसमें संदेह नहीं कि हमें इस दिशा में अभी बहुत दूरी तय करनी है।

गरीबी निवारण कार्यक्रम

यदि व्यापक वृद्धि के द्वारा समाज के सभी वर्गों में, परिवारों या व्यक्तियों का, विकास हो तो गरीबी रेखा से नीचे के लोग भी धीरे-धीरे इसके निकट होते हुए एक दिन गरीबी की इस दहलीज को भी पार कर जाएंगे। योजना अवधि के आरंभ में, ऐसा माना जाता था कि विकास के लाभ बेहतर मजदूरी, बेहतर रोजगार के अवसर, बेहतर उत्पादकता तथा अधिक उत्पादन के रूप में छनकर नीचे तक (percolate down) जाते हैं। इसे 'परकोलेशन' सिद्धांत का नाम दिया गया था। ऐसा माना गया कि यद्यपि समाज का एक छोटा वर्ग अर्थात् 10 प्रतिशत जनसंख्या, जो उत्पादक माध्यमों द्वारा अर्थव्यवस्था से सुसंबद्ध नहीं, जिनके लिए विशेष प्रयासों की आवश्यकता पड़ेगी।

इसका अर्थ यह नहीं कि पुनर्वितरण की दिशा में प्रयास नहीं किए जा रहे थे। परिसंपत्तियों के पुनर्वितरण (विशेषकर भूमि), धनी और मध्यवर्ग की संपत्ति और आय पर कर लगाना, विलासिता उपभोग मदों की वस्तुओं पर ऊँची दरों पर कर लगाना, खाद्यान्नों जैसी आवश्यक वस्तुओं को आर्थिक सहायता देना, मुफ्त शिक्षा तथा मध्य-दिवस भोजन (mid-day meal) आदि इसी उद्देश्य के लिए उठाए गए, पुनर्वितरक कदम थे। परंतु इनमें सीमित सफलता मिली थी, या, हम ऐसा कह सकते हैं कि यदि ये प्रयास नहीं किए जाते तो स्थिति और भी खराब होती। इन उपायों का महत्त्व समाप्त हो गया है।

साठ के दशक के मध्य तक यह स्पष्ट हो गया था कि विकास तथा पुनर्वितरण की दिशा में उठाए गए उपायों के परिणाम सीमित रहेंगे यदि कुछ व्यावसायिक स्तरों और सामाजिक वर्गों की सहायता करने के लिए कुछ विशेष संपूरक कार्यक्रम आरंभ न किए गए। हम भारत सरकार द्वारा आरंभ किए गए कार्यक्रमों तक ही सीमित हैं। इन कार्यक्रमों के दो अभीष्ट प्रकार हो सकते हैं– (i) स्वरोजगार को प्रोत्साहित करना, तथा (ii) संपूरक मजदूरी रोजगार प्रदान करना। ये कार्यक्रम अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में ही सीमित हैं क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की तुलना में चार गुना अधिक लोग रहते हैं। यहाँ हम सिर्फ ग्रामीण कार्यक्रमों तक ही अपनी चर्चा सीमित रखेंगे।

यहाँ हम निम्नलिखित कार्यक्रमों पर ध्यान केंद्रित करेंगे– (i) स्व-नियोजित कार्यक्रम, (ii) मजदूरी नियोजन कार्यक्रम, (iii) सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम (संक्षेप में), तथा (iv) सार्वजनिक वितरण प्रणाली। कुछ अर्थों में ये कार्यक्रम अधिकार संबंधी (entitlement) कार्यक्रम हैं जबकि वे कार्यक्रम जो गरीबों को शिक्षा, स्वास्थ्य या आवास के लिए सहायता प्रदान करते हैं, क्षमता वर्धक (capability enhancing) कार्यक्रम हैं।

स्वनियोजन कार्यक्रम

स्वनियोजन के लिए बनाए गए सभी कार्यक्रमों में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) सबसे महत्त्वपूर्ण है जिसे अब स्वर्ण जयंती ग्राम स्व-रोजगार योजना का नाम दे दिया गया है। यह केंद्र द्वारा समर्थित योजना है जो 1980 से देश के सभी 5000 विकास प्रखंडों में क्रियान्वित है। अनुदान/आर्थिक-सहायता प्रदान करने में केंद्र सरकार तथा राज्य सरकार 50 : 50 के हिस्सेदार हैं। परंतु यह योजना अब, जिला प्रशासन द्वारा पंचायती राज्य के प्रतिनिधियों की सहायता से चलाई जाती है।

इस योजना के अंतर्गत, गरीबी रेखा के नीचे वाले परिवारों (मूलतः छोटे तथा सीमांत कृषक, कृषिश्रमिक तथा ग्रामीण कारीगर) को उत्पादक परिसंपत्तियों और उचित आय प्राप्त करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। इस योजना का उद्देश्य यह है इससे परिवारों को निरंतर अतिरिक्त आय प्राप्त होती रहे। आर्थिक सहायता तथा बैंक ऋण के रूप में सहायता प्रदान की जाती है। विभिन्न प्रवर्गों के लिए भिन्न-भिन्न अनुपात में आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है– छोटे किसानों के लिए 25 प्रतिशत, सीमांत किसानों एवं कृषि श्रमिकों के लिए 33.33 प्रतिशत तथा अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/विकलांगों के लिए 50 प्रतिशत। विभिन्न प्रवर्गों के लिए योजनाओं के विस्तार (coverage) के प्रतिशत भी निश्चित कर दिए गए। आर्थिक सहायता एक सीमा तक ही दी गई।

आरंभ किए जाने के बीस वर्षों के बीच 5 करोड़ से अधिक परिवारों को सहायता प्रदान की जा चुकी है। अब तक लगभग बीस वर्षों से अधिक की प्रविधि में 40,000 करोड़ रुपए की सहायता प्रदान की जा चुकी है, जिसमें से 15,000 करोड़ रु. से अधिक ही आर्थिक सहायता (subsidy) के रूप में थी। यह विभिन्न वर्षों में हुए व्यय का योग है जिनमें स्पष्ट रूप से कीमतें भिन्न-भिन्न थीं। औसत सहायता, जो सहायता प्रदान किए गए परिवारों की दृष्टि से वास्तव में निवेश था, लगभग 7500 से 8000 थी। ऐसा सुझाव दिया गया कि यह निवेश, परिवारों को आय का निरंतर स्रोत प्रदान करने की दृष्टि से, बहुत कम है। बहुत गरीब परिवारों की स्थिति में इस एक बार की सहायता से कोई सुधार नहीं आया। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि संवितरण (disbursal) हेतु धन कम है, तब कुछ ही परिवारों की सहायता की जानी चाहिए, परंतु यह सहायता पर्याप्त होनी चाहिए। यह सुझाव भी दिया गया कि गरीबों में भी जिनकी स्थिति थोड़ी अच्छी है उनकी सहायता की जानी चाहिए ताकि वे अपने पाँवों पर खड़े होने योग्य हो सकें। कुछ लोग इसके विपरीत भी सुझाव देते हैं कि जिनकी स्थिति गरीबों में सापेक्ष रूप से बदतर है, उन्हें आर्थिक सहायता की अधिक आवश्यकता है।

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम (IRDP) के कई सहबद्ध कार्यक्रम थे, जैसे, TRYSEM, DWCRA, GKY, MWS तथा SITRA। योजना आयोग की एक समीक्षा के अनुसार यद्यपि ये

बहुत सारे कार्यक्रम एक साथ प्रस्तुत किए, परंतु इनमें आपस में कोई वांछित संयोजन (linkage) नहीं है। उदाहरण के लिए, ट्राइसेम यद्यपि स्व-नियोजन के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम है परंतु 25 प्रतिशत से भी कम ट्राइसेम प्रशिक्षार्थियों को समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत सहायता मिलती है। इसी प्रकार, यदि इस योजना के हिताधिकारियों (लाभ भोगियों) का सार्थक प्रशिक्षण हुआ तो उन्हें अपने लिए पर्याप्त आय का स्रोत मिल सकता है परंतु 5 प्रतिशत से भी कम हिताधिकारी ट्राइसेम के अंतर्गत प्रशिक्षित किए गए।

एक्रोनिम (परिवर्णी शब्द)

TRYSEM -	ट्राइसेम– स्व-रोजगार हेतु ग्रामीण युवाओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम
DWCRA -	ड्वाकरा– ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों का विकास
GKY -	जी.के.वाई.– गंगा कल्याण योजना
MWS -	एम. डब्ल्यू. एस.– मिलियन कूप योजना
SITRA -	सिट्रा– ग्रामीण कारीगरों के लिए बेहतर उपकरण आपूर्ति

अध्ययनों के द्वारा, भ्रष्टाचार एवं अयोग्य परिवारों को सहायता मिलने की रिपोर्ट भी मिली है। जो उसके योग्य नहीं होते। पैसे वसूल न होने के भय से जिला अधिकारियों तथा बैंक प्रबंधकों का रवैया शिथिल रहा है जो इन योजनाओं की असफलता के लिए उत्तरदायी हैं। यदि ग्रामीण क्षेत्रों में 5 करोड़ परिवारों (25 करोड़ लोगों) को सहायता दिए जाने के बावजूद गरीबों की संख्या 25 करोड़ (5 करोड़ परिवार) बनी रहे तो इसका स्पष्टीकरण कैसे दिया जा सकता है? इसके पीछे निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :

(i) गरीबों को नहीं के बराबर सहायता नहीं दी गई होगी।

(ii) उत्पादकीय क्षमता वृद्धि हेतु सार्थक स्व-रोजगार आर्थिक क्रियाओं को आरंभ करने की दृष्टि से सहायता का परिमाण बहुत कम रहा होगा।

(iii) परियोजनाओं का चुनाव गलत हुआ होगा (जैसे– दूध देने वाले पशु का क्रय तो काफी प्रचलित था परंतु एक ओर तो उनके लिए दाना व चारा तथा चिकित्सा सेवाओं की उपलब्धता पर और दूसरी ओर दूध के लिए बाजार की संभावनाओं पर पर्याप्त ध्यान न दिया गया) ।

(iv) उत्पादक उद्देश्यों के लिए दी गई सहायता को, उपभोग क्रियाओं द्वारा जैसे बीमारियों आदि पर व्यय करना, आदि में खपत कर लिया गया।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP) का एक नया अवतार SGSY है जिसमें आधारिक संरचनाओं की सुविधाओं, प्रौद्योगिकी, साख तथा विपणन व्यवस्थाओं पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया है। इस कार्यक्रम से हमें बहुत आशाएँ हैं।

मजदूरी रोजगार योजनाएँ (Wage Employment Programmes)

ऐसे लोगों के लिए जिनकी अपनी कोई संपत्ति (जैसे भूमि, पशु आदि) नहीं हैं, उनके लिए, समन्वित ग्राम विकास योजना (IRDP) के साथ ही 1980 में केंद्र सरकार द्वारा 50 प्रतिशत निधीयन (funding) के द्वारा एक मजदूरी रोजगार कार्यक्रम अर्थात् राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) आरंभ किया गया। इस योजना की सहायता के

लिए एक दूसरी मजदूरी रोजगार योजना का 15 अगस्त 1983 को आरंभ किया गया। ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (RLEGP) के रूप में जानी जाने वाली योजना भी केंद्र समर्थित (centrally sponsored) योजना थी जिसका 100 प्रतिशत निधीयन केंद्र सरकार द्वारा किया गया था। 1989 में दोनों योजनाएँ एक साथ मिला दी गईं तथा इस एकीकृत योजना को जवाहर रोजगार योजना (JRY) कहा जाने लगा। इसका 80 प्रतिशत निधीयन केंद्र सरकार द्वारा तथा शेष 20 प्रतिशत अपने-अपने राज्यों द्वारा किया गया। इसके अंतर्गत गरीबी रेखा से नीचे के लोगों को सूचित दरों पर रोजगार दिए जाने की व्यवस्था की गई जिसका कार्यान्वयन ग्राम पंचायतों द्वारा ही किया जाना था।

कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार तथा अल्प रोजगार वाले पुरुषों एवं महिलाओं के लिए लाभकारी रोजगार आरंभ करना था। परंतु इसके अन्य उद्देश्य भी थे। इसमें से दो महत्त्वपूर्ण उद्देश्य निम्नलिखित थे :

(क) सामुदायिक तथा सामाजिक परिसम्पत्तियों जैसे सामाजिक वानिकी, मृदा एवं संरक्षण कार्य, लघु सिंचाई कार्य, ग्रामीण कुओं की मरम्मत, ग्रामीण सड़कें, दवाखाना, स्कूल, पंचायत घर, बाजार, बस-स्टैण्ड, आंगनवाड़ी/ बालवाड़ी आदि को स्थापित करना।

(ख) मजदूरी के स्तर पर धनात्मक प्रभाव डालना।

दो योजनाएँ, जो पहले NREP/RLEGP की उप-योजनाएँ थीं JRY का अंग बना दी गईं। ये हैं, अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजातियों के गरीब व सीमांत किसानों को बिना किसी लागत के सिंचाई कुएँ प्रदान करने के लिए मिलियन कुआँ योजना (MWS) तथा उपयुक्त परिवारों के अतिरिक्त अन्य गरीब परिवारों को भी बिना किसी लागत के, घर देने के लिए इंदिरा आवास योजना (IAY) ।

इस योजना के द्वारा कुछ आधारिक संरचना का निर्माण हुआ तथा कुछ लोगों को कुछ दिनों के लिए रोजगार मिले। परंतु जिस प्रकार कार्यक्रम का संचालन हुआ, उसके कारण यह पर्याप्त रोजगार प्रदान नहीं कर सकी जिससे गरीबी कम हो सके या संबद्ध आधारिक संरचना का निर्माण हो सके। 1998-99 में 2500 करोड़ रु. के व्यय से 40 करोड़ श्रम दिनों (man days) से कम रोजगार का निर्माण हुआ। यदि इस व्यय का भौतिक संघटन 40 प्रतिशत माना जाए तो इसके द्वारा 1500 सौ करोड़ रु. मजदूरी के तौर पर दिया गया। अतः औसत मजदूरी दर 40 रु. से भी कम हुई। यदि रोजगार तलाश करने वालों की पंक्ति में चार करोड़ लोग भी हों तो एक वर्ष में एक व्यक्ति को औसत रूप से 10 दिन का काम मिला। परिवार को एक वर्ष में अधिक-से-अधिक 800 रु. की कुल सहायता प्राप्त हुई जिसमें पति और पत्नी दोनों के श्रम शामिल थे। यह किसी भी परिवार के लिए बहुत कम राशि है। ऐसी स्थिति में पंचायत अधिकारियों पर लगाए गए आरोपों में कुछ सच्चाई जान पड़ती है कि उन्होंने अपने परिचितों और संबंधियों के साथ पक्षपात किए।

अब यह लगता है कि इस योजना में रोजगार निर्माण पर बहुत जोर दिया तथा गाँव की आधारिक संरचना के विकास की उपेक्षा की। जवाहर रोजगार योजना (JRY) का स्थान जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (JGSY) ने ले लिया। इसका प्राथमिक लक्ष्य माँग-संचालित सामुदायिक ग्रामीण आधारिक संरचना तथा द्वितीयक लक्ष्य रोजगार का सृजन है।

सामाजिक सुरक्षा

सामाजिक सुरक्षा के नाम पर बहुत कम काम हुआ है। यद्यपि, परिवार के प्राथमिक कमाऊ सदस्य की मृत्यु के बाद गरीब परिवारों में असहाय वृद्धों के लिए तथा गर्भावस्था के दौरान गरीब परिवारों की महिलाओं के लिए 100 प्रतिशत निधीयन वाली केंद्रिय संचालित योजनाएँ हैं। आरंभ तो सही दिशा में हुआ है, यद्यपि यह राशि उनकी भौतिक स्थिति में सुधार लाने के लिए बहुत कम है। वृद्धों के पेंशन की योजना बहुत सफल रही जबकि अन्य दोनों योजनाओं के बारे में जानकारी का अभाव है।

खाद्य सुरक्षा

गरीब लोगों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS), समन्वित बाल विकास योजना (ICDS), तथा स्कूलों मे मध्य-दिवस भोजन योजना (MDMS) प्रारम्भ की गई।

देश में पिछले 50 वर्षों में खाद्यान्नों की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता 400 ग्राम से भी कम से बढ़कर शताब्दी के अंत तक 500 ग्राम हो गई। परंतु क्रय शक्ति की कमी के कारण अभी भी काफी लोग भूख, अल्पपोषण और कुपोषण के शिकार हैं।

हमें एक सुरक्षित भंडार (बफर स्टॉक) रखने की आवश्यकता थी जो खाद्यान्नों की मूल्य-स्थिरता को बनाए रखता क्योंकि इनका उत्पादन प्राकृतिक विपदाओं से प्रभावित होता है। उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए कृषि उत्पादों की समर्थित कीमतों को एक अच्छी प्रेरणा के रूप में माना गया। हमारी सरकार ने इतना अधिक भंडार इकट्ठा कर लिया जो आवश्यक सुरक्षित भंडार (buffer stock) से बहुत अधिक था। हमारी आवश्यकता 20 मिलियन टन खाद्यान्न की भी नहीं थी और हमारे पास इसका स्टॉक 60 मिलियन टन का था।

अल्पपोषित लोग तथा भारतीय खाद्य निगम (FCI) के अत्यधिक भरे हुए गोदाम एक ऐसा धर्मसंकट प्रस्तुत करते हैं जिसका हल निकालना कठिन है। फिर भी खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के क्रम में चार लाख उचित दर की दूकानों (FPS) के माध्यम से गरीबों को खाद्यान्न सस्ती कीमतों पर उपलब्ध कराए गए (उन्हें भी जो गरीब नहीं थे)। कुछ राज्यों के शहरी क्षेत्रों में इन दूकानों की अच्छी व्यवस्था की गई तथा कुछ राज्यों के शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में। आज ये 15000 करोड़ रुपये का व्यापार संचालित कर रहे हैं तथा 16 करोड़ परिवारों की सहायता कर रहे हैं। इसके लिए 8000-9000 करोड़ रु. की आर्थिक सहायता मिलती है जो केंद्र सरकार के कुल बजट व्यय का 2.5-3.0 प्रतिशत के बराबर है। इस आर्थिक सहायता का पूरा लाभ गरीबों को नहीं मिल पा रहा है क्योंकि इसका काफी अंश ऊँची लागत पर भंडार (stock) को सुरक्षित रखने में लगता है। गरीब लोग इन उचित दर दुकानों से जो थोड़ा बहुत खरीद सकते हैं वह दो कारणों से नहीं खरीदा गया। पहला कारण, तो व्यवस्था का दोषपूर्ण होना है और दूसरा यह है कि सामान्यतः ऐसा नियम बना दिया गया है कि जितनी मात्रा उनके लिए निश्चित है उतनी पूरी उन्हें खरीदना पड़ेगा।

सार्वजनिक वितरण व्यवस्था ने निश्चित ही गरीबों की कुछ सहायता की है। इसके अतिरिक्त, समन्वित शिशु विकास योजना (ICDS) के अंतर्गत माताओं तथा छः वर्ष से नीचे के बच्चों को भी कुछ सहायता की। मध्य-दिवस भोजन योजना के अंतर्गत बच्चों को स्कूलों में निःशुल्क भोजन दिया जाता है।

निष्कर्ष

सबसे पहले सापेक्ष गरीबी तथा निरपेक्ष गरीबी के अंतर का वर्णन किया गया। हमने गरीबी रेखा को बहुत ऊँचे और बहुत नीचे स्तर पर रखने से सहायता-संबंधी नीतियों पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन भी किया। इस पर भी ध्यान दिया गया कि गरीबी के आकलन में क्या हमें आय या उपभोग के वितरण पर भी विचार करना चाहिए या नहीं।

इसके बाद हमने सरल विधि से यह बताया कि भारत में राष्ट्रीय स्तर पर गरीबी रेखा का निर्धारण कैसे होता है तथा ग्रामीण और शहरी गरीबी रेखाएँ क्या थीं। सामान्य विधि तथा तुलनात्मक सर्वेक्षणों पर आधारित गरीबी के आकलन 1973-74 तथा 1999-2000 के बीच में छः अंकों के लिए उपलब्ध हैं, हमने उनका विश्लेषण गरीबी का प्रतिशत तथा इसकी निरपेक्ष संख्याएं जानने के लिए किया।

अंत में हमने देखा कि यद्यपि वृद्धि तथा सामान्य पुनर्वितरण नीति गरीबी निवारण के लिए आवश्यक हैं, परंतु इसके लिए पूरी तरह उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इसे ध्यान में रखते हुए, सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध से कई केंद्रित सम्पूरक योजनाएँ आरंभ की गई। हमने केवल उन पर ही चर्चा की जो ग्रामीण क्षेत्रों में चलाई जा रही हैं। स्वरोजगार तथा मजदूरी रोजगार देने वाले कार्यक्रमों ने कई लाख परिवारों की गरीबी रेखा के ऊपर और कई की गरीबी रेखा के पास जाने में सहायता की होगी परंतु उनकी सफलता सीमित रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप गैर-कृषि क्रियाओं से कुछ आशा की जा सकती है।

अभ्यास

1. गरीबी से आप क्या समझते हैं?
2. सापेक्ष तथा निरपेक्ष गरीबी के मध्य अंतर की व्याख्या करें?
3. आप के विचार से सापेक्ष गरीबी (असमानता) कैसे मापी जा सकती है? इस पर एक टिप्पणी लिखिए।
4. वितरण समापांक तथा गरीबी रेखा के बीच क्या अंतर है?
5. गरीबी रेखा की परिभाषा दीजिए। नीति-निर्धारण के लिए गरीबी रेखा का एक ऊँचा स्तर तय करने की आवश्यकता है, व्याख्या कीजिए?
6. आर्थिक-सहायता की नीति निर्धारण के लिए, एक निम्न गरीबी रेखा तय करने की आवश्यकता है। व्याख्या कीजिए।
7. गरीबी रेखा को कैसे परिभाषित करना चाहिए— आय के आधार पर या उपभोग के स्तर के आधार पर? अपने कथन की पुष्टि कीजिए।
8. भारत में विभिन्न उपभोग व्यय वाले वर्गों के कैलोरी उपभोग को कैसे प्राप्त किया जाता है?
9. भारत में औसत ग्रामीण व्यक्ति तथा औसत शहरी व्यक्ति के लिए कैलोरी की मात्रा का निर्धारण कैसे किया जाता है?

10. भारत में राष्ट्रीय स्तर पर गरीबी रेखा का निर्धारण किस प्रकार होता है?
11. 1973-74 से देश में गरीबी के अनुमानों की चर्चा कीजिए तथा ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में इनकी मूक प्रवृत्तियों की रूपरेखा दीजिए?
12. भारत में गरीबी का स्तर क्या है? ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में निर्धनता का क्या स्तर है? 1993-94 तथा 1999 में गरीबी के प्रतिशत तथा मात्रा में कमी को आप किस प्रकार देखेंगे?
13. गरीबी-निवारण कार्यक्रमों को लागू करने की क्या आवश्यकता थी? इन्हें पहले क्यों नहीं आरंभ किया गया?
14. ग्रामीण क्षेत्रों में चलाए जाने वाले कुछ गरीबी-निवारण कार्यक्रमों की सूची बनाएं।
15. स्वरोजगार सृजन करने वाले कार्यक्रमों की प्रकृति, कार्य प्रणाली एवं परिणामों की व्याख्या करें।
16. मजदूरी रोजगार सृजन करने वाले कार्यक्रमों की प्रकृति कार्यप्रणाली एवं परिणामों की चर्चा करें।
17. भारत में खाद्य संरक्षण के लिए अपनाए गए उपायों की संक्षेप में चर्चा करें।
18. सामाजिक सुरक्षा से आप क्या समझते हैं? हमारे पास किस वर्ग के लिए इस प्रकार के कार्यक्रम हैं?
19. आपके विचार से भारत में गरीबी-निवारण के लिए क्या किया जाना चाहिए?

क्रियाकलाप

9.1 सामूहिक क्रिया– यह ज्ञात करने का प्रयास करें कि आपके गाँव/क्षेत्र में गरीबी-निवारण के विभिन्न कार्यक्रमों से लाभान्वित लोगों का चयन किस प्रकार किया गया। अपने पर्यवेक्षणों की अपने अध्यापक/अध्यापिका के साथ चर्चा करें।

अध्याय 10

बेरोजगारी

परिचय

बेरोजगारी एक बड़ी समस्या है। आप ऐसे लोगों से मिले होगें जिनके पास कोई रोजगार नहीं हो और आपने अवश्य उनकी बातचीत में आक्रोश की झलक देखी होगी। यह दृश्य व्यवस्था में लोगों के विश्वास को हिला देता है। आधारभूत तथ्य के रूप में हम कह सकते हैं कि किसी भी योग्य व्यक्ति को जो एक निश्चित आयु (15 वर्ष) से ऊपर तथा एक निश्चित आयु (60 वर्ष) से कम हो, अवश्य कार्य करना चाहिए यदि वह किसी अन्य उपयोगी व्यवसाय जैसे उच्च शिक्षा (या घर बनाने) में न लगा हो। व्यवस्था द्वारा उन्हें कार्य करने की अनुमति मिलनी चाहिए। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि ऊपर दिए गए व्यक्तियों के समुच्चय में से कम से कम ऐसे लोगों को तो कार्य करने की अनुमति मिलनी चाहिए जो कार्य करने के इच्छुक हों। कुछ ऐसे भी हैं जो मानते हैं कि कम-से-कम उन्हें तो काम करने की अनुमति मिल ही जानी चाहिए जो इसकी तलाश में हैं।

मूल बात यह है कि कोई व्यक्ति जो सिर्फ एक उपभोक्ता है परंतु उत्पादक नहीं, वह एक अच्छा और जिम्मेदार नागरिक नहीं होगा। 'प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार' के साथ 'प्रत्येक को उसकी क्षमता के अनुसार' भी एक अच्छे स्वस्थ समाज की उक्ति होनी चाहिए। उत्पादक होने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति सामान्य अर्थ में कार्यरत हों या किसी के अधीन कार्य करें। इसके लिए, व्यक्ति दूसरों को काम में लगाए या स्वयं को कार्य में लगाए या किसी अन्य के द्वारा कार्य में लगाए जाएँ। ये सभी उपयोगी ढंग से कार्यरत हैं। अतः रोजगार में लगे हुए माने जाते हैं। श्रमिक या तो स्वयं रोजगार में लगे होते हैं या वे वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन करते हैं और अपने उत्पादों का विक्रय ग्राहकों को स्वयं करते हैं या मजदूरी-रोजगार में लगे होते हैं और अपनी सेवाएँ उन उत्पादनकर्त्ताओं को बेचते हैं जो अपने उत्पाद ग्राहकों में बेचते हैं।

कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष

बच्चे और वयस्क

दुर्भाग्यवश 15 वर्ष से कम के कुछ तथा 60 वर्ष से अधिक और पूरी तरह स्वस्थ लोग कार्य करने को बाध्य किए जाते हैं। इसी प्रकार, कई लोग जो अपनी युवावस्था में हैं (15 से 60 के बीच) और काम करने की तलाश में हैं (या कार्य करने की इच्छा रखते हैं) परंतु बेकार रहने के लिए बाध्य किए जाते हैं। जैसे-जैसे समाज का विकास होता है, इसमें बच्चों का प्रयोग बंद हो जाना चाहिए। कार्य में बच्चों को लगाना, उनके बचपन को नकाराना और युवावस्था को कुचलना है। इसे

पाप मानना चाहिए। बच्चों के कार्य न करने के अधिकार का आदर किया जाना चाहिए, भले ही ये बच्चे स्कूल न जाकर खेलकूद में ही लगे हों। जहाँ तक युवकों का प्रश्न है, उपयोगी आर्थिक क्रियाओं में उनकी भागीदारी आवश्यक है तथा समाज द्वारा उन्हें ऐसा करने की अनुमति भी मिलनी चाहिए। कार्यों में व्यस्तता के द्वारा ही उनकी ऊर्जा या सृजन-शक्ति को अभिव्यक्ति मिलती है। अपनी युवा शक्ति का सदुपयोग न करना समाज के लिए अनुचित है। उन्हें सुस्त और वृद्ध बना देना तो और भी अनुचित है। स्थिति सचमुच चिंताजनक है क्योंकि बच्चे जिन्हें स्कूलों व खेल के मैदानों में होना चाहिए था, कार्य कर रहे हैं तथा स्वस्थ और योग्य वयस्क बेरोजगार बैठे हैं।

अधिक बेरोजगारी के निहितार्थ

बेरोजगारी आर्थिक समस्या भी है और सामाजिक भी। यह एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक समस्या है क्योंकि इस संसाधन के अनुपयुक्त रहने पर इनकी लागत दूनी हो जाती है– एक तो इनके भरण-पोषण का खर्च और दूसरा उत्पादन में कमी (विश्वव्यापी मंदी के समय औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं में इंग्लैण्ड तथा अमेरिका सहित, बेरोजगारी दर 20 प्रतिशत हो गई तथा संभाव्य उत्पादन (Potential output) में 40 प्रतिशत की कमी हो गई। अभी भी उनमें कभी-कभी बेरोजगारी दर बहुत बढ़ जाती है)। यह एक प्रमुख सामाजिक समस्या है क्योंकि बेरोजगार श्रमिकों को आय की कमी के कारण बहुत कष्ट झेलने पड़ते हैं। बेरोजगारी बढ़ने पर, आर्थिक कष्ट लोगों की संवेदना और पारिवारिक जीवन पर दुष्प्रभाव डालते हैं।

महिलाओं के कार्य

आगे चर्चा करने से पहले, यह जान लेना उपयोगी होगा कि गैर काम-काजी माताओं द्वारा किए गए अधिकांश उपयोगी कार्य अर्थशास्त्र में 'कार्य' नहीं माने जाते हैं। यह अवश्य आपको रुचिकर नहीं लगेगा क्योंकि आप जानते हैं कि अपने घर में कार्य करना किसी और के घर में कार्य करने की ही तरह है। भावी पीढ़ी के भावी माता-पिता के पालन पोषण करने तथा उन्हें सुनना-समझना और समझाना किसी भी क्रिया से कम उपयोगी नहीं है। मुख्य धारा के अर्थशास्त्रियों का तर्क यह रहा है कि सकल देशीय उत्पाद के परिकलन में इन क्रियाओं को शामिल नहीं किया जाना चाहिए।

बेरोजगारी के प्रकार

सभी अर्थव्यवस्थाओं में हमेशा कुछ लोग ऐसे होते हैं जो काम करने की इच्छा रखते हुए भी बेरोजगार होते हैं। जो अपनी इच्छा से कार्य नहीं कर रहे हैं उन्हें **ऐच्छिक बेरोजगार** कहा जाता है। हम उनकी चिंता नहीं करते क्योंकि ऐसा निर्णय लेने में उनके अपने कारण तथा उनकी अपनी परिस्थितियाँ होंगी। लोगों के स्वेच्छा से कार्य न करने के कई कारण हो सकते हैं। वे प्रचलित मजदूरी की दर पर काम न करने के स्थान पर आराम प्रसंद कर सकते हैं। वे अपनी पहली नौकरी की तलाश में हो सकते हैं। अल्प उत्पादक श्रमिक कम पैसों की नौकरियों की तुलना में कल्याण या बेरोजगारी बीमा को पसन्द कर सकते हैं, जो इन उद्देश्यों को ही निष्क्रिय कर देता है जिसके लिए ये योजनाएँ स्थापित की गई थीं।

स्वैच्छिक बेरोजगारों के अतिरिक्त कुछ लोग ऐसे भी हैं जो प्रत्यक्ष रूप से तो रोजगार में हैं परंतु

वास्तविक रूप से वे बेरोजगार हैं। इस स्थिति को **प्रच्छन्न बेरोजगारी** कहते हैं। कृषि या किसी पारिवारिक उद्यम के उस कार्य में तीन व्यक्ति लगे हो सकते हैं जिसे आसानी से दो व्यक्ति कर सकते हैं। उनमें से एक यदि हटा लिया जाए तो भी उत्पादन में कोई कमी नहीं होगी। अतः दो प्रकार की बेरोजगारी ऐसी है जो हमारे लिए चिंताजनक है, **खुली बेरोजगारी** और **प्रच्छन्न बेरोजगारी**। इन संकल्पनाओं को हम नीचे वर्णित करते हैं :

खुली बेरोजगारी (Open Unemployment)

खुली बेरोजगारी की स्थिति वह है जहाँ लोग योग्य व स्वस्थ हैं, कार्य करने के इच्छुक और कार्य की तलाश में हैं तथा आयु विशेष से ऊपर हैं, परंतु वे किसी आर्थिक क्रिया में लगे हुए नहीं हैं।

प्रच्छन्न बेरोजगारी (Disguised Unemployment)

प्रच्छन्न बेरोजगारी में लोग व्यस्त तो हैं अतः काम में लगे हुए प्रतीत होते हैं परंतु वे **पूर्ण नियोजित** नहीं कहे जा सकते क्योंकि यदि उनमें से कुछ व्यक्तियों को उस कार्य से निकाल भी लिया जाए तो भी उत्पादन में कोई कमी नहीं आएगी। ऊपर दिए गए उदाहरण में आपने देखा कि एक तिहाई श्रमबल सिर्फ ऊपरी तौर पर व्यस्त प्रतीत होते हैं। व्यस्तता रोजगार का पर्याय नहीं है। ऐसा किसी भी पारिवारिक उद्यम में सम्भव है जैसे किसी छोटे खेत के टुकड़े पर, निजी अथवा किराए का काम करना जहाँ श्रम की आवश्यकता परिवार के अंदर इसकी उपलब्धता से कम हो। शहरी और ग्रामीण इलाकों दोनों में, कई अन्य अनौपचारिक क्रियाएँ हैं जहाँ ऐसी ही स्थिति है। अतः पारिवारिक क्रियाओं/उद्यमों के अतिरिक्त अवसरों की कमी ही है, जो परिवार के कई सदस्यों को एक छोटे से कार्य में लगे रहने पर बाध्य करती है।

अर्थशास्त्र में पूरे पारिवारिक श्रम की व्यस्तता को उत्पादकता की दृष्टि से प्रायः अनावश्यक बताया गया है। इसका वर्णन उस स्थिति के रूप में किया गया है जब श्रम का एक हिस्सा अर्जक के रूप में कार्यरत/नियोजित (Gainfully employed) नहीं है। हमनें यह भी बताया है कि वे समय-व्यवस्था की दृष्टि से भी पूरी तरह कार्यरत नहीं हैं। पारिवारिक आर्थिक क्रियाओं के स्व-नियोजन के उदाहरणों में आय, उत्पादन तथा समय-नियोजन (Time disposition), इन तीनों मानदण्डों का समान महत्त्व है। उत्पादकता के सिद्धांत में यह निहित विश्वास है कि किसी कारक को उसकी उत्पादकता के अनुसार ही पारिश्रमिक मिलता है। वस्तुतः आय, उत्पादन तथा समय-नियोजन ये उत्पादन के तीन आयाम हैं तथा श्रम के बाजार में इनका अलग-अलग महत्त्व है। जब सरकार को ऐसा लगता है कि कर्मचारियों का आधिक्य है और वह सरकारी कार्यालयों से लोगों की छँटनी करने का या अवकाश प्राप्त लोगों के स्थान पर नए लोगों की भर्त्ती न करने का निश्चय करती है तो इसका अर्थ है कि उत्पादन और समय-व्यवस्था की दृष्टि से ये कर्मचारी अनावश्यक माने जाते हैं। किसी निजी कंपनी के निदेशक (डायरेक्टर) की भी ऐसी ही स्थिति है जहाँ उन्हें दिन में केवल दो पत्रों पर हस्ताक्षर ही करने के पैसे मिलते हैं। जॉन राबिंसन ने पहली बार अनेक उत्पादक श्रमिकों के जूते चमकाने के कार्य में लगे होने के संदर्भ में पहली बार इस अवधारणा का उल्लेख किया था।

भारत जैसे देश में जहाँ 50 प्रतिशत श्रमिक अभी भी स्व-नियोजित हैं, प्रच्छन्न बेरोजगारी बहुत

अधिक है। यह एक कारण है जिसके कारण प्रच्छन्न रूप से बेरोजगार लोग शहरी क्षेत्रों की ओर प्रस्थान करके खुली बेरोजगारी के शिकार हो जाते हैं। इस अर्थ में खुली बेरोजगारी बहुत गंभीर समस्या का संकेत देती है।

खुली बेरोजगारी का वर्गीकरण प्रायः तीन वर्गों में करते हैं-- चक्रीय, संरचनात्मक तथा प्रतिरुद्ध/अस्थाई बेरोजगारी। यदि हम चाहें तो खुली बेरोजगारी को पहले दीर्घकालिक तथा चक्रीय बेरोजगारी के रूप में बाँट सकते हैं तथा सुदीर्घकालिक बेरोजगारी को संरचनात्मक और प्रतिरुद्ध/अस्थाई बेरोजगारी के रूप में।

जब अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं की समस्त माँग घटकर इसकी क्षमता से कम हो जाती है, तो श्रम-बल का एक बड़ा हिस्सा बेरोजगार हो जाता है। इसे चक्रीय बेरोजगारी के नाम से जाना जाता है। पूँजीवादी पद्धति में, अर्थव्यवस्था किसी सुदीर्घकालीन प्रवृति के चारों ओर एक चक्र की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरती है। ये अवस्थाएँ हैं-- तेजी, मंदी तथा पुनरुत्थान। तेजी सर्वोच्च आर्थिक क्रिया की अवस्था है जबकि मंदी निम्नतम आर्थिक क्रिया की। मंदी की स्थिति में बहुत सारे लोग अपने रोजगार से बाहर कर दिए जाते हैं, तेजी की स्थिति में बहुत लोग, श्रम-बाजार से बाहर वाले भी रोजगार प्राप्त कर लेते हैं। दुर्भाग्यवश, युद्ध-अवधि आर्थिक क्रियाओं की दृष्टि से तेजी के समान होती है। पश्चिमी देशों में युद्ध की अवधि में महिलायें भी श्रम शक्ति में सम्मिलित कर ली जाती हैं और मंदी के समय पुरुषों को निकाल दिया जाता है।

जैसे-जैसे समय बीतता है, कई नई आर्थिक क्रियाएँ उभरती हैं, कुछ पुरानी आर्थिक क्रियाओं का महत्त्व बढ़ता है और कुछ का घट जाता है। परिणामस्वरूप, वस्तुओं की माँग की प्रवृत्ति में परिवर्तन के कारण श्रम की माँग की प्रवृत्ति में भी परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। वस्तुतः यह आर्थिक क्रियाओं में संरचनात्मक परिवर्तन है परंतु, श्रमबल में माँग की प्रवृत्ति के अनुरूप परिवर्तन तत्काल तो नहीं होता। अतः अर्थव्यवस्था में जहाँ एक ओर खाली जगहें होंगी, वहीं दूसरी ओर लोग नौकरियों की तलाश करते हुए मिलेंगे। इसे संरचनात्मक बेरोजगारी कहते हैं। काम की कमी नहीं है परंतु माँग की प्रवृत्ति तथा पूर्ति की संरचना के बीच ताल-मेल नहीं है। पुनर्प्रशिक्षण तथा पुनर्नियोजन से थोड़ी सहायता मिल सकती है। विभिन्न व्यवसायों तथा क्षेत्रों के बीच भी संरचनात्मक असंतुलन हो सकता है क्योंकि कुछ क्षेत्रों का विकास होता है और कुछ का नहीं। उच्च वास्तविक मजदूरी, कल्याण हित लाभ तथा कर में छूट के कारण पूरी अर्थव्यवस्था में ऊँचे स्तर की संरचनात्मक बेरोजगारी उत्पन्न कर सकती है।

श्रम-बाजार अन्य वस्तुओं के बाजार की तरह सहज नहीं होता। कई प्रकार के संस्थागत हस्तक्षेप भी होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोग हमेशा बेहतर नौकरियों की संभावनाओं की तलाश में रहते हैं। उनमें से कुछ अपनी पुरानी नौकरी को नई नौकरी प्राप्त करने से पहले छोड़ देते हैं। वे किसी शैक्षिक पाठ्यक्रम या प्रशिक्षण को पूरा कर श्रम बाजार में वापस लौट आते हैं। शहरी क्षेत्रों में अनेक महिलाएँ विवाह से पहले कुछ समय के लिए नौकरी करती हैं तथा विवाह के बाद नौकरी छोड़ देती हैं तथा बच्चों के पालन-पोषण के बाद फिर से श्रम बाजार में वापस लौट आती हैं। वे पुनः आसानी से अपनी मनपसंद नौकरियाँ आशानुकूल मजदूरी दरों पर नहीं पा सकतीं। इस प्रकार की बेरोजगारी को अस्थाई बेरोजगारी कहते

हैं। कभी-कभी यह तकनीकी परिवर्तनों के कारण होता है। अस्थाई बेरोजगारी उन लोगों के लिए एक प्रकार की ऐच्छिक बेरोजगारी जो अपनी पुरानी नौकरी की तलाश कर रहे हैं।

एक वर्ष के भीतर ही, कुछ अर्थव्यवस्थाओं में जैसे हमारी अर्थव्यवस्था में भी आर्थिक क्रियाओं के स्तर में मौसमी उतार-चढाव हो सकता है। आप में कुछ लोगों को गाँधी जी का ग्रामवासियों को अपने कार्य व आय को बढ़ाने के लिए दिया गया सूत कातने का सुझाव याद होगा, क्योंकि वे जानते थे कि कृषि-कार्य में लगे लोगों के पास विशेषतौर पर बरसात में पर्याप्त कार्य का अभाव है। यद्यपि फसलों के समय श्रम की कुछ कमी हो जाती है तथा कुछ बेरोजगार लोग भी श्रम-बल के अंतर्गत शामिल कर लिए जाते हैं। कुछ रिक्शा चालक/निर्माण कार्य करने वाले मजदूर जो काम की कमी के कारण गाँवों से शहरों में आ जाते हैं वे फसलों के समय फिर से वापस गाँव लौट आते हैं। इस प्रकार की बेरोजगारी को मौसमी बेरोजगारी कहते हैं।

बेरोजगारी की माप

लोगों की बेरोजगारी के कारणों के अतिरिक्त हमें किसी दिए गए वर्ष में बेरोजगारी के विस्तार (परिमाण) को भी जानने की इच्छा हो सकती है। हम किसी रोजगार में लगे व्यक्ति के बारे में कई तथ्य जानते हैं जैसे वह कहाँ काम करता है, उसकी मजदूरी क्या है, वह किस पद पर है आदि, जो इसके आर्थिक पक्ष हैं। जब हम बेरोजगारों की बात करते हैं तो हम उसकी जनांकिकीय/सामाजिक विशेषताओं के बारे में अधिक जानते हैं। अतः बेरोजगारी का अध्ययन ग्रामीण/शहरी विभेद, पुरुष/स्त्री विभेद, आयु द्वारा विभेद, आर्थिक स्तरों द्वारा विभेद, शैक्षिक स्तरों द्वारा विभेद आदि के रूप में करते हैं।

श्रम बल और कार्य बल

सबसे पहले हमें उन विशेष शब्दों को जान लेना चाहिए जो इस संबंध में उपयोगी हों। श्रम-आपूर्ति जिसका संबंध मजदूरी से है, के स्थान पर हम श्रम-बल की बात करते हैं। अधिक-से-अधिक हम श्रम-बल की बात सामान्यतः रोजगार में लगे हुए या रोजगार की इच्छा रखने वाले लोगों (वर्ष के अधिकांश भाग में) के रूप में कर सकते हैं, जबकि श्रम-आपूर्ति की चर्चा श्रम-दिवसों (कार्य करते हुए या कार्य करने के इच्छुक) के रूप में की जा सकती है। हम श्रम-बल और कार्य बल के बीच भी अंतर करते हैं।

जनसंख्या के सभी सदस्य आर्थिक रूप से उत्पादक क्रियाओं में नहीं लगे होते हैं। आरंभ में ही हमें बता देना चाहिए कि बच्चे तथा बूढ़े, मानसिक या शारीरिक रूप से विकलांग (विक्षिप्त/विकलांग) इन क्रियाओं में शामिल नहीं होते। अतः जो लोग वस्तुएँ व सेवाओं का उत्पादन कर सकते हैं (और जिन्हें करना भी चाहिए) वे ही श्रम बल का निर्माण करते हैं। इसे संभावित श्रम बल कहते हैं। इसमें से कुछ ऐसे लोगों को पृथक कर देना चाहिए जो किसी अन्य क्रिया (पारिवारिक कार्यों) में व्यस्त हैं या कार्य करने के इच्छुक नहीं हैं। इसका तात्पर्य है कि जो वस्तुतः आर्थिक रूप से उत्पादक क्रियाओं को कर रहे हैं या जो इन्हें कर सकते हैं, वे सभी श्रम बल में सम्मिलित हैं। जो इन क्रियाओं में सचमुच लगे हुए हैं उन्हें श्रम बल के रूप में जाना जाता है। श्रम बल तथा कार्य बल के संतुलन को बेरोजगार श्रम बल कहते हैं। दूसरे शब्दों में, रोजगार में लगे हुए श्रम बल को कार्य बल कहते हैं।

जब हम श्रम/कार्य बल में जनसंख्या के आकार से भाग देते हैं तो हमें श्रम बल/कार्य बल की भागीदारी दर प्राप्त होती है। ये दर सामान्यतः प्रतिशत के रूप में और कभी-कभी प्रति हजार के रूप में व्यक्त की जाती हैं।

सामान्य, साप्ताहिक व दैनिक स्थिति

ये सभी सामान्य स्थितियों के रूप में हैं। यदि आप एक विद्यार्थी हैं तथा किसी दूकान में भी काम करते हैं तो आप श्रम बल के सदस्य तभी हैं जब आप अपना अधिकांश समय काम करने में लगाते हैं। तभी आपकी सामान्य स्थिति एक श्रमिक की है। यदि ऐसा नहीं है तो आपकी स्थिति गैर-श्रमिक की है। यदि आप 183 दिनों से अधिक तक (> 1/2 वर्ष) कार्य के लिए उपलब्ध हैं परंतु आपकों 183 दिनों से कम के लिए कार्य उपलब्ध हो तो आप सामान्य स्थिति की संकल्पना के अनुसार बेरोजगार हैं।

सर्वेक्षण के लिए जब लोग आपके रोजगार/बेरोजगारी की स्थिति के बारे में पूछने आएँ तो वे कुछ प्रश्न पूछ सकते हैं तथा पता लगा सकते हैं कि सर्वेक्षण के पूर्व सप्ताह में आप रोजगार कर रहे थे या बेरोजगार थे? साप्ताहिक स्थिति की जानकारी यह जानने के लिए ली जाती है कि क्या आप श्रम बल के अंग थे या नहीं, और यदि आप श्रम बल के सदस्य घोषित किए गए थे तो आप रोजगार में थे या बेरोजगार। यह रोजगार/बेरोजगारी की साप्ताहिक स्थिति से संबद्ध है। आपके श्रम बल की सदस्यता की दैनिक स्थिति तथा आप कार्य कर रहे हैं या नहीं, आदि की जानकारी विस्तार पूर्वक लेने के बाद रोजगार व बेरोजगार की औसत दैनिक-स्थिति निकाली जाती है।

संक्षेप में, सामान्य स्थिति बेरोजगारी का संबंध लोगों की संख्या से है जो वर्ष के अधिकांश भाग (> 183 दिनों) में कार्य करने के इच्छुक हों परंतु उन्हें 183 दिनों तक भी कार्य उपलब्ध न हो। यह बेरोजगारी का आकार है। इसे श्रम बल के आकार से भाग देकर हमें सामान्य स्थिति द्वारा बेरोजगारी दर प्राप्त होती है। इसी प्रकार दैनिक बेरोजगारी उन श्रम-दिवसों की ओर संकेत करती है जब लोग कार्य करने के इच्छुक होते हुए भी बेरोजगार हों। यह दैनिक स्थिति के आधार पर बेरोजगारी का आकार है। इसे उपलब्ध श्रम-दिवसों से भाग देकर, हम दैनिक बेरोजगारी दर निकाल सकते हैं।

भारत में बेरोजगारी

हमने पहले बताया ही है कि बेरोजगारी का अध्ययन ग्रामीण/शहरी (विभेद), स्त्री/पुरुष (विभेद), आयु (विभेद), शैक्षिक स्तरों में विभेद आदि के आधार पर किया जाता है। यहाँ हम अपनी चर्चा ग्रामीण/शहरी तथा पुरुष/स्त्री विभेदों तक ही सीमित रखेंगे, हम 1972-73 से श्रम-बल और कार्य बल के आकार तथा उनकी दरों के बारे में बताएँगे। श्रम बल, कार्य बल तथा बेरोजगार श्रम बल के बारे में जानने के लिए देखें सारणी 10.1। यह ध्यान रहे कि राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (NSS) के आँकड़े प्रतिचयन पर आधारित हैं। प्रतिचयन आँकड़ों से प्राप्त भागीदार-दरों को गुणा करके निरपेक्ष आँकड़े तथा अंतर्वेशन या बहिर्वेशन द्वारा जनसंख्या आँकड़े निकाले गए हैं।

हम सारणी में देख सकते हैं कि हमारा श्रम-बल 24 करोड़ से बढ़कर 41 करोड़ हो गया है अर्थात् इसमें बाईस वर्षों में दो-तिहाई वृद्धि हुई है। जहाँ ग्रामीण श्रम बल 20 करोड़ से बढ़कर 30 करोड़ हो गया है (50 प्रतिशत से थोड़ा अधिक)

सारणी 10.1

पुरुष/महिला तथा गामीण/शहरी विभेदों के आधार पर श्रम बल, कार्य बल तथा बेरोजगार श्रम बल

(करोड़ में)

वर्ष	*ग्रामीण पुरुष*	*ग्रामीण महिलाएँ*	*शहरी पुरुष*	*शहरी महिलाएँ*	*कुल*
श्रम बल					
1972-73	12.87	7.09	3.29	0.77	24.02
1977-78	14.45	8.36	4.14	1.21	26.16
1983	15.59	9.13	5.02	1.30	31.04
1987-88	16.50	9.51	5.85	1.58	33.44
1993-94	18.93	10.47	6.73	1.84	37.97
1999-00	20.02	10.50	8.07	2.00	40.67
कार्य बल					
1972-73	12.72	7.06	3.18	0.72	23.68
1977-78	14.14	8.01	3.88	1.04	27.07
1983	15.27	9.04	4.73	1.23	30.27
1987-88	16.05	9.20	5.50	1.45	32.20
1993-94	18.66	10.37	6.45	1.73	37.21
1999-00	19.68	10.40	7.71	1.89	39.68
बेरोजगारी					
1972-73	0.15	0.03	0.16	0.05	0.39
1977-78	0.31	0.35	0.26	0.17	1.09
1983	0.32	0.09	0.29	0.07	0.77
1987-88	0.45	0.31	0.35	0.13	1.24
1993-94	0.37	0.10	0.36	0.12	0.95
1999-00	0.32	0.10	0.29	0.09	0.80

स्रोत : *इंडिया इयर बुक 2001 मैनपावर प्रोफाइल, इंस्टीच्यूट ऑफ एप्लाइड मैनपावर रिसर्च, नई दिल्ली 2001।*

वहीं शहरी श्रम बल 4 करोड़ से बढ़कर 10 करोड़ हो गया है (150 प्रतिशत) । इसमें प्रवसन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही होगी। जैसा आप देख सकते हैं कि श्रम बल में शहरी महिलाओं 200 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, फिर भी वे श्रम बल का केवल 5 प्रतिशत ही हैं। इसका अर्थ है कि शहरी क्षेत्रों में अधिक-से-अधिक महिलाएँ अपने घर से बाहर काम करने की इच्छा रखती हैं। ग्रामीण महिलाएँ पहले से ही बाहर कार्य कर रही हैं। कार्य बल के क्षेत्र में भी लगभग ऐसी ही स्थिति है, अतः उसकी अलग से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं।

जहाँ तक यह बेरोजगार श्रम बल का प्रश्न है, विभिन्न वर्गों और विभिन्न अवधियों में काफी उतार-चढ़ाव हुए हैं। उदाहरण के लिए 1973-74 की तुलना में 1977-78 में सभी वर्गों में बेरोजगारी बढ़ी थी विशेष रूप से महिलाओं में। दूसरे अंतराल में, जहाँ पुरुषों में

बेरोजगारी कम नहीं हुई, महिलाओं में यह काफी कम हो गई। इस प्रवृत्ति की बार-बार पुनरावृत्ति होती रही है। 1999-2000 में बेरोजगारी 1993-94 या 1987-88 की तुलना में कम ही हुई थी, या कम से कम बढ़ी नहीं थी। फिर भी 1999-2000 में बेरोजगारी की निरपेक्ष संख्या 1972-73 की तुलना में दुगुनी थी।

हालाँकि जब हम यह जानने की कोशिश करते हैं कि श्रम-बल का कितना अनुपात बेरोजगार है तो हम पाते हैं कि श्रम बल में बेरोजगारी दर 4 प्रतिशत से ऊपर कभी नहीं बढ़ी है जिसमें निम्नतम दर केवल 1.6 प्रतिशत है। जब हम इसे भिन्न-भिन्न वर्गों में बाँट देते हैं तो हम पाते हैं कि शहरी क्षेत्रों की महिलाओं में बेरोजगारी उच्चतम है, यद्यपि इसमें काफी उतार-चढ़ाव होते रहे। 1999-2000 में भी सभी वर्गों की तुलना में इस वर्ग में बेरोजगारी उच्चतम थी। देखें सारणी 10.2 ।

क्या ये दर इतने कम हैं कि इनकी उपेक्षा की जा सकती है? क्या हम यह कह सकते हैं कि भारत में बेरोजगारी की समस्या नहीं है? पश्चिमी देशों की तुलना में, ऐसा कहा जा सकता है कि बेरोजगारी की दरें कम हैं। हम ऐसा कह सकते हैं कि हमारी समस्या गरीबी है जबकि उनकी बेरोजगारी।

दैनिक बेरोजगारी सामान्य बेरोजगारी की तुलना में दुगुनी/तीन गुनी अधिक है। इसका अर्थ यह है कि यद्यपि वे लोग वर्ष के अधिकांश भाग में बेरोजगार नहीं होते, वे उन दिनों में बेरोजगार होते हैं जब वे कार्य करने के इच्छुक व उपलब्ध होते हैं। 1999-2000 में विभिन्न वर्गों में बेरोजगारी दर लगभग 7 प्रतिशत थी, सिर्फ शहरी महिलाओं के वर्ग को छोड़कर जिसमें यह 0.4 प्रतिशत थी। शिक्षित बेरोजगारों की स्थिति पर विचार करने पर हम देखते हैं कि जहाँ शहरी पुरुषों में बेरोजगारी 6-7 प्रतिशत है, वहीं यह ग्रामीण महिलाओं में स्नातकों के लिए 30 प्रतिशत तथा मैट्रिक पास के लिए 15 प्रतिशत जैसी ऊँची दरें हैं। अतः शिक्षा का स्तर जितना ऊँचा है, बेरोजगारी की दर उतनी ही अधिक होगी।

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि निम्न बेरोजगारी दर गरीबी की द्योतक हो सकती हैं। गरीब लोग काम किए बिना बहुत दिनों तक नहीं रह सकते, मजदूरी चाहे कितनी भी हो। परंतु अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं तथा मानव संसाधनों की उपलब्धता में पर्याप्त असंतुलन है। इसे

सारणी 10.2

ग्रामीण/शहरी तथा महिला/पुरुष विभेद के आधार पर बेरोजगारी दर की सामान्य स्थिति

(उन वर्गों के श्रम बल के प्रतिशत रूप में)

वर्ष	*ग्रामीण पुरुष*	*ग्रामीण महिला*	*शहरी पुरुष*	*शहरी महिला*	*कुल*
1972-73	1.2	0.5	4.8	6.0	1.6
1977-78	2.2	5.5	6.5	17.8	3.9
1983	2.1	1.4	5.9	6.9	2.5
1987-88	2.8	3.5	6.1	8.5	3.7
1993-94	2.0	1.4	4.5	8.2	2.5
1999-00	2.1	1.0	4.5	5.7	2.0

स्रोत : *सारणी 10.1 के आधार पर।*

संरचनात्मक बेरोजगारी कहते हैं। श्रम बल में आने वाले नए लोग अधिक नई नौकरियों को ढूँढ़ते होंगे, किसी युवक को ढूँढ़ने पर नौकरी न मिलने के कारण होने वाली निराशा की बात छोड़ दें, तो भी यह राष्ट्रीय संसाधनों की क्षति है जो उनकी शिक्षा व पालन पोषण में लगे हैं।

अभ्यास

1. रोजगार का महत्त्व बताएँ।
2. बेरोजगारी किस प्रकार एक आर्थिक तथा सामाजिक समस्या भी है?
3. महिलाओं के गृह कार्यों को कार्य क्यों नहीं मानते?
4. आप स्वैच्छिक बेरोजगारी से क्या समझते हैं? क्या यह पूरा स्वैच्छिक है?
5. अनैच्छिक बेरोजगारी का अर्थ बताएँ।
6. खुली बेरोजगारी तथा प्रच्छन्न बेरोजगारी के बीच अंतर बताओ? उदाहरणों द्वारा समझाएँ।
7. क्या प्रच्छन्न बेरोजगारी केवल कृषि में ही पाई जाती है? यह और कहाँ पायी जाती है?
8. संरचनात्मक तथा चक्रीय बेरोजगारी का अर्थ समझाएँ।
9. संरचनात्मक तथा अस्थाई बेरोजगारी के बीच अंतर बताएँ।
10. मौसमी बेरोजगारी से आप क्या समझते हैं?
11. श्रम बल, कार्य बल तथा बेरोजगारी की अवधारणाओं का वर्णन करें तथा इन तीनों के बीच के संबंध को बताएँ।
12. आप सामान्य रोजगार स्थिति तथा बेरोजगारी से क्या समझते हैं?
13. आप श्रम बल/कार्य बल भागीदारी दर कैसे निकालते हैं?
14. सामान्य स्थिति के अनुसार बेरोजगारी दर क्या हैं?
15. दैनिक स्थिति के अनुसार बेरोजगारी की दर को समझाने का प्रयत्न कीजिए।
16. श्रम बल का वर्तमान आकार क्या है तथा विभिन्न वर्गों में यह किस प्रकार वितरित है?
17. समय के साथ बेरोजगारी की निरपेक्ष संख्या में कितनी वृद्धि हुई है?
18. बेरोजगारी दरों की प्रवृत्ति एवं बेरोजगारी की दरों में परिवर्तन की विवेचना कीजिए?
19. आपके विचार से बेरोजगारी अधिक है या कम, बताएँ।
20. गरीबी तथा बेरोजगारी के बीच कैसा संबंध है?

गतिविधियाँ

जो लोग काम की तलाश में हैं उनका परीक्षण (observation) नोट करें। उन (observations) का विश्लेषण करके यह देखें कि क्या हम इस अध्याय में दिए गए वर्गों में उनकी स्थिति वर्णित कर सकते हैं।

अध्याय 11

आधारिक संरचनात्मक चुनौतियाँ

परिचय

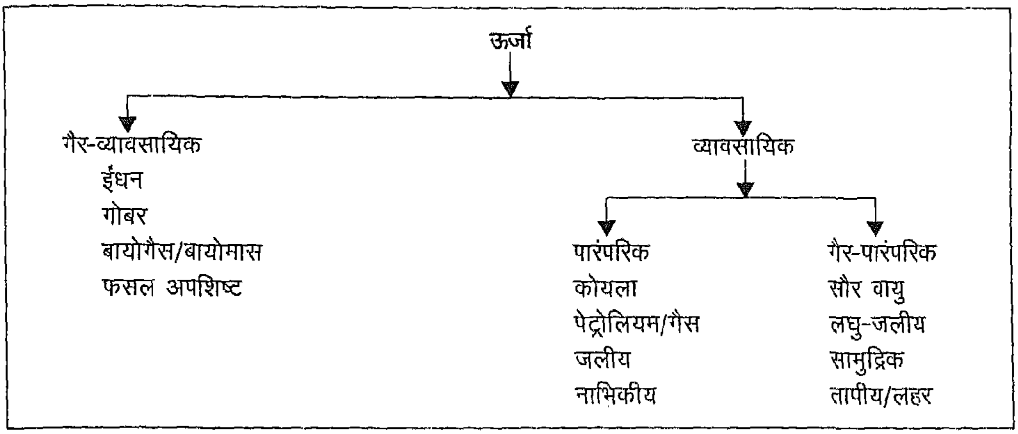
आधारिक संरचना तथा इसके द्वारा प्रदत्त सेवाएँ विकास की गति को बढ़ाने तथा घटाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। उच्च कोटि की आधारिक संरचना, जो सक्षम तथा प्रयोगकर्त्ताओं के लिए अल्प-लागत वाली हो, खर्चीली होती है तथा इनकी पक्वनावधि लंबी होती है। इनके विकास के लिए आवश्यक अत्यधिक निवेश इस बात के सूचक हैं कि इसमें सभी क्षेत्रकों की भागीदारी — सार्वजनिक, निजी तथा विदेशी आवश्यक हो सकती है।

कई आधारिक सेवाओं का प्रचालन काफी बड़े पैमाने पर होता है अतः इनका स्वरूप एकाधिकारिक हो जाता है। ऐसी स्थितियों में एक नियंत्रक ढाँचे का गठन किया जाता है चाहे यह संरचना सार्वजनिक क्षेत्र में हो या निजी क्षेत्र में। ये नियंत्रक ऐसे होने चाहिएं जिनका, इन सेवाओं को चलाने या कुशलतापूर्वक न चलाने और/या इनकी कीमतों को लागत से काफी अधिक रखने में कोई निहित स्वार्थ नहीं होना चाहिए।

हमने पहले बताया था कि आधारिक संरचनाओं को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है– आर्थिक और सामाजिक। हम यहाँ तीन प्रकार की आर्थिक और दो प्रकार की सामाजिक आधारिक संरचनाओं का वर्णन करेंगे। ये हैं– ऊर्जा, परिवहन, संचार, स्वास्थ्य तथा शिक्षा।

ऊर्जा

जैसा हमने पिछले अध्यायों में देखा था, उत्पादन प्रक्रियाओं तथा उपभोग क्रियाओं में ऊर्जा एक महत्त्वपूर्ण आगत है। सभी देशों में आधुनिक, आर्थिक विकास ऊर्जा के अत्यधिक प्रयोग से संबद्ध हैं। पिछले पचास वर्षों में जनसंख्या की तीन गुनी से कम वृद्धि के लिए कुल ऊर्जा प्रयोग में चार गुनी वृद्धि हुई है। यह 1953-54 में 90 एम.ओ.टी.ई. (मिलियन टन ऑफ आइल इक्वीवैलेंट/MOTE) से बढ़कर 1996-97 में 375 एम.ओ.टी.ई. हो गई है। परंतु यदि हम केवल व्यावसायिक ऊर्जा की बात करें तो यह 25 एम.ओ.टी.ई. से बढ़कर 250 एम.ओ.टी.ई. हो गयी है– *अर्थात्* इसमें दस-गुनी वृद्धि हुई है। यह स्पष्ट है कि अधिकांश वृद्धि अव्यावसायिक ऊर्जा से व्यावसायिक ऊर्जा में परिवर्तन के कारण हुई है। कुल ऊर्जा उपभोग में व्यावसायिक ऊर्जा का अंश पचास के दशक के आरंभ में 28 प्रतिशत से बढ़कर नब्बे के दशक के अंत तक 66 प्रतिशत हो गया। व्यावसायिक ऊर्जा के प्रयोग में जहाँ दस गुनी वृद्धि हुई है वहीं अव्यावसायिक ऊर्जा के प्रयोग में केवल दो गुनी। हमारा प्रति व्यक्ति ऊर्जा उपभोग, जो 1953-54 में 0.25 एम.ओ.टी.ई. था, 1953-54 में बढ़कर 0.36 एम.ओ.टी.ई. हो गया। इसे काफी कम मानते हैं। प्राथमिक संसाधनों की सीमित संभावनाओं को



ध्यान में रखते हुए, हमें ऊर्जा की उपलब्धता को बढ़ाने के लिए जहाँ तक संभव हो सके ऊर्जा का संरक्षण करना चाहिए।

प्राथमिक ऊर्जा संसाधनों तथा अंतिम ऊर्जा संसाधनों के बीच सूक्ष्म अंतर है। जब ऊर्जा उत्पादन में कोयले का प्रयोग तथा उद्योगों के द्वारा ऊर्जा का प्रयोग किया जाता है तो हम कोयले को प्राथमिक ऊर्जा संसाधन तथा ऊर्जा को अंतिम संसाधन कहते हैं (इस विभेद के अनुसार, लकड़ी जिसे चारकोल बनाकर प्रयोग में लाया गया वह प्राथमिक संसाधन है तथा चारकोल अंतिम संसाधन)। कोयला, पेट्रोलियम उत्पाद तथा प्राकृतिक गैस ये सभी प्राथमिक तथा अंतिम दोनों संसाधन हैं क्योंकि इनका प्रयोग प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से होता है, जबकि विद्युत केवल अंतिम संसाधन है। व्यावसायिक ऊर्जा के प्रमुख प्रयोगकर्त्ता हैं– उद्योग (50%), परिवहन (22%), घरेलू प्रयोग (12%), कृषि (9%), व्यावसायिक संस्थान (1%)।

ऊर्जा क्षेत्रक के विकास पर योजना व्यय एक योजना से दूसरी योजना के बीच बढ़ता रहा तथा प्रथम योजना में 20 प्रतिशत से बढ़कर नवीं योजना में 30 प्रतिशत हो गया, केवल दूसरी योजना के अपवाद को छोड़कर, जब यह केवल 12.5 प्रतिशत था। कार्यक्षमता में वृद्धि के साथ सकल घरेलू उत्पाद के संदर्भ में ऊर्जा-प्रयोग की लोच में कमी आ रही है।

हम यहाँ केवल विद्युत तक ही अपनी चर्चा सीमित रखेंगे, क्योंकि यह विनिर्माण उद्योग का प्रधान परिवाहक (Prime mover) है। आज कृषि भी इस पर काफी दूर तक निर्भर है।

विद्युत

विद्युत वास्तविक ऊर्जा है। वर्तमान प्रौद्योगिकी वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन में बिजली का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करती है। अधिकांश घरेलू कामों में भी इसकी आवश्यकता होती है। कृषि भी अपने कई प्रकार के कार्यों के लिए बिजली पर ही निर्भर है। उद्योगों के बाद, कृषि में बिजली का सबसे अधिक उपभोग होता है। रेल द्वारा अधिकांश माल या यात्री बिजली द्वारा (Electrified) पटरियों से ले जाए जाते हैं। इसे तेल-आधारित (Oil-based) ऊर्जा की तुलना में स्वच्छ ऊर्जा माना जाता है। हमें आर्थिक कीमतों पर भरोसेमंद और उच्च कोटि की विद्युत सेवाओं की आवश्यकता है।

विद्युत-आपूर्ति में कई बार खराबी भी आ जाती है। यद्यपि विद्युत-क्षेत्रक की क्षमता में वृद्धि हुई है फिर भी बिजली की उपलब्धता का अभाव है। जबकि 1996-97 में यह अभाव लगभग 12 प्रतिशत था तथा अब तक का अधिकतम अभाव लगभग 18 प्रतिशत है। इसका मुख्य कारण यह है कि बिजली की माँग इसकी आपूर्ति से अधिक रही है।

संयंत्रों (Plants) के अकुशल परिचालन भी काफी दूर तक इसके लिए जिम्मेदार हैं।

भारत में तीन प्रकार के विद्युत-उत्पादक संयंत्र/कारखाने (Plants) हैं — जल-विद्युत/पन बिजली (Hydro-electric), ताप-बिजली (Thermal) तथा नाभिकीय (Nuclear)। नाभिकीय संयंत्रों में प्रतिष्ठापित क्षमता का 3 प्रतिशत तथा विद्युत-आपूर्ति का 4 प्रतिशत उत्पादित होता है। अपारंपरिक संसाधनों (सौर, गोबर गैस तथा वायु) का प्रयोग करने वाले कारखानों द्वारा नाममात्र की आपूर्ति की जाती है। एक बार यदि बिजली का उत्पादन हो गया तो यह उसी प्रक्रिया द्वारा पहुँचाई जा सकती है। स्थानीय स्तरों पर बिजली डाउनलोड की जाती है (Downloaded) तथा वितरित की जाती है। अतः विद्युत-आपूर्ति के तीन स्तर हैं– उत्पादन, प्रसरण/संचरण (Transmission) तथा वितरण। निजी निवेशकर्त्ताओं के प्रवेश को उत्पादन व वितरण के क्षेत्र में प्रोत्साहित किया जाता है, परंतु प्रसरण/संचरण के क्षेत्र में नहीं।

पिछले पचास वर्षों में हमारी विद्युत-उत्पादन करने की कुल प्रतिष्ठापित क्षमता जो 1500 मेगा वॉट से भी कम थी, बढ़कर 1 लाख मेगा वॉट (1,00,000 MW) से भी अधिक हो गई। वर्तमान क्षमता का 72 प्रतिशत ताप क्षेत्र से तथा 25 प्रतिशत जल-क्षेत्र से प्राप्त होता है। हम प्रतिवर्ष लगभग 4000 मेगा वॉट क्षमता बढ़ा रहे हैं। ऊर्जा के उत्पादन में, वाष्पीय ऊर्जा का योगदान 80 प्रतिशत तथा जल का 16 प्रतिशत। जल-ऊर्जा परियोजनाएँ संग्रहण (भंडारण) सुविधाओं सहित ऊर्जा प्रक्रिया को अधिकतम शक्ति की सहायता प्रदान करती हैं। पश्चिमी तथा पूर्वी क्षेत्रों में जल-ऊर्जा द्वारा अधिकतम सहायता (Peaking support) की कमी है, अतः वाष्प-संयंत्रों को यह कार्य पूरा करना चाहिए।

केंद्र सरकार, राज्य सरकारें तथा निजी क्षेत्र जल, वाष्प तथा गैस का प्रयोग कर ऊर्जा उत्पादन करती हैं। इसके अतिरिक्त केंद्र के अधीन ऐसे संयंत्र हैं जो नाभिकीय विखण्डन प्रौद्योगिकी (Nuclear fission technology) का प्रयोग करती है। केंद्र सरकार नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन (NTPC), नेशनल हाइड्रोइलेक्ट्रिक पावर कारपोरेशन (NHPC) तथा न्यूक्लियर पावर कारपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (NPCIL) के द्वारा उत्पादन का कार्य करती है। राज्य सरकारों के अपने राज्य विद्युत बोर्ड हैं। इसके अतिरिक्त सेन्ट्रल इलेक्ट्रिसिटी ऑथोरिटी तथा सेन्ट्रल इलेक्ट्रिक रेगुलेटरी कमीशन भी है। नीचे हम इन पर विचार करेंगे।

संयंत्र लोड फैक्टर (Plant Load Factor)

किसी ताप संयंत्र की परिचालन क्षमता की जाँच करने के लिए प्लांट लोड फैक्टर नामक सूचक का प्रयोग किया जाता है। यदि कुल क्षमता का लगातार एक वर्ष तक प्रयोग किया जाए, अर्थात् सभी 365 दिनों तक 24 घंटे कुल 72000 × 24 × 365 = 63,07,20,000 मिलियन वॉट घंटे, जो 6,30,720 मिलियन किलो वॉट घंटे या 630 मिलियन KWh के बराबर होता है। प्रौद्योगिक कारणों के लिए कुछ छूटें दी जाती हैं तथा हम

600 बिलियन KWh को अधिकतम उत्पादन मानते हैं। परंतु हम वस्तुतः 400 मिलियन KWh का उत्पादन कर रहे हैं। अतः संयुक्त प्लान्ट लोड फैक्टर लगभग 66 प्रतिशत है।

हालाँकि यदि हम इसकी क्षेत्रीय प्रवृत्तियों पर ध्यान दें तो हम देखते हैं कि उत्तर पूर्व में 18 प्रतिशत से दक्षिण में 80 प्रतिशत तक हो सकता है। जहाँ उत्तर तथा पश्चिम में यह 72 प्रतिशत है, पूर्व में यह लगभग 50 प्रतिशत है। निजी क्षेत्रक के संयंत्र 75 प्रतिशत हैं, पूर्व में यह लगभग 50 फैक्टर दिखाते हैं तथा केंद्रीय (सरकार) क्षेत्रक में 72-73, परंतु राज्य (सरकार) क्षेत्रक केवल लगभग 64 । विश्लेषणों से पता चलता है कि राज्य तथा केंद्र सरकार समान क्षमता वाले हैं, यदि पूर्व तथा उत्तर-पूर्व के संयंत्रों को छोड़ दिया जाए। परंतु इसका उल्लेख भी आवश्यक है कि हमने हाल के कुछ वर्षों में प्लांट लोड फैक्टर में पर्याप्त सुधार कर लिया है, विशेषकर जब से वाष्प-संयंत्रों का प्रबंधन एन.टी.पी.सी. के अधीन हो गया। परंतु अभी इसमें और सुधार की आवश्यकता है। कोयला-आधारित वाष्प-उत्पादन के बारे में उपलब्ध सूचनाओं से पता चलता है कि कुल प्लांट लोड फैक्टर अभी 70 प्रतिशत के आसपास है।

तेल-आधारित वाष्प संयंत्रों में विशेष तेल का उपभोग नब्बे के दौरान 7.8 मि.ली./KWh से घटकर 5.8 मि.ली./KWh हो गया। नाभिकीय ऊर्जा स्टेशनों में प्लांट लोड फैक्टर 1992-93 में 52 प्रतिशत से बढ़कर 1998-99 में 56 प्रतिशत हो गया।

पावर ग्रिड

चूँकि विद्युत-ऊर्जा के प्राथमिक स्रोत असमान रूप से वितरित हैं, अतः उत्पादन संयंत्र भी असमान रूप से वितरित हैं। यह आवश्यक नहीं कि उपभोक्ता इन उत्पादक संयंत्रों के निकट ही हों। अतः अधिकतर विद्युत ऊर्जा को काफी दूर तक ले जाना पड़ता है। उत्पादन तथा संचरण का विकास साथ-साथ नहीं हो रहा था। संचरण-लाइनों पर अधिक भार था (कम भार वाले संयंत्रों के लिए भी) जिससे काफी खराबी आ जाती तथा राज्य में यदि कोई अधिशेष (Surplus) होता तो वह भी समाप्त हो जाता। ऐसा सुझाव दिया गया कि संचरण बढ़कर यदि उत्पादन के बराबर करना हो तो इसके लिए इसमें उत्पादन के निवेश के 50 प्रतिशत निवेश की आवश्यकता है। अस्सी के दशक के अंत तक यह केवल 20 प्रतिशत था।

1989 में एक पावर ग्रिड कारपोरेशन की स्थापना की गई। इसमें देश के ऊर्जा संचरण को पाँच क्षेत्रीय ग्रिड़ों में बाँट दिया, यह सभी आपस में समन्वित हैं। इसमें बचत और विश्वसनीयता को बढ़ाने के लिए क्षेत्रीय ग्रिड़ों की सहायता से एक राष्ट्रीय ग्रिड स्थापित करने की योजना बनाई गई। 'एक राष्ट्र एक ग्रिड' का सपना 2012 तक पूरा हो सकेगा।

संचरण व वितरण घाटे (T & D Losses)

एक प्रमुख समस्या जिसके विषय में हम प्रायः समाचार पत्रों में पढ़ते हैं, वे संचरण और वितरण के घाटे हैं। इस घाटे का राष्ट्रीय औसत 23 प्रतिशत है तथा कुछ राज्यों में इससे भी अधिक है। दिल्ली में यह 50 प्रतिशत है। घाटा कुल कमी से अधिक है। इस घाटे को यदि बचा लिया जाए तो इससे नई क्षमता पर कम बोझ पड़ेगा। संचरण व वितरण के घाटों का कुछ अंश तकनीकमूलक है तथा कुछ लाइन-कर्मचारियों की सहायता से की गई चोरी व उठाई गिरी। यह सुझाव दिया गया

है कि निजीकरण से वितरण की काफी चोरी रोकी जा सकती है।

बिजली के विभिन्न प्रयोगकर्त्ताओं से अलग-अलग दरों पर प्रशुल्क लिए जाने का प्रचलन है। रेलवे से अधिकतम प्रशुल्क लिए जाते हैं तथा कई राज्यों में किसानों से कुछ भी नहीं लिया जाता है।

ग्रामीण विद्युतीकरण

ग्रामीण विद्युतीकरण का उल्लेख यहाँ आवश्यक है। मार्च 1996 के अंत तक 5, 87, 288 (सेन्सस 1991) के 85 प्रतिशत में बिजली प्रदान की जाती थी। 13 राज्यों में पूर्ण विद्युतीकरण की योजना थी। परंतु ग्रामीण-विद्युतीकरण को परिभाषित करना ही कठिन है। किसी गाँव को तभी विद्युतीकृत कहेंगे जब उस गाँव की राजस्व सीमा (Revenue boundary) के अंदर हर प्रकार के कार्य के लिए बिजली उपलब्ध हो। अतः गाँव की राजस्व-सीमा के भीतर एक ट्यूब-वेल का कनेक्शन भी गाँव को विद्युतीकृत गाँव का दर्जा दे देगा, भले ही एक भी घर में बिजली न हो या पारिवारिक उद्योग बिना बिजली के चलें। कई तथाकथित विद्युतीकृत गाँवों में ऊर्जा का कनेक्शन माँगे जाने पर उपलब्ध नहीं होता है। अतः अब ऐसा निश्चित किया गया है कि किसी गाँव को तभी विद्युतीकृत कहा जाएगा, जब 'गाँव की राजस्व सीमा के अंतर्गत, लोगों की बस्तियों में किसी भी उद्देश्य के लिए बिजली उपलब्ध हो।'

पम्पसेटों की कुल संख्या दो करोड़ हो गई है परंतु ऊर्जा से चलने वालों की अभी 1.2 करोड़ से अधिक नहीं होगी। जब सरकार को बिजली से चलने वाले पम्पसेटों की कमी है, वहीं यह भी अवश्य बता देती है कि इन पम्पसेटों में ऊर्जा की बहुत अधिक खपत होती है। ऐसा दो कारणों से होता है, एक तो यह कि किसानों से अल्प प्रशुल्क लिया जाता है तथा ऊर्जा द्वारा पम्पसेटों को आरंभ करने से धरती के नीचे के जल का अति शोषण हो सकता है।

हमारे शासकीय/सरकारी गाँव

आप जानते होंगे कि हमारे गाँव राजस्व ग्राम हैं जो कि ऐसे भूमि खण्ड हैं जिनके कुछ भागों में लोगों का निवास हो सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि किसी गाँव में खेत या अन्य प्रकार की संस्थाएँ हो, परंतु कोई घर या परिवार न हो। ये गाँव बसे हुए नहीं होते हैं। ऐसे गाँवों की संख्या लगभग 50,000 है। एक गाँव में एक से अधिक बसे हुए क्षेत्र या खेड़े (Hamlets) हो सकते हैं, जो एक-दूसरे से सटे हुए न भी हों सकते हैं। खेड़ों की कुल संख्या 10,00,000 से अधिक है । गाँवों की संख्या छः लाख से ऊपर है।

परिवहन

रेल और सड़कें परिवहन के दो प्रकार हैं जिनके द्वारा अधिकांश माल और यात्रियों का यातायात होता है। तटीय नौ-परिवहन तथा अंतःस्थलीय/आंतरिक जल-परिवहन का कुल यातायात में योगदान केवल 2 प्रतिशत है। हमने पहले ही देखा है कि रेल-परिवहन पर्यावरण-संरक्षण हैं। इनमें ऊर्जा का अपव्यय नहीं होता तथा अधिक सुरक्षित भी होते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय परिवहन-नीति समिति 1980 तथा हमारी योजनाओं में परिवहन क्षेत्र में रेलों की भूमिका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मानी गई। हालांकि तथ्य यह है कि माल-परिवहन में रेलवे का अंश 1950-51 में 90 प्रतिशत से सीधे घटकर 1995-96 में 60 प्रतिशत तथा उसी अवधि में यात्री-परिवहन में 70 प्रतिशत से घटकर 20 प्रतिशत हो गया। अधिकांश विकसित देशों में ऐसा देखा गया है कि रेलवे से यातायात कम हो

रहा है तथा सड़कों और वायुयानों द्वारा यातायात बढ़ रहा है (क्योंकि इनकी स्थिति रेलवे से बेहतर हो गई थी)। परंतु यह परिवर्तन उतना आश्चर्यजनक नहीं था। परंतु महादेशीय आकार के देशों जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, चीन, रूस आदि में रेलवे ने अपनी महत्ता बनाए रखी है।

भारत में रेलवे लाइनों की क्षमता बढ़ाकर इसकी माँग के बराबर करने में पर्याप्त वित्त की कमी का सामना करना पड़ा है। दूसरी ओर, वाहकों ने पूरे देश को सड़कों द्वारा भलीभाँति जोड़ दिया है, आर्थिक सहायता द्वारा डीजल को सस्ता बनाया गया, वाहनों की खरीददारी में बैंकों ने सुविधापूर्वक कर्ज प्रदान किए। प्रायः इसका कारण स्वामित्व बताया जाता है, रेलवे पूरी तरह सार्वजनिक स्वामित्व के अंतर्गत है जबकि सड़क परिवहन, विशेषकर माल परिवहन अधिकांशतः निजी उद्यमियों के हाथों में है। यह एक सापेक्ष दृश्य है, अन्यथा दोनों ही क्षेत्रों में पिछले पचास वर्षों में काफी सुधार हुआ है।

रेल

जैसा कि आप जानते हैं कि भारतीय रेल विश्व में सबसे बड़ा या दूसरा सबसे बड़ा रेल-तंत्र है। यह चारों ओर फैला हुआ एक विशाल तंत्र है जो 63,000 रूट कि.मी. है जिसमें से लगभग 45,000 में, ब्रोड गेज 15,000 कि.मी. में मीटर गेज तथा 3000 रूट कि.मी. में नैरो गेज है। कुल मार्ग का एक चौथाई (ब्रोड गेज का एक-तिहाई) विद्युतीकृत है। विद्युतीकृत मार्ग दो, तीन या कई स्थानों पर चार-चार एक साथ हैं अतः काफी अधिक माल और सवारियों का परिवहन करते हैं। यह कहा जा सकता है कि रेलवे ने देश के सामाजिक व आर्थिक विकास में एकीकरण की भूमिका निभाई है।

इस तथ्य के बावजूद कि रेलवे कम ऊर्जा का कम उपभोग तथा पर्यावरण संरक्षण में अधिक योगदान देते हैं, परिवहन क्षेत्र में रेल का बाजार अंश कम हो रहा है। इस अंश को बढ़ाने के प्रयास चल रहे हैं। हाल के वर्षों में रेलवे द्वारा कुल निवल टन किलोमीटर 30,000 करोड़ से अधिक का माल तथा 45,000 करोड़ से अधिक यात्री किलोमीटर का परिवहन किया गया। परंतु अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि रेलवे परिवहन सभी भारी कच्चे माल/अयस्क (कोयले एवं पेट्रोल सहित) तथा आवश्यक वस्तुओं जैसे खाद, खाद्यान्न (जहाँ ये उपलब्ध हों) का परिवहन करती है। यह ज्ञातव्य है कि कुछ समय से भारतीय रेलें मीटर गेज लाइनों को बड़ी लाइनों ब्रोड गेज में परिवर्तित कर तथा महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों के विद्युतीकरण द्वारा एकल गेज पद्धति नीति का अनुसरण कर रही है। आशा है, सुनहरे चतुर्भुज का विद्युतीकरण समाप्त हो जाए। नई लाइनों के निर्माण से अधिक व्यस्त क्षेत्रों, बहु-विधि लाइनें बनाने की योजना को अब महत्त्व दिया जा रहा है। रेलवे लाइनों की मरम्मत करना तथा उनमें सुधार लाना अति आवश्यक है क्योंकि हमारी लाइनें बहुत पुरानी और पुराने ढंग की हो गई हैं।

15.5 लाख कर्मचारियों के साथ भारतीय रेलवे सार्वजनिक उपक्रमों में सबसे बड़ा नियोजक हो गया है। परंतु यही (परिसम्पत्ति) अब भार स्वरूप प्रतीत हो रहा है क्योंकि मजदूरी बिल, पेंशन की जिम्मेदारियाँ परिचालन व्यय का एक प्रमुख अंग हो गई हैं। जैसा कि आप जानते हैं कि रेलवे संगठन में कुछ उत्पादक इकाइयाँ भी हैं। ऐसा निश्चय किया गया कि परिचालन से संबंद्ध विभाग जैसे यातायात-व्यावसायिक तथा परिवहन, इंजीनियरिंग मेकेनिकल, इलेक्ट्रिकल, स्टोर-लोको

सिगनैलिंग तथा टेलीकॉम और एकाउंट आदि) में उनकी क्षमताओं से 1.0 प्रतिशत से अधिक लोग नहीं लिए जाएंगे तथा उत्पादक इकाइयों (जैसे CLW, DLW, WAP, PCF, ICF, DCW आदि) को अपनी क्षमता से 0.5 प्रतिशत से अधिक लोगों को भर्ती करने की अनुमति नहीं मिलेगी।

रेलवे वस्तुतः एक व्यावसायिक उपक्रम है। हालाँकि ये सार्वजनिक क्षेत्रक में है और कोई भी सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम से ऐसी आशा नहीं की जाती कि वे केवल लाभ-अभिप्रेरण के साथ ही कार्य करें। उन्हें कई सामाजिक दायित्व भी पूरे करने होते हैं। इन्हें कई प्रकार की आर्थिक सहायताएँ भी मिली हुई होती हैं। माल के परिवहन में, विभिन्न वर्गों के मालों के लिए आर्थिक प्रति-सहायता भी दी जाती है तथा यात्री-क्षेत्रक में, विभिन्न वर्गों के यात्रियों को तथा उपनगरीय व गैर-उपनगरीय क्षेत्रकों के विभिन्न वर्गों के यात्रियों को आर्थिक उप-सहायता दी जाती है। कुछ ऐसी गैर-आर्थिक सेवाएँ हैं जैसे शाखा-लाइनें तथा कुछ उप-नगरीय लाइनें जो सामाजिक हित की दृष्टि से आवश्यक हैं। ऐसे उत्तरदायित्वों की लागत का अनुमान लगभग 4000 करोड़ रु. है।

वित्त की कमी या पुराने ढंग की प्रक्रियाओं के कारण, रेल-सेवाओं की आपूर्ति, मात्रा तथा कोटि दोनों ही दृष्टि से, पीछे हैं। अपनी सीमित क्षमता के कारण, रेलवे ने मूलभूत क्षेत्र के भारी माल ढोने पर अधिक ध्यान दिया तथा अन्य क्षेत्रों (जो भारी नहीं हों) की उपेक्षा की जिससे इसे महत्त्वपूर्ण राजस्व की कमी रही। माल के परिवहन द्वारा यात्री-यातायात को दी गई आर्थिक प्रति-सहायता की सामान्य नीति के कारण माल-वाहन शुल्क काफी बढ़ गए और इसके कारण रेलों द्वारा माल-वहन में कमी आ गई।

रेलवे ने अब यह जान लिया है कि इतने वर्षों में माल-भाड़े को बढ़ाने तथा यात्री-भाड़े को घटाने के कारण माल-वाहन के क्षेत्र में यह काफी महँगा हो गया तथा इससे रेलवे को काफी घाटा उठाना पड़ा। अब यह अपनी भूल का सुधार आर्थिक प्रति-सहायता के स्तर को घटाकर करने का प्रयास कर रहा है। पत्तनों के साथ बेहतर संबंध स्थापित करने के लिए रेलवे अब निजी-क्षेत्रक की भागीदारी को भी प्रोत्साहन दे रहा है। यह अपनी पार्सल-सेवाओं में भी सुधार का प्रयास कर रहा है।

संक्षिप्त रूपों का विस्तार और उनके कार्य

सी.एल.डब्ल्यू.	– चित्तरंजन लोकोमोटिव वर्क्स, चित्तरंजन (प.बं.), जो विद्युत इंजन बनाती है।
डी.एल.डब्ल्यू.	– डीजल लोकोमोटिव वर्क्स, वाराणसी (उ.प्र.), जो डीजल इंजन बनाती है।
डब्ल्यू.ए.पी.	– व्हील एण्ड एक्सल प्लांट, येलाहंका (कर्नाटक), जो व्हील और एक्सलें बनाती है।
आर.सी.एफ.	– रेल कोच फैक्टरी, कपूरथला (पंजाब), जो सभी प्रकार के रेलों के डिब्बे बनाती है, ए.सी. III-टीयर के डिब्बों सहित।
आई.सी.एफ.	– इन्टेग्रल कोच फैक्टरी, चेन्नई (तमिलनाडु), जो ई.एफ.यू., डी.एम.यू. तथा सभी ट्रेनों के एयरकंडीशन कोचों का निर्माण करती है, पैलेस ऑफ व्हील सहित।
डी.सी.डब्ल्यू.	– डीजल कॉम्पोनेन्ट वर्क्स, पटियाला (पंजाब), जो डीजल लोकोमोटिव के पार्ट बनाता है।

रेल मंत्रालय ने 1998 के अंतिम दिन रेलवे पद्धति के अध्ययन तथा इसके पुनर्गठन पर सुझावों के लिए एक विशेषज्ञ दल का गठन किया। इसने रेलवे बोर्ड का निगमन भारतीय रेलवे निगम के रूप में करने का प्रस्ताव दिया है और शुल्क-संरचना को नियंत्रित करने के लिए भारतीय रेल नियमन प्राधिकार (इंडियन रेलवे रेगुलेटरी ऑथोरिटी) की स्थापना का सुझाव दिया।

सड़क व सड़क-परिवहन

भारत में 35 लाख किलोमीटर लंबी सड़कें निर्मित हैं जिनपर 5 लाख सवारी बसें तथा 20 लाख माल-वाहक गाड़ियाँ चलती हैं। यह विश्व के सबसे बड़े सड़क-मार्गों में से एक है परंतु आधुनिक तीव्र गति से चलने वाली गाड़ियों के यातायात की दृष्टि से इसकी गुणवत्ता निम्न कोटि की है। वस्तुतः 50 प्रतिशत से कुछ ही अधिक पक्की सड़कें हैं। प्रति एक करोड़ लोगों में केवल 0.15 कि.मी. पक्की सड़क ही उपलब्ध है। इस दृष्टि से ये ब्राज़ील, थाइलैंड तथा कोरिया के समान तथा बांग्लादेश, नेपाल व श्रीलंका से थोड़ी बेहतर हैं। ब्राजील में 30 प्रतिशत, थाइलैंड में 50 प्रतिशत, दक्षिण कोरिया में 70 प्रतिशत, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में 85 प्रतिशत तथा भारत

राकेश मोहन समिति

रेल मंत्रालय (रेलवे बोर्ड) ने 31 दिसंबर 1998 को एक विशेषज्ञ समूह का गठन किया (अध्यक्ष, राकेश मोहन) जिसके निम्नलिखित उद्देश्य थे —

- भारतीय रेलवे के विस्तार तथा विकास कार्यक्रम की वित्तीय आवश्यकताओं का अनुमान लगाने के लिए रेलवे क्षेत्र का अध्ययन करना।
- 15 वर्ष की अवधि के दौरान अनुमानित निवेश के वित्त के लिए स्रोतों की पहचान करना।
- विकसित देशों में रेल-यातायात सुविधाओं की संरचना तथा स्वामित्व के निदर्शों का अध्ययन करना।
- सुव्यवस्थित विस्तार को आगे बढ़ाने, प्रतिस्पर्धा के वांछित स्तर को बढ़ावा देने तथा सुविधाओं की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए उपभोक्ताओं के अधिकारों की रक्षा करने के लिए उपयुक्त नियमों का निर्धारण करना। विशेषज्ञ-समूह ने यह पाया कि वास्तविक मजदूरी में वृद्धि उत्पादकता में वृद्धि की तुलना में बहुत अधिक थी जो रेलवे की वित्तीय समस्या का मुख्य कारण था। इस समिति ने निम्न महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए :

1. क्षमता में वृद्धि तथा सुविधाओं के आधुनिकीकरण तथा विकास द्वारा वृद्धि की ऊँची दरें प्राप्त करने के साथ ही लागत को कम करने के उपाय ढूंढ़ना।
2. विकृतियों को दूर करने के लिए माल-भाड़े की संरचना का वैज्ञानिक पुनर्गठन तथा शुल्कों का पुनर्संतुलन करना।
3. मालगाड़ियों की गति को बढ़ाना, ऊँचे दर्जे की क्षमताओं को बढ़ाना, पहले से चलने वाली गाड़ियों की स्थिति को सुधारना, सिगनल व संचार पद्धति को सुधारना।
4. भारतीय रेलवे का पुनर्गठन होना चाहिए। भारत सरकार का कार्य केवल नीति-निर्धारण होना चाहिए। भारतीय रेलवे का निगमन भारतीय रेल निगम के रूप में होना चाहिए। शुल्कों के नियम हेतु भारतीय रेल प्राधिकरण की स्थापना होनी चाहिए।

में केवल 20 प्रतिशत पक्की सड़कें अच्छी दशा में हैं।

आधुनिक मोटर परिवहन के साधनों का वर्णन करने से पहले हम मोटरीकृत परिवहन के साधनों की चर्चा करें। हाथ-रिक्शे, साईकिल-रिक्शे, हाथ-गाड़ियाँ (माल व यात्री दोनों), ताँगा, बैलगाड़ी, भैंसे तथा ऊँट तथा माल-वाहक पशु आदि परिवहन के गैर-मोटरीकृत साधन हैं। हमारे यहाँ लगभग 50 लाख साईकिल-रिक्शे (5 लाख बसों और 20 लाख माल वाहक गाड़ियों की तुलना में) तथा 850 लाख भारवाहक पशु हैं जो पर्याप्त माल व यात्रियों का परिवहन कम दूरियों के लिए करते हैं। ये कम खर्चीले, पर्यावरण-संरक्षक तथा प्रौद्योगिकी के मामले में सरल होते हैं परंतु गैर-मोटरीकृत होने के कारण ये प्रौद्योगिकी की गतिहीनता तथा मनुष्यों की दुर्दशा के भी द्योतक हैं।

पिछले अध्याय में आपने अवश्य ध्यान दिया होगा कि हमने अपनी सड़कों को राष्ट्रीय राजमार्गों, राज्य राजमार्गों तथा अन्य प्रकार के मार्गों में वर्गीकृत किया है। राष्ट्रीय राजमार्ग 58,000 कि.मी. में है तथा राजकीय राजमार्ग 1,58,000 कि.मी. में। राष्ट्रीय राजमार्ग मुख्य मार्ग हैं जो कुल पक्की सड़कों का 4-5 प्रतिशत भाग हैं तथा कुल सड़क-परिवहन की 45 प्रतिशत आवश्यकताएँ पूरी करते हैं। कुछ वर्षों पहले तक (1996) राष्ट्रीय राजमार्गों की 3-4 प्रतिशत सड़कें, बहु-पथ (Multi-lanes) सड़कें, 75 प्रतिशत मानक द्वि-पद प्रतिशत मानक एकल-पथ (Single lanes) सड़कें थीं। राज्य राजमार्ग बिरले ही बहु-पथ थे और केवल 20 प्रतिशत राज्य राजमार्ग द्वि-पथ थे। केवल 36 प्रतिशत राज्य राजमार्ग एकल-पथ के तथा अन्य 36 प्रतिशत राज्य राजमार्ग निम्न स्तर के थे। कुछ राज्य राजमार्गों पर तो यातायात राष्ट्रीय राजमार्गों की तरह अधिक है। मार्गों को कई पथों में बाँटना या उन पर उपरिपुल बनाना इस बात पर निर्भर करता है कि प्रतिदिन वाहनों की कितनी संख्या (जिसे यात्री कार-इकाइयों के रूप में मापा जाता है) उन पर से होकर गुजरती है।

राष्ट्रीय राजमार्गों के बड़े खण्डों में तथा राज्य राजमार्गों के कुछ खण्डों में उनकी अनुमानित क्षमताओं का शत-प्रतिशत से अधिक प्रयोग हो रहा है जिसके परिणामस्वरूप गति में कमी, उच्च वाहन-प्रचालन लागत, पर्यावरण-प्रदूषण तथा दुर्घटनाओं की अधिकता आदि दृष्टिगोचर हैं। हाल के कुछ वर्षों में छूटी हुई कड़ियों, उपमार्गों तथा पुलों का निर्माण, टूटी-फूटी सड़कों की मरम्मत, एकल-पक्ष सड़कों का द्वि-पथ में तथा द्वि-पथ का चार-पथ में परिवर्तन/विस्तार आदि हमारे मुख्य कार्यक्रम रहे हैं।

राष्ट्रीय राजमार्गों के दो प्रमुख हिस्से हैं जिन्हें चार-पथ मार्ग बनाने का लक्ष्य है। ये हैं- (i) चारों महानगरों दिल्ली, मुंबई, चेन्नई तथा कोलकाता को जोड़ती हुई 6000 कि.मी. लंबा सुनहरा चतुर्भुज, तथा (ii) उत्तर से दक्षिण में श्रीनगर को कन्या कुमारी से (दिल्ली, झाँसी, बंगलौर से होकर) तथा पूरब से पश्चिम में सिलचर को पोरबंदर से जोड़ने वाला (कानपुर, झाँसी तथा उदयपुर होकर) 7000 कि.मी. लंबा गलियारा। वर्ष 1998 में आरंभ की गई राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना द्वारा सुनहरे चतुर्भुज का कार्य वर्ष 2003 तक तथा दोनों गलियारों के कार्य वर्ष 2007 तक पूरे हो जाने की आशा है।

राष्टीय राजमार्गों के उच्च सघनता वाले गलियारे

दिल्ली-मुंबई : जयपुर, अजमेर, उदयपुर, अहमदाबाद से होकर।

मुंबई-चेन्नई : पुणे, सतारा, बेलगाम, चित्रदुर्ग, बंगलौर से होकर।

चेन्नई-कोलकाता : चेन्नई, विजयवाड़ा, विशाखापट्टनम्, भुवनेश्वर, बंगड़ी पोसी से होकर।

दिल्ली-कोलकाता : आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, बरही से होकर।

ग्रामीण सड़कें

हमारे गाँव राष्ट्रीय/राज्य/जिला मार्गों से भली-भाँति जुड़े हुए नहीं हैं। धन की कमी के कारण सड़क विकास के कार्यों को एक-एक करके हम पहले अधिक जनसंख्या वाले, जैसे 1000/1500 से अधिक जनसंख्या सहित, गाँवों में प्रवेश-मार्गों का निर्माण करेंगे। इस पर आधारित संरचना को प्रोत्साहन देने के लिए, हाल ही में एक प्रधानमंत्री ग्राम सड़क परियोजना की घोषणा की गई है। इसका उद्देश्य 500 से ऊपर जनसंख्या वाले सभी गाँवों को एक अच्छी और हर मौसम के योग्य संयोजक सड़क प्रदान करना है।

जल-परिवहन

जल-परिवहन के तीन घटक हैं– विदेशी व्यापार का 90 प्रतिशत भाग का 11 प्रमुख तथा 139 लघु बंदरगाहों द्वारा नौवहन, कोयले, पेट्रोल, लौह-अयस्क आदि भारी माल का 5560 कि.मी. समुद्री तटीय नौवहन, 15,000 कि.मी. जहाज जाने योग्य जलमार्ग में अंतरदेशीय जल परिवहन जो कुल यातायात का केवल 1 प्रतिशत (टन कि.मी. के रूप में) है।

अंतरराष्ट्रीय नौवहन

हमारे जहाजों द्वारा 90 प्रतिशत से अधिक परिमाण तथा 80 प्रतिशत से अधिक मूल्य के अंतरराष्ट्रीय व्यापार किए जाते हैं, जिनका स्वामित्व 80 कंपनियाँ करती हैं। व्यापार की मुख्य मदें हैं– पेट्रोल, लौह-अयस्क, कोयला, खाद तथा कन्टेनर, जिनका कुल-वजन 200 मिलियन टन है।

तटीय नौवहन

यह लंबी दूरी तक भारी सामान पहुँचाने के लिए बहुत सस्ता तथा अल्प ऊर्जा वाला परिवहन साधन है क्योंकि नौवहन सहायक सामग्रियाँ तथा अंतिम स्टेशन पर उपलब्ध सुविधाओं के अतिरिक्त इनके लिए किसी अन्य अतिरिक्त निवेश की आवश्यकता नहीं होती। इसके समांतर भूमि परिवहन का यह एक प्रभावशाली वैकल्पिक साधन है। अन्य साधनों की भीड़-भाड़ को कम करने और/या ईंधन-उपभोग की बचत करने के लिए, रेल/सड़क माल-वाहन को पूर्वी तट पर चेन्नई और विशाखापट्टनम के समुद्री मार्ग द्वारा भेजा जा सकता है। समुद्री नौवहन के अंतर्गत वाष्प, कोयले तथा पेट्रोल का व्यापार आता है। दुर्भाग्यवश सीमा-शुल्क की जटिल प्रक्रियाएँ, अंतरराष्ट्रीय स्तर का उच्च तथा छोटे बंदरगाहों पर निम्न कोटि की आधारिक संरचनाओं की उपलब्धता ने जहाजों के मालिकों को विस्तृत रूप से इस कार्य को करने से हतोत्साहित किया है, यद्यपि पूरा तटीय-नौवहन केवल भारतीय जहाजों के लिए ही सुरक्षित है।

अंतरदेशीय जल परिवहन

यह भारी सामग्रियों के लिए एक सस्ता और ऊर्जा की कम खपत वाला परिवहन साधन है, यदि यह

समुद्र में किसी विशेष स्थान तक ही आना-जाना करे। यद्यपि भारत के पास 14544 कि.मी. जहाज चलाने योग्य जल-मार्ग उपलब्ध है, परंतु केवल मशीनीकृत जहाजों के लिए मुख्य नदियों पर 5200 कि.मी. तथा नहरों पर 500 कि.मी. उपयुक्त हैं। शुष्क मौसम में पानी कम हो जाने से चौड़ाई भी कम हो जाती है। किनारों का कटाव, नदी की तलछटी में मिट्टी जमा होना (अपरदन), निम्न कोटि की अंतिम स्टेशन संबंधी सुविधाएँ तथा जहाज चलाने संबंधी सहायक सामग्रियों की कमी इसे और भी कठिन बना देती हैं।

1967 में इस क्षेत्रक की देख-भाल के लिए एक केंद्रीय अंतरदेशीय जल परिवहन कारपोरेशन लिमिटेड की स्थापना की गई। इसे हमेशा घाटे हो रहे हैं जबकि गोवा और कोलकाता में कुछ निजी परिचालकों ने इसमें महत्त्वपूर्ण प्रगति की है। 1986 में भारतीय अंतरदेशीय जलमार्ग प्राधिकरण की स्थापना जल-मार्ग के विकास संबंधी विभिन्न केंद्रीय योजनाओं को कार्यान्वित व समन्वित करने के लिए की गई। इसके अंतर्गत तीन राष्ट्रीय जल-मार्गों की घोषणा के अतिरिक्त और कोई विशेष बात नहीं हुई। एक मत यह भी है कि अंतरदेशीय जल-यातायात को तटीय-नौवहन के साथ समन्वित कर दिया जाए। एक ओर पाँच बड़े बंदरगाहों को समुद्री नौवहन के साथ तथा दूसरी ओर अंतरदेशीय जलमार्गों के साथ आसानी से समन्वित किया जा सकता था।

नागरिक विमान उड्डयन

नागरिक विमान उड्डयन विभाग के तीन अंग हैं– संक्रियात्मक, आधारिक संरचनात्मक तथा विकासात्मक। पहला संक्रियात्मक है। देशीय वायु-सेवाएं इंडियन एयरलाइंस लिमिटेड के द्वारा प्रदान की जाती हैं। कुछ प्राइवेट एयरलाइंस भी हैं, जिनमें से कुछ अनुसूचित हैं (जैसे सहारा-इंडिया तथा जेट एयर लाइंस) तथा कुछ गैर-अनुसूचित (लगभग 35) जो इन सेवाओं को प्रदान करते हैं। लगभग 150 लाख यात्रियों के साथ घरेलू यातायात इंडियन एयरलाइंस तथा प्राइवेट परिचालकों के बीच समान रूप से विभाजित हैं। पवन हंस हेलीकॉप्टर्स लिमिटेड क्षेत्रों (ONGC तथा OIL) को राज्यों तथा केंद्रशासित प्रदेशों की सरकारों को, सर्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रमों को तथा निजी-क्षेत्र कंपनियों को हेलीकॉप्टर सहायता सेवाएँ प्रदान करती है तथा उत्तर-पूर्वी प्रदेशों के सुदूर स्थानों को जोड़ती है। अंतरराष्ट्रीय वायु सेवाएँ एयरइंडिया लिमिटेड तथा कई अन्य विदेशी एयर लाइनों के द्वारा चलाई जाती हैं। कुछ अंतरराष्ट्रीय सेवाएँ भी इंडियन एयरलाइंस द्वारा चलाई जाती हैं।

दूसरा आधारिक संरचनाओं से संबद्ध है। भारतीय एयरपोर्ट प्राधिकरण के अंतर्गत 92 एयर पोर्ट हैं जिनमें से दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई तथा तिरुवनंतपुरम् स्थित पाँच अंतरराष्ट्रीय एयर पोर्ट तथा सैनिक एयर पोर्ट के 28 सिविल एन्क्लेव भी शामिल हैं।

तीसरा नियामक तथा विकासात्मक कार्यों से संबंद्ध है। नागरिक उड्डयन विभाग, भारत सरकार, इसके लिए उत्तरदाई है। यह एक नई नागरिक उड्डयन-नीति की योजना बना रहा है। भारत सरकार इंडियन एयरलाइंस तथा एयर इंडिया के अपने कुछ शेयरों को बेच चुकी है। यह बंगलौर, हैदराबाद तथा गोवा में नए अंतरराष्ट्रीय एयर पोर्ट भी स्थापित करने की योजना बना रही है।

संचार

आधुनिक जीवन में संचार के महत्त्व को हम नहीं नकार सकते हैं। इसका महत्त्व तब से बढ़ने लगा जब से परिवार के सदस्य एक दूसरे से दूर अलग-अलग जगहों पर रहने लगे और विभिन्न उद्देश्यों के लिए विनिर्माण तथा बाजार केंद्र बन गए। संचार का प्रयोग लोगों तथा वस्तुओं के परिवहन के स्थान पर या इनके सहायक के रूप में किया जाता है। काफी समय से पैसे व संदेशों को भेजते हुए, सर्वव्यापक डाक व्यवस्था द्वारा यह कार्य किया गया। बाद में, भौतिक आवागमन की आवश्यकता कम हो गई और इसके स्थान पर टेली पद्धति द्वारा संचार सरल और द्रुत हो गया। टेलीग्राफ, टेलीफोन, टेलेक्स, टैलीफैक्स तथा ई-मेल में धीरे-धीरे विकास हो रहा है तथा महत्त्वपूर्ण तकनीकमूलक विकासों के कारण इनमें काफी सुधार भी हो रहा है। परंतु, टेलेक्स तथा टेलीग्राफ का चलन धीरे-धीरे कम हो रहा है।

डाक-संचार

संचार के नए माध्यमों के प्रचलन के बावजूद डाक-घरों के महत्त्व कम नहीं हुए। हमारी डाक-व्यवस्था संसार में सबसे बड़ी है। नई शताब्दी के आरंभ में हमारे देश में लगभग 1,55,000 डाक-घर हैं जिनमें से 1,40,000 छोटे हैं और ग्रामीण इलाकों में हैं। औसतन, हमारे प्रत्येक डाकघर 21 वर्ग कि.मी. में 5500 लोगों को सेवाएँ प्रदान करते हैं। परंतु कुछ इलाकों में ये सेवाएँ अपर्याप्त हैं। हम नए डाकघरों, उप डाकघरों या शाखा डाकघरों को खोलना आवश्यक मानते हैं। वर्ष 2000-01 में लगभग 400 डाकघर खोले गए । लागत कम करने तथा लोगों को बेहतर सेवाएँ प्रदान करने के लिए, 2000 पंचायत संचार सेवा केंद्रों के शीघ्र खोले जाने की संभावना है।

काफी समय से डाक-सेवाओं का आधुनिकीकरण किया जा रहा है। स्पीड-पोस्ट, बिजनेस पोस्ट, एक्सप्रेस पार्सल पोस्ट, मीडिया पोस्ट, बधाई पोस्ट, डाटा पोस्ट तथा स्पीड पोस्ट पासपोर्ट सेवाएँ शुरू की गईं। ग्रामीण सुदूर क्षेत्रों को शेष विश्व से जोड़ने के विचार से 2001 में पाँच राज्यों आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, केरल तथा गोवा में ई-पोस्ट आरंभ किया गया। मनीऑर्डर भेजने की गति और मात्रा में सुधार लाने के विचार से डाक-विभाग द्वारा 1550 डाकघरों को जोड़ते हुए 140 वी.एस.ए.टी. स्थापित किए गए। ये एक महीने में एक मिलियन मनीऑर्डर से अधिक भेजते हैं।

दूर संचार

निस्संदेह आज दूर संचार की भूमिका महत्त्वपूर्ण है तथा भविष्य में इसका महत्त्व और अधिक बढ़ेगा क्योंकि हम भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व-अर्थ व्यवस्था के साथ समन्वित करने का प्रयास कर रहे हैं। इसे ध्यान में रखते हुए, भारत सरकार ने दूर संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय की स्थापना की है जिसके तीन विभाग हैं– दूर संचार, सूचना प्रौद्योगिकी एवं डाक।

नब्बे के दशक में तथा विशेष रूप से 1995 से दूर संचार के क्षेत्रक में काफी प्रगति हुई है। दूर-संचार विभाग में अंतर्गत दो निगमों, भारत संचार निगम लिमिटेड (BSNL) तथा महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड़ (MTNL) तथा दो दर्जन से अधिक निजी क्षेत्रक कंपनियों द्वारा कनेक्शन प्रदान किए जा रहे हैं। जहाँ महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड, जो काफी दिनों से है, दो महानगरों

दिल्ली तथा मुंबई में सेवाएँ प्रदान करता है। भारत संचार निगम लिमिटेड अभी हाल ही में आरंभ हुआ है। इन दोनों निगमों के अंतर्गत 32500 से अधिक एक्सचेंज हैं जिनकी क्षमता 4.25 करोड़ लाइनों की है। सार्वजनिक क्षेत्रक निजी क्षेत्र दोनों ही स्थाई लाइनें तथा सेल्युलर लाइनें दोनों प्रदान करती हैं। वर्ष 2001 में अंत तक, कुल चार करोड़ कनेक्शन थे जिसमें से 55 लाख सेल्युलर (12-13 प्रतिशत) थे। 1400 नगरों/शहरों में ही सेल्युलर मोबाइल सुविधा उपलब्ध है। सूक्ष्म तरंग संरचना, 2 लाख किलोमीटर तथा प्रकाशीय फाइबर संरचना (2.5 लाख किलोमीटर) के प्रयोग बढ़ रहे हैं। हस्तचालित वायरलेस (WLL वायरलेस-लोकल-लूप) संरचना का प्रयोग भी बढ़ रहा है।

देश भर में 10 लाख पी.सी.ओ. कार्य कर रहे हैं। अतः प्रति 1000 जनसंख्या में एक पी.सी.ओ. है। शहरी क्षेत्रों में यह अनुपात केवल 300 है। अभी देश के 6 लाख गाँवों में से 4.28 लाख गाँवों में प्रति गाँव एक सार्वजनिक टेलीफोन है। ऐसी आशा है कि निजी क्षेत्र की कंपनियों के सहयोग से दिसंबर 2002 तक प्रत्येक गाँव में एक टेलीफोन हो जाने की आशा है।

पहले 1994 की टेलीफोन नीति के अनुसार, निजी कंपनियों को निर्धारित शुल्क के आधार पर लाइसेंस दिए जाते थे। नई टेलीकॉम नीति 1999 के अनुसार, निजी कंपनियाँ राजस्व का बँटवारा कर इसे पहले ही भुगतान कर देंगी। उपभोक्ताओं को प्रचालन लागत में छूट की सुविधा देने के लिए, लंबी दूरी के कॉल के दरों में पर्याप्त कमी हो गई है।

टेलीफोन लाइनों तथा मॉडेल युक्त कम्प्यूटरों द्वारा इंटरनेट सेवाएँ, ई-मेल व वेब साइट की सुविधाएँ बढ़ी हैं।

शिक्षा

मानव संसाधन, जो हमारी आर्थिक एवं अन्य सामाजिक क्रियाओं के आवश्यक आगत हैं, के विकास में शिक्षा की भूमिका सर्वविदित है। जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने के साथ पोषण-स्तर में सुधार, बेहतर सफाई, शिशु मृत्यु-दर में कमी, जीवन-प्रत्याशा में सुधार, जन्म-नियंत्रण विधियों के अधिक प्रचलन द्वारा प्रकट होता है। यह उत्पादन तथा नवप्रवर्तनों (शोध एवं विकास क्रियाओं की सहायता से) से वृद्धि द्वारा आर्थिक विकास में भी योगदान देता है।

आप जानते होंगे कि हमारे संविधान ने राष्ट्र को 1960 तक 14 वर्ष से कम के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का निर्देश दिया था। आप यह भी जानते होंगे कि हम आज भी अपने सभी बच्चों का विद्यालयों में नामांकन नहीं करा पाए हैं। आप इसका भी हिसाब लगा सकते हैं कि जो लोग 1960 में बच्चे थे, अब वृद्ध हैं अर्थात् 55 वर्ष से ऊपर के । अतः 1950 तथा 1960 के दशक के काफी भोले-भाले बच्चे आज अशिक्षित माता-पिता या दादा-दादी/नाना-नानी बन चुके हैं। सरकार ने इन माता-पिताओं को वयस्क साक्षरता कार्यक्रम के माध्यम से भी शिक्षित करने की चेष्टा की, परंतु कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

हमारी शिक्षा नीतियों ने जो 1966 तथा 1986 में बनी थी, शिक्षा के सभी क्षेत्रों में विकास एवं सुधार का पुनर्निर्देश तथा शिक्षा प्राप्त करने में ग्रामीण-शहरी या पुरुष-महिला विभेद को समाप्त करने का सुझाव दिया। इसका तात्पर्य था — (क) 6-14 आयु-वर्ग के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना, (ख) निरक्षरता का पूरा निवारण करना, (ग) शिक्षा का व्यावसायी-

करण करना, तथा (घ) महिलाओं, पिछड़े वर्गों तथा अल्पसंख्यकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना।

सुप्रीम कोर्ट के फैसले का समर्थन करते हुए लोकसभा ने संविधान का 93वाँ संशोधन विधेयक पारित किया जिसके तहत 6-14 वर्ष के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को उनका मौलिक अधिकार बनाया गया तथा अपने बच्चों को अवसर प्रदान करना माता-पिता/अभिभावक का मौलिक कर्त्तव्य। परंतु, सरकार यह मानती है कि सार्वभौमिक प्रारंभिक शिक्षा के एक सशक्त सामाजिक आन्दोलन के अभाव में इसकी सफलता सीमित होगी।

1993 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के द्वारा संचालित छटे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार, 94 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या तथा 83 प्रतिशत ग्रामीण को 1 कि.मी. की दूरी के अंदर प्राथमिक विद्यालय तथा 85 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या तथा 76 प्रतिशत ग्रामीणों को उच्च-माध्यमिक विद्यालय उपलब्ध हैं। ऐसा माना जाता है कि पिछले वर्षों में इनकी उपलब्धता में सुधार आया होगा। अभी हमारे यहाँ लगभग 6,50,000 प्राथमिक विद्यालय, लगभग 2,00,000 उच्चतर प्राथमिक विद्यालय तथा 1,16,000 माध्यमिक विद्यालय हैं, जो 1950-51 में 2,10,000 (प्राथमिक विद्यालय) 13,600 (उच्चतर प्राथमिक विद्यालय) तथा 7400 (माध्यमिक विद्यालय) थे। अभी हमारे यहाँ लगभग 300 विश्वविद्यालय हैं, 12,000 महाविद्यालय हैं, जिसमें से 1500 सिर्फ महिलाओं के लिए हैं तथा कई ऐसी संस्थाएँ भी हैं जो मान्यता प्राप्त नहीं हैं, विशेषकर उच्च-शिक्षा के क्षेत्र में।

अब हम विद्यार्थियों की कुल संख्या की थोड़ी जानकारी लें। इन दिनों प्राथमिक स्कूलों में नामांकित लड़के और लड़कियों की संख्या 11.0 करोड़ से ऊपर तथा उच्चतर प्राथमिक स्कूलों में 4.2 करोड़ से ऊपर है। लगभग 2.8 करोड़ विद्यार्थी उच्च/उच्चतर माध्यमिक/इंटर/प्रीडिग्री विद्यालयों और महाविद्यालयों में नामांकित हैं। 18 करोड़

सारणी 11.1
सकल नामांकन अनुपात

(प्रतिशत में)

	प्राथमिक (I-V)		*उच्चतर प्राथमिक (VI-VIII)*		*प्रारंभिक (I-VIII)*	
वर्ष	*लड़के*	*लड़कियाँ*	*लड़के*	*लड़कियाँ*	*लड़के*	*लड़कियाँ*
1950-51	60.6	24.8	20.6	04.6	46.4	17.7
1960-61	82.6	41.4	33.2	11.3	65.2	30.9
1970-71	95.5	60.5	46.5	20.8	75.5	44.4
1980-81	95.8	64.1	54.3	28.6	82.2	52.1
1990-91	114.0	85.5	76.6	47.0	100.0	70.8
1999-00	104.1	85.2	67.2	49.7	90.1	72.0

स्रोत : *चयनित शैक्षिक आँकड़े, 1999-2000, शिक्षा-विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।*

विद्यार्थी विद्यालयी शिक्षा के किसी-न-किसी वर्ग/स्तर में पढ़ रहे हैं। आठवें वर्ग तक विद्यार्थियों की कुल संख्या 16 करोड़ है जबकि 6 से 14 आयु-वर्ग में 20 करोड़ की जनसंख्या है। अतः लगभग 80 प्रतिशत बच्चे 90 प्रतिशत लड़के तथा 70 प्रतिशत लड़कियाँ, विद्यालय जा रहे हैं। 1980-81 में विद्यालय छोड़ने वाले लड़कों की संख्या प्राथमिक स्तर पर 55 प्रतिशत तथा उच्चतर प्राथमिक स्तर पर 68 प्रतिशत थी जो 1999-2000 में घटकर क्रमशः 40 प्रतिशत से कुछ कम तथा 50 प्रतिशत से कुछ अधिक हो गई। विद्यालय छोड़ने वाली लड़कियों की संख्या जो 1980-81 में प्राथमिक स्तर पर 65 प्रतिशत तथा उच्चतर प्राथमिक स्तर पर लगभग 80 प्रतिशत थी, घटकर 1999-2000 में क्रमशः 40 प्रतिशत तथा 55 प्रतिशत हो गई। अतः यद्यपि इनकी संख्या में कमी आई है, फिर भी अभी यह काफी अधिक है। वस्तुतः पहली कक्षा में नामांकित होने वाले विद्यार्थियों में मुश्किल से 60 प्रतिशत विद्यार्थी पाँचवीं कक्षा तक पहुँचते हैं।

महिलाओं का सकल नामांकन अनुपात उस आयु वर्ग के पुरुषों के नामांकन अनुपात की तुलना में काफी कम हैं परंतु पुरुषों तथा महिलाओं के नामांकन अनुपात के बीच अंतर में काफी कमी आई है (देखें सारणी 11.1)।

किसी भी प्रक्रिया में आगतों से अधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम होते हैं, परंतु आगतों के महत्त्व को भी नकारा नहीं जा सकता। यह तो देखना ही है कि हमारी शिक्षा पद्धति हमें क्या दे रही है, परंतु साथ ही यह भी देखना है कि हम इस दिशा में कितना प्रयास कर रहे हैं? इन प्रयासों को हम शिक्षा में हुए मौद्रिक व्यय के रूप में माप सकते हैं। सरकार–केंद्र तथा राज्य दोनों 45,000 करोड़ रु. से अधिक व्यय कर रही है, जिसमें से लगभग 40,000 करोड़ योजनेत्तर राजस्व व्यय तथा 5,000-6,000 करोड़ योजना-व्यय। परंतु यह हमारे सकल देशीय उत्पाद के 3.8 प्रतिशत से अधिक नहीं है। यह काफी कम माना जाता है क्योंकि पिछले 35 वर्षों से भारत सरकार सकल देशीय उत्पाद का 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष खर्च करने के वायदे कर रही है। सभी सरकारों के कुल योजना व्यय में से शिक्षा पर व्यय जो तृतीय योजना में 7.0 प्रतिशत था छठी योजना में घटकर 2.7 प्रतिशत हो गया। नवीं योजना में बढ़कर लगभग छः प्रतिशत हो गया। राज्य सरकारों के प्रयासों को बढ़ावा देने के लिए केंद्र सरकार निम्न प्रयास करती है– (i) विद्यालय आधारित संरचना में सुधार के लिए ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड का कार्यक्रम जिसमें अतिरिक्त शिक्षक भी शामिल हैं, (ii) पोषण सहायता के राष्ट्रीय कार्यक्रम के अंतर्गत विद्यार्थियों को मध्य-दिवस भोजन प्रदान करने का कार्यक्रम, (iii) शिक्षा के न्यूनतम स्तर का कार्यक्रम, जिसमें भाषाओं, गणित तथा पर्यावरण-अध्ययन में योग्यता के विकास कार्यक्रम भी हैं, (iv) डी.पी.ई.पी./बी.ई.पी./यू.पी.ई.पी., (v) अनौपचारिक शिक्षा, (vi) महिला सशक्तिकरण के लिए महिला-समाख्या आदि।

स्वास्थ्य

पिछले पचास वर्षों में निःसंदेह स्वास्थ्य सुविधाओं में विकास हुआ है। मृत्यु-दर, जो 1951 में लगभग 25-27 थी, वर्ष 2000 में घटकर 9 से कम हो गई है। इसी अवधि में शिशु मृत्यु-दर 145 से घटकर आधी अर्थात् 70 तथा बच्चों की मृत्यु-दर 57 से घटकर 22 हो गई। परिणामस्वरूप, जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा उसी अवधि में लगभग 36-37 वर्षों से बढ़कर 61-62 वर्ष हो गई। अब

औसत रूप से महिलाएँ पहले की तुलना में तीन वर्ष अधिक जीवित रहने लगी हैं।

परंतु बीमारियों की समस्या अभी भी बनी हुई है। अभी भी काफी संक्रामक-बीमारियाँ फैलती हैं — तथा मृत्यु व रुग्णता का कारण बनती हैं, परंतु उनके प्रभाव-क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कमी आई है।

जानपदिक रोगविज्ञान परिवर्तन

जब जनसंख्या की जीवन-प्रत्याशा में सुधार होता है तो संक्रामक और असंक्रामक बीमारियों के सापेक्ष प्रभाव-क्षेत्र में परिवर्तन होता है। पहले, इस परिवर्तन के आरंभिक काल में संक्रामक बीमारियाँ, मृत्यु और रोग का प्रमुख कारण थीं तथा परिवर्तन के बाद इनका कारण असंक्रामक बीमारियाँ हो गई हैं।

यह सत्य है कि शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएँ प्रदान करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण आधारिक संरचना का निर्माण किया गया है। परंतु इसमें तीन कमियाँ हैं। पहला, वर्तमान संस्थाओं और जनसाधनों का वितरण असमान है। दूसरा, कर्मचारियों की संख्या तथा आधारिक संरचनाएँ एक-दूसरे से मेल नहीं खातीं। तीसरा, उपयुक्त परामर्श पद्धति की भी कमी है।

मलेरिया, कालाज़ार, तपेदिक, कुष्ठरोग, अंधापन तथा एच.आई.वी./एड्स आदि बीमारियों के उपचार के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम हैं। कुल योजना व्यय का 3 प्रतिशत चिकित्सा सहायता, जन स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन क्रियाओं में लगता है।

अभ्यास

1. विकास में आधारभूत संरचना का महत्त्व बताएँ।
2. हमें आधारभूत संरचना के लिए निजी, सार्वजनिक तथा विदेशी तीनों क्षेत्रों के सहयोग की आवश्यकता क्यों पड़ती है?
3. आधारिक-संरचना के क्षेत्र में सेवा प्रदान करने वाले तथा सरकार के बीच हमें स्वतंत्र-नियंत्रक प्राधिकरणों की आवश्यकता क्यों पड़ती है?
4. स्वतंत्रता के समय से भारत में ऊर्जा के कुल तथा प्रतिव्यक्ति उपभोग तथा ऊर्जा संगठन के संसाधनों में परिवर्तन की व्याख्या कीजिए।
5. अंतर स्पष्ट करें — (i) प्राथमिक तथा अंतिम संसाधन, (ii) व्यावसायिक तथा गैर-व्यावसायिक संसाधन, (iii) परंपरागत तथा गैर-परंपरागत संसाधन।
6. विद्युत की आपूर्ति के लिए आवश्यक तीन सेवाओं की भूमिका की व्याख्या कीजिए? क्या ये अलग-अलग हाथों में होनी चाहिए? अपने उत्तर की पुष्टि करें?
7. ऊर्जा सृजन के तीन मौलिक संसाधन क्या हैं?
8. प्लांट लोड फेक्टर (Plant load factor) से आप क्या समझते हैं? इसे किस प्रकार सुधारा जा सकता है?
9. विद्युत के संचालन के लिए हमें ग्रिड की आवश्यकता क्यों पड़ती है?

10. संचालन तथा वितरण हानियों से आप क्या समझते हैं। इनको कैसे क्रय किया जा सकता है?
11. सड़क तथा रेल परिवहन के मध्य यातायात की चर्चा कीजिए? ,
12. सड़क क्षेत्र की उपलब्धियाँ रेलवे से अच्छी कैसे हैं?
13. रेल मार्गों के विद्युतीकरण तथा रेल पटरियों के समानीकरण (Gauge Unification Programme) कार्यक्रमों की व्याख्या कीजिए तथा बताएँ कि ये हमें किस प्रकार सहायता कर सकते हैं?
14. रेलों द्वारा ढोई जाने वाली प्रमुख मदें क्या हैं?
15. रेलों में कार्यशील श्रम-शक्ति का आकार क्या है? ये एक उत्तरदायित्व कैसे बन गए हैं?
16. यह तर्क दिया जाता है कि माल यातायात यात्रियों के लिए, उच्च वर्ग के यात्री निम्न वर्ग के लिए तथा गैर-उपनगरीय यात्री उपनगरीय यात्रियों के लिए भुगतान कर रहे हैं। अपना दृष्टिकोण दीजिए?
17. रेलों को यातायात में अपनी प्रतिभागिता बढ़ाने के लिए क्या उपाय करने चाहिए?
18. भारत में रेलों का नया प्रारूप कैसा होना चाहिए?
19. भारत में सड़कों के जाल तथा इसकी दशा पर चर्चा कीजिए?
20. राष्ट्रीय राजमार्गों के महत्त्व का मूल्यांकन आप कैसे करेंगे?
21. ग्रामीण सड़क यातायात व्यवस्था के संबंध में आपका मूल्यांकन क्या है?
22. जल परिवहन के तीन साधन क्या हैं?
23. अंतरराष्ट्रीय व्यापार में अंतःसमुद्रीय-जहाज़रानी के सहयोग का वर्णन करें?
24. अंतरदेशीय जल यातायात का भविष्य आपको कैसा दिखाई देता है?
25. तटीय जहाजरानी, सड़कों/रेलों के यातायात में भीड़-भाड़ को कम करने में क्या भूमिका निभा सकती है? एक उदाहरण दीजिए?
26. संचार तथा यातायात के बीच क्या संबंध हैं?
27. डाक-संचार व्यवस्था पर टिप्पणी कीजिए?
28. दूरभाष सेवा की मुख्य प्रवृत्तियों पर चर्चा कीजिए?
29. आर्थिक विकास में शिक्षा का क्या महत्त्व है?
30. प्रारंभिक शिक्षा के संबंध में संवैधानिक प्रावधानों तथा हाल में इस संबंध में किए गए संवैधानिक संशोधनों की चर्चा कीजिए?
31. लिंग के आधार पर नामांकन की मात्रा तथा विद्यालय बीच में छोड़ने वालों की मात्रा का वर्णन करें?
32. प्रारंभिक शिक्षा के लिए प्राथमिक रूप से उत्तरदायी राज्यों की सहायता करने वाले संघ सरकार के प्रमुख कार्यक्रम क्या हैं?
33. स्वास्थ्य कार्यक्रमों में प्रगति की चर्चा कीजिए?

अध्याय 12

कुछ उभरते प्रश्न

परिचय

कुछ समय से कई प्रश्न मुख्य चुनौतियों के रूप में उभर रहे हैं। यहाँ हम उनमें से केवल तीन पर चर्चा करेंगे– पर्यावरण, लिंग और प्रवसन।

पर्यावरण

विकास का संबंध सामान्यतः प्राकृतिक संसाधनों के अवशोषण (Under-exploitation) से रहा है। यह नहीं समझा गया कि अवशोषण का भय अधिशोषण (Over-exploitation) में परिणित हो सकता है। हमने ऐसा मान लिया था कि प्राकृतिक संसाधनों का परिमाण यदि असीमित नहीं तो विशाल अवश्य है। इसके साथ ही हम यह भी देखते हैं कि वर्तमान प्रौद्योगिकी सुपरिणामों (जैसे बिजली, यातायात की सुविधाओं) के साथ इसके दुष्परिणाम (जैसे धुआँ) भी हैं। हम कई प्रकार की अवक्रमण-योग्य (Degradable) वस्तुओं का उत्पादन भी कर रहे हैं। संक्षेप में, हम प्रकृति पर इसकी उत्पादक व स्वांगीकारी (Assimilitative) क्षमता से अधिक दबाव डाल रहे हैं। इसका उत्तरदायित्व बढ़ती हुई जनसंख्या (अविकसित देशों में), प्रचुर मात्रा में किए गए उपभोग (विकसित देशों में), तथा प्रौद्योगिकी के दुरुपयोग (सभी जगहों पर) हैं। कुछ लोग पर्यावरण-संबंधी समस्याओं, जैसे वनों के कटाव की जिम्मेदारी गरीबों पर डालते हैं, न कि उनकी गरीबी पर। कुछ लोग इसके लिए विकास की दोषपूर्ण योजना को दोषी ठहराते हैं।

हम पर्यावरण संबंधी मुद्दों को दो वर्गों में विभाजित करते हैं। पहले का संबंध अधिकांशतः शहरी तथा औद्योगिक क्षेत्रों के पर्यावरण-संबंधी मुद्दों से है। दूसरे का संबंध संसाधनों जैसे कृषि, वानिकी, पशुधन तथा जैविक विविधता के साथ है। इन पर नीचे हम विस्तार से चर्चा करेंगे।

प्रदूषण संबंधी विषय

प्रदूषण का तात्पर्य भी माध्यम के उन तत्त्वों से है जिनमें वे वर्तमान होते हुए भी उनके लिए बाह्य होते हैं। इन तत्वों का पर्याप्त विलयन (Dissolve) नहीं हो पाता और ये प्राणि-जगत् म प्रदूषण पैदा करते हैं। ये वायु-प्रदूषण, जल-प्रदूषण और ध्वनि-प्रदूषण के रूप में वर्गीकृत किए जाते हैं।

वायु-प्रदूषण

भारत में 35 नगर हैं जिनकी जनसंख्या एक मिलियन से अधिक है। उनमें से अधिकांश में चारों ओर व्याप्त रहने वाली वायु के प्रदूषण का स्तर **विश्व स्वास्थ्य संगठन** (WHO) द्वारा निर्धारित स्तरों से अधिक हो गया है। बढ़ता हुआ ऊर्जा-उपभोग, औद्योगीकरण, यातायात के साधनों की बढ़ती

हुई संख्या तथा कूड़ों के ढ़ेर को जलाने से इन शहरों की वायु की गुणवत्ता और खराब होती जा रही है। अहमदाबाद, दिल्ली, कानपुर, कोलकाता, मुंबई तथा नागपुर आदि नगर प्रदूषण से अत्यधिक प्रभावित हैं।

कुछ गैसों की अत्यधिक उपस्थिति तथा हवा में अस्थिर दशा में टँगे हुए तत्वों के कण (एस.पी.एम.) वायु को प्रदूषित करते हैं। वायु ही मनुष्यों एवं सभी प्राणियों के लिए आक्सीजन पहुँचाने का स्रोत है, अतः दूषित वायु के कारण ये कई प्रकार की बीमारियों के शिकार हो जाते हैं जिनसे उनके कार्यों पर तथा उनके खाली समय (Leisure) पर भी काफी बुरा असर पड़ता है। CO, CO_2, NO_2, SO_2 आदि गैस और ओज़ोन तथा हवा में अस्थिर दशा में टँगे हुए कण, जिसमें लीड कण भी शामिल हैं, प्रमुख प्रदूषक हैं जो बीमारियों और मृत्यु के कारण होते हैं। इन बीमारियों में प्रमुख हैं– श्वास-संबंधी रोग, हृदय की रक्त-वाहक नलियों से संबंधित बीमारियाँ, उच्च रक्तचाप, दमा, आँखों के कष्ट तथा मानसिक समस्याएँ।

इन बीमारियों के कारण अस्वस्थता हो जाती है जिससे व्यक्तियों के कार्य की क्षति होती है तथा समाज में कुल उत्पादन में कमी होती है और इसके अतिरिक्त इनके इलाज में व्यक्तिगत/सामाजिक व्यय तो होता ही है। अतः वे लोग, जो ब्रेड बनाने का कार्य कर सकते थे, 'चेम्प्राक्स' बनाने का कार्य करने लगते हैं (चेम्प्राक्स असली दवा नहीं है बल्कि यह शब्द उन बेकार क्रियाओं को दर्शाने के लिए बनाया गया है जिनमें हम अपनी गलत गतिविधियों के कारण या अपर्याप्त सावधानी के कारण फँस जाते हैं)। कई प्रकार की दवाएँ बनाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती यदि प्रदूषण के कारण कई तरह की बीमारियाँ न होतीं। मृत्यु ही एक बड़ी कीमत है। ये समस्याएँ भारत जैसे देश के लिए भयंकर हो जाती हैं जहाँ सामान्य पोषण-स्तर ही बहुत नीचे है। इनसे बचने की कीमत इनके परिणामों को भुगतने की कीमत से काफी कम होगी।

जल-प्रदूषण

ऐसा कहा जाता है कि शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में धरती की सतह के ऊपर और इसके नीचे का जल इतना दूषित है जो मनुष्यों के उपभोग की दृष्टि से अनुपयुक्त है। डायरिया ट्रैकोमा, पेट में कीड़े, पीलिया आदि पानी की गन्दगी, सफाई तथा स्वच्छता की कमी के कारण होते हैं। भारत में दस प्रतिशत बीमारियाँ तथा बीस प्रतिशत संक्रामक बीमारियाँ दूषित जल के कारण होती हैं। शिशु मृत्यु (Infant mortality) के अधिक प्रतिशत को भी इसी से जोड़ा जा सकता है।

जल-प्रदूषण के तीन प्रमुख कारण हैं — मनुष्यों के घरेलू प्रयोग द्वारा दूषित जल, उद्योगों द्वारा दूषित जल तथा खेतों से बहकर आने वाला दूषित जल। मनुष्यों द्वारा प्रदूषित जल सबसे अधिक हानिकारक होता है तथा जल के द्वारा फैलने वाली कई बीमारियों का कारण होता है। दूषित जल को साफ करके (जैसा कई नगरों में किया जाता है) प्रयोग में लाना अच्छा नहीं। कई बार सब्जियाँ इसी जल में धो दी जाती हैं और कई बार बिना धोए ही खा ली जाती हैं। नाले का जल, गंदे जल तथा उद्योगों द्वारा प्रदूषित जल, नदियों व तालाबों में उनकी स्वांगीकारी/पाचन क्षमता से काफी अधिक भर जाता है। मुख्य जल-प्रदूषक इकाइयाँ हैं– रसायन, फार्मास्युटिकल, वस्त्र, सीमेंट, बिजली व बिजली उपकरण, ग्लास व सेरामिक, अखबारी कागज तथा पेपर-बोर्ड, चर्म-शोधन, खाद्य-

संसाधन (Food processing) तथा पेट्रोल की सफाई। खेतों में खाद तथा कीटनाशक दवाओं का बिना सोचे समझे प्रयोग सतह के ऊपर के तथा सतह की नीचे के पानी दोनों को दूषित करते हैं।

जल की माँग में वृद्धि हो रही है तथा इसमें और अधिक वृद्धि होने की आशा है, खासकर शहरी इलाकों में जहाँ जनसंख्या में वृद्धि के कारण और उससे भी अधिक प्रतिव्यक्ति जल की माँग में वृद्धि के कारण जो आय में वृद्धि के कारण होती है। इसकी माँग को कुछ सीमा तक जल-आपूर्ति की बेहतर कीमत द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। उपभोक्ता-शुल्कों की उपयुक्त वसूली भी महत्त्वपूर्ण है। प्रदूषण के कारण जल को पहले साफ करने की आवश्यकता होती है जिससे जल-आपूर्ति की कीमत में वृद्धि होती जा रही है।

संसाधनों का अवक्रमण (Degradation)

संसाधनों का अवक्रमण उनकी उत्पादन क्षमता को कम कर देता है। अवक्रमण के कारण लंबी अवधि में उनकी उत्पादकता कम हो जाती है। इस प्रकार विकास का आधार ही सूख जाता है। यहाँ हम दो प्रकार के मुख्य अवक्रमणों पर विचार करेंगे– एक वनों से संबंद्ध है तथा दूसरा भूमि से, विशेषकर कृषि-योग्य भूमि से।

वन कटाई (Deforestation)

हमारी विकास-संबंधी क्रियाएँ तथा विलासितापूर्ण जीवन पद्धति ने वन-संपदा का शोषण इनकी पुनर्जनन क्षमता से बढ़कर किया है। यह बताना महत्त्वपूर्ण है कि भारत ऐसे कुछ देशों में से है जहाँ वन-नीति 1854 से ही निर्धारित की जाती रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारी पहली वन-नीति की घोषणा के समय अनुमान लगाया गया था कि 1854 से 1952 के बीच वन-आवरण 40 से घटकर 22 प्रतिशत हो गया था जिसका कारण निश्चित ही कच्चे माल, इमारतों के निर्माण तथा जलावन हेतु लकड़ियों के लिए किया गया वनों का अति-शोषण था। 1952 में हमारे पास लगभग 680 लाख हेक्टेयर वन थे।

वनों की उत्पादकता

जहाँ हमारी प्रति हेक्टेयर स्टॉक में वृद्धि 28 क्यूबिक मीटर है तथा वार्षिक वृद्धि केवल 0.5 क्यूबिक मीटर, वहीं विश्व की औसत प्रति हेक्टेयर स्टॉक वृद्धि 110 क्यूबिक मीटर तथा वार्षिक वृद्धि 2.0 क्यूबिक मीटर है।

तेजी से बढ़ने वाली बहुमूल्य लकड़ियों की किस्मों के उचित रख-रखाव तथा संरक्षण द्वारा वन-उत्पादों को हम 5.0 क्यूबिक मीटर प्रति हेक्टेयर तक बढ़ा सकते हैं।

1952 की वन-नीति में यह सुझाव दिया गया था कि हमारे यहाँ 1000 लाख हेक्टेयर अर्थात् कुल भूमि के 33 प्रतिशत भाग में वन होने चाहिए। इस 33 प्रतिशत में से लगभग 60 प्रतिशत वन पर्वतीय क्षेत्रों में होने चाहिए। वनों की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए, वनरोपण (Afforestation) के प्रयत्न किए गए जिनमें तीन महत्त्वपूर्ण योजनाएँ शामिल थीं– (क) शीघ्र बढ़ने वाली किस्मों का रोपना, (ख) आर्थिक किस्मों (जैसे टीक, शीशम, साल आदि) का रोपण, तथा (ग) अवक्रमित वनों का पुनर्स्थापन (Rehabilitation)। परंतु इन सब उपायों के द्वारा भी पिछले पचास सालों में वनों का कुल क्षेत्र पचास लाख हेक्टेयर से अधिक नहीं बढ़ पाया। आजकल वन-क्षेत्र 750 लाख हेक्टेयर है। परंतु सर्वेक्षण की नई तकनीकों का प्रयोग कर **नेशलन रीमोट सेन्सिंग**

एजेंसी ने संकेत दिया है कि हमारे यहाँ केवल 360 लाख हेक्टेयर भूमि के ऊपर हरियाली है, जिसका अर्थ है कि शेष क्षेत्र को वन घोषित कर दिया गया है, परंतु उनमें वृक्ष नहीं हैं। उपलब्ध सूचनाएँ यह जानकारी देती हैं कि हमारे सघन वन 1972-75 तथा 1980-82 के बीच ही कम हो गए थे। उसके बाद से हमारे सघन वन लगभग स्थिर हैं। देखें सारणी 12.1 ।

सारणी 12.1
भारत में सघन वन-आवरण
(लाख हेक्टेयर)

सर्वेक्षण वर्ष	*आवरण*	*सर्वेक्षण वर्ष*	*आवरण*
1972-75	46.42	1989-91	38.55
1980-82	36.14	1991-93	38.58
1985-87	37.85	1995-97	36.73
1987-89	38.50		

हम वन-उत्पादों के प्रयोग करने वालों को पूरी तरह मना तो नहीं कर सकते क्योंकि इससे अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है और हम वन-शोषण की वर्तमान व्यवस्था को ज्यों-का-त्यों भी नहीं छोड़ सकते क्योंकि इससे भावी पीढ़ी का भविष्य खतरे में पड़ सकता है। अब तो ऐसे सुझाव भी दिए जा रहे हैं कि उद्योगों व शहरी उपभोक्ताओं के द्वारा शोषित होने के स्थान पर वनों के पर्यावरण-संबंधी कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त ये वन, **वन-जीवियों** की निर्वाह-आवश्यकताएँ भी पूरी करते हैं।

संक्षेप में, स्थिति को सुधारने के लिए उठाए गए कुछ कदमों का हम उल्लेख कर सकते हैं। भारत सरकार ने राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) द्वारा दिए गए सुझावों को स्वीकार कर लिया है। सामाजिक-वानिकी (Social forestry) के तीन घटक हैं– कृषि-वानिकी, सार्वजनिक प्रयोग हेतु वानिकी, तथा सामुदायिक प्रयोग हेतु वानिकी। कृषि वानिकी की योजनाओं के अंतर्गत किसानों को अपने खेतों में राज्य वन-विभागों के द्वारा निःशुल्क या कम कीमत पर पौधे देकर वृक्षारोपण के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। सार्वजनिक प्रयोग हेतु वृक्षारोपण के अंतर्गत वन-विभाग ने सड़कों, नहरों तथा अन्य सार्वजनिक भूमि के किनारे शीघ्र बढ़ने वाले वृक्षों को उगाने का उत्तरदायित्व लिया है। सामुदायिक प्रयोग हेतु वृक्षारोपण के अंतर्गत स्थानीय समुदायों द्वारा गाँव की सामुदायिक भूमि (Village commons) पर वृक्षारोपण किया जाता है। इसके निम्न उद्देश्य हैं :

(i) हरित-आवरण को बढ़ाना,

(ii) कागज, नायलॉन तथा माचिस उद्योगों के लिए कच्चे माल का उत्पादन,

(iii) गरीबों की जलावन/ईंधन तथा चारे की आवश्यकताओं को पूरा करना,

(iv) छोटी-छोटी लकड़ियाँ तथा लघु वन-उत्पादों की प्राप्ति, तथा

(v) ग्रामीण क्षेत्रों में वनारोपण द्वारा अधिक रोजगारों की व्यवस्था करना।

देश के कुछ भागों में इनमें से कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति में सफलता तो मिली है, परंतु अभी और अधिक प्रयत्नों की आवश्यकता है। कई ऐसे पेड़ जो जल-संरक्षण (Water conservation) के लिए उपयोगी नहीं होते हैं, अतः उन्हें जल-प्लावित (Water logging) क्षेत्रों में उगाया जाना चाहिए।

ऐसा देखा गया है कि उद्योगपतियों के अतिरिक्त, राज्य सरकारें भी इन समस्याओं की उपेक्षा करती रही थीं, क्योंकि उन्हें वनों द्वारा राजस्व प्राप्त होता था। यहाँ तक कि कई बार कई

उद्योगों को नाममात्र कीमत पर भी लकड़ियाँ उपलब्ध कराई गईं।

दिसंबर 1988 में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा एक नई वन-नीति की घोषणा की गई। इस नीति के लक्ष्यों में कोई नयापन तो नहीं था, पर इसके मुख्य उद्देश्य तथा इसकी दिशा महत्त्वपूर्ण है। इसके अनुसार वनों पर आधारित उद्योगों को वनों का शोषण करने तथा रियायती दरों पर वन उत्पादों को उपलब्ध न कराने का निर्णय किया गया। अतः उन्हें अपने कच्चेमाल के लिए कृषि वानिकी (Farm forestry) पर निर्भर करना होगा। इस नीति के अनुसार, उद्योगों द्वारा किसानों को कृषि वानिकी के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। निजी ठेकेदारों को इन कृषि उत्पादों को एकत्र करने की अनुमति नहीं दी जाएगी तथा इनका स्थान **सरकारी संस्थाएँ** एवं **जनजाति सहकारी समितियाँ** ले लेंगी। वन-भूमि को अन्य उत्पादों जैसे चाय, कॉफी, मसाले, रबर, खजूर, तेल-उत्पादक पौधों, बागवानी पौधों तथा औषधिदायक पौधों के लिए नहीं दिया जाएगा। फिर भी ऐसा समझा जाता है कि लकड़ी-व्यापारियों तथा वन-विभाग के अधिकारियों के बीच चोरी-छिपे ढंग से कई प्रकार की लेन-देन संबंधी क्रियाएँ होती हैं।

बहुद्देश्यीय बड़ी बाँध (Dams) परियोजनाएँ भी काफी वनों को निगल जाती हैं। गरीब लोग लकड़ी तथा अन्य छोटे-मोटे वन-उत्पादों को चुरा लेते हैं। हालाँकि हमारे विचार में वे केवल पुरानी और झड़कर गिरी हुई लकड़ियों को ही चुनते होंगे। इन झड़कर गिरी हुई लकड़ियों को तो ऐसे भी एकत्रित करने की आवश्यकता रहती है।

भूमि अवक्रमण (Land Degradation)

हमारी भूमि कई प्रकार के अवक्रमणों से ग्रसित है। ये अवक्रमण इसे कृषि की दृष्टि से अनुपयुक्त बना देते हैं। जल तथा वायु के कारण भूमि की ऊपरी सतह का कटाव (अपरदन) तथा समुद्री जल के आप्लावन से उत्पन्न क्षारता व खारापन हमारी दो सबसे बड़ी समस्याएँ हैं। हमारी भूमि या तो बाढ़ की शिकार हो जाती है या अकाल की। यदि भूमि पर घास या वृक्ष न हों तो बाढ़ से भूमि का काफी कटाव हो जाता है। कटकर यह मिट्टी बाँधों, तालाबों, टैंकों, नदियों तथा सरिताओं की तलछटी में जमा हो जाती है। इससे नदियों की गहराई कम हो जाती है तथा इन नदियों का पानी पुनः आसपास के इलाकों में फैल जाता है और पूरे इलाके में जलप्लावन हो जाता है।

अतः एक दुश्चक्र-सा बन जाता है। घास अधिक चर ली जाती हैं और वृक्ष बिना प्रतिस्थापित किए काट दिए जाते हैं। कुछ इलाकों में खेतों को काटकर और जलाकर स्थांतरित खेती या झूम (Shifting cultivation) अभी भी प्रचलित है। ऐसी स्थिति में धरती के सूखा-ग्रस्त होने का भय रहता है। जिन क्षेत्रों में काफी समय से वृक्ष काट लिए गए हैं वहाँ नमी (Humus) की कमी हो जाती है। इनमें वृक्षों का आवरण न रहने से मिट्टी की ऊपरी सतह बह जाती है तथा हवा से उड़ भी जाती है। इस प्रक्रिया में, ऊपरी मिट्टी (Top soil) में से पोषक तत्त्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटेशियम आदि समाप्त हो जाते हैं।

दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि अत्यधिक जलप्लावन से मिट्टी की ऊपरी सतह पर खारापन और क्षारता आ जाती है। इस प्रकार की मिट्टी कृषि के लिए उपयुक्त नहीं है। कुछ ऐसे भी क्षेत्र हैं जो हमेशा जलमग्न रहते हैं। सारणी 12.2 में हम देख सकते हैं कि 50 प्रतिशत से अधिक भूमि गंभीर अवक्रमण-ग्रस्त है।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्रत्येक वर्ष बाढ़ से 80 लाख हेक्टेयर भूमि, जिसमें से 40 लाख हेक्टेयर भूमि में फसलें भी होती हैं, प्रभावित हो जाती हैं। 40 लाख हेक्टेयर भूमि पर स्थांतरित खेती या झूम का दुष्प्रभाव होता है। प्रतिवर्ष 8000 हेक्टेयर भूमि घाटियों/दर्रों (Ravines) के अतिक्रमण द्वारा प्रभावित होती है। समस्या को एक प्रामाणिक ढ़ंग से हम इस प्रकार रख सकते हैं, हमारी भूमि के एक-तिहाई भाग वन हैं तथा दो-तिहाई भाग में खेती होती है। कृषि योग्य समस्त बंजर भूमि तथा स्थायी चारागाहों में मृदा-संरक्षण (Soil conservation) अत्यावश्यक है। इसके बाद, संरक्षण की दिशा में कई कदम उठाए गए हैं जिससे ऐसा लगता है कि हम भविष्य में अवक्रमण को अधिक नहीं बढ़ने देंगे।

लिंग

दो लिंगों के बीच जैविक अंतर होता है। इन दोनों लिंगों की भूमिकाएँ स्वाभाविक रूप से विभाजित हैं। उदाहरण के लिए, केवल महिलाएँ ही संतान उत्पन्न कर सकती हैं। संभवतः वे ही उनका बेहतर पालन भी कर सकती हैं।

हालाँकि सभी समाजों में कई अन्य प्रकार के अंतर पाए जाते हैं, जो जैविक अंतर से संबद्ध नहीं हैं। मानव समाज बरसों से दो लिंगों के बीच विभेद करता आ रहा है तथा यह पुरुषों का पक्षधर भी रहा है। हमारे समाज में पक्षपात का स्तर बहुत अधिक रहा है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि हम इस दृष्टि से सबसे बुरे लोग हैं।

पश्चिम में राजनैतिक विभेदीकरण

तथाकथित विकसित देशों में महिलाओं को राजनैतिक अधिकारों से वंचित रखा गया। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ही संयुक्त राष्ट्र (1920), इंग्लैण्ड (1928), स्पेन (1931) तथा फ्रांस (1944) ने महिलाओं को मतदान का अधिकार दिया जबकि वहाँ पुरुषों को ये अधिकार बहुत पहले से दिए गए थे। यह आश्चर्यजनक है कि स्विट्ज़रलैंड ने, जो प्राचीनतम प्रजातंत्रों में से एक है, महिलाओं को 1971 तक इस अधिकार से वंचित रखा। कई देशों में तो आज तक महिलाओं पर कानूनी तौर पर शिक्षा-संबंधी प्रतिबंध लगे हुए हैं।

क्या इसका अर्थ यह है कि हमें अपने देश में इस दिशा में सुधार लाने की कोई आवश्यकता है हीं नहीं? ऐसी बात नहीं। कई शताब्दियों से हम

सारणी 12.2

विभिन्न प्रकार के अवक्रमणों से ग्रस्त क्षेत्रों के विवरण

कुल भौगोलिक क्षेत्र	3290 लाख हेक्टेयर
गम्भीर अवक्रमण ग्रस्त क्षेत्र	1750 लाख हेक्टेयर
जल/वायु अवक्रमण ग्रस्त क्षेत्र	1400 लाख हेक्टेयर
क्षारित/खारापन युक्त/ जल-आप्लावित/कटाव ग्रस्त क्षेत्र	350 लाख हेक्टेयर
बाढ़ द्वारा कटाव ग्रस्त क्षेत्र	200 लाख हेक्टेयर
खारापन ग्रस्त क्षेत्र	55 लाख हेक्टेयर
क्षारित भूमि	25 लाख हेक्टेयर
जल आप्लावित भूमि	60 लाख हेक्टेयर
सूखा ग्रस्त भूमि	2500 लाख हेक्टेयर

स्थिति में सुधार लाने का प्रयास कर रहे हैं। विधवा विवाह, सती प्रथा का बहिष्कार तथा बाल-विवाह पर रोक इस दिशा में किए गए प्रयास हैं। स्वतंत्रता के तुरंत बाद जब हम अपना संविधान बना रहे थे, हमने लगभग सभी लोगों को सारे राजनैतिक अधिकार प्रदान करने का निश्चय किया। हमने लिंग के आधार पर सभी प्रकार के विभेद का निषेध किया। परंतु सिर्फ कानूनन समानता पर्याप्त नहीं थी। अतः हमने स्पष्ट विभेद को दूर करने के लिए भी व्यवस्था की। परिणामस्वरूप, कुछ मामलों में तो स्पष्ट सुधार हुए हैं। उदाहरण के लिए, बालिकाओं की जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा बालकों की तुलना में बढ़ गई है।

ऐसा प्रायः देखा गया है कि महिलाओं को आर्थिक अवसरों से वंचित रखा जाता है, और यदि उन्हें नौकरी मिलती भी है तो उन्हें समान कार्य के लिए पुरुषों से कम मजदूरी दी जाती है। परिवार में भी उनके साथ व्यवहार में पक्षपात होता है तथा नौकरी के क्षेत्र में भी। इन विषयों के अंतर्गत हम लिंग-अनुपात, साक्षरता, श्रम-भागीदारी तथा मजदूरी पर विस्तार से चर्चा कर सकते हैं।

लिंग-अनुपात

किसी भी समाज के लिए बहुत अधिक स्त्रियाँ या बहुत कम स्त्रियाँ वांछनीय नहीं हैं। उनकी संख्या लगभग बराबर होनी चाहिए। पुरुषों की संख्या कुछ अधिक हो सकती है क्योंकि माना जाता है, प्रकृति बालकों के जन्म की पक्षधर रही है। अधिकांश समाजों में प्रति 1000 महिला-जन्मों में पुरुष जन्मों की संख्या 1050-1060 रही है। परंतु समान स्तर के जीवन-अवसर प्राप्त होने पर पुरुषों की तुलना में अधिक लंबी आयु तक जीवित रहती हैं। परिणामस्वरूप, ऐसे समाजों में जहाँ पुरुषों और महिलाओं के बीच जीवन की सुविधाओं के मामले में समानता रहती है, तो लिंग-अनुपात महिलाओं के पक्ष में रहता है– ब्राजील 1025, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका 1030, जापान 1040, तथा रूस राष्ट्रसंघ 1140। हमारे देश में केरल एक ऐसा प्रदेश है जहाँ लिंग-अनुपात 1060 है, जो जापान से अधिक है। पूरे देश के लिए, बीसवीं शताब्दी में लिंग-अनुपात नीचे सारणी 12.3 में दिया गया है। यह दुःखद प्रसंग है कि जीवन-प्रत्याशा में वृद्धि के साथ लिंग-अनुपात में लगातार गिरावट होती रही तथा सबसे अधिक गिरावट साठ के दशक में हुई। यह अब लगभग 930 के आसपास है।

सारणी 12.3
पिछली शताब्दी में भारत की जनसंख्या का लिंग-अनुपात (1901-2001)

वर्ष	*लिंग-अनुपात*	*वर्ष*	*लिंग-अनुपात*
1901	972	1951	946
1911	964	1961	941
1921	955	1971	930
1931	950	1981	934
1941	945	1991	927
		2001	933

स्रोत : *भारत की जनगणना 2001, अनंतिम जनसंख्या सारणियाँ, रजिस्ट्रार व सेन्सस कमिश्नर, भारत।*

पहले हम जनसंख्या की आयु के आँकड़े विभिन्न आयु वर्गों जैसे 0-4, 5-9 आदि के लिए एकत्रित करते थे। पिछली दो जनगणनाओं से हमारे पास 7 वर्ष की जनसंख्या से कम और 7 वर्ष से अधिक के लिए सूचनाएँ उपलब्ध हैं। 0-6 आयु-वर्ग का लिंग-अनुपात दो बातों पर निर्भर है– जन्म के समय लिंग-अनुपात तथा 0-6 आयु-वर्ग में विभेदी शिशु मृत्यु दर। 7+ आयु के लिए

लिंग-अनुपात, 7 वर्ष की आयु के लिंग-अनुपात तथा 7 वर्ष से ऊपर विभेदी मृत्यु दरों (या आयु संभावना) पर निर्भर करती है। पूरे देश के लिए, लिंग-अनुपात में सुधार का कारण 0-6 के लिए नहीं परंतु 7+ के लिए लिंग अनुपात है जो महिलाओं की जीवन-प्रत्याशा में अधिक सुधार दर्शाता है। देखें सारणी 12.4 ।

सारणी 12.4
1991 तथा 2001 में 0-6 तथा 7+ आयु-वर्गों के लिए लिंग-अनुपात

वर्ष	0-6 के लिए लिंग अनुपात	7+ के लिए लिंग अनुपात	सभी के लिए लिंग-अनुपात
1991	945	923	927
2001	927	935	933

स्रोत : *भारत की जनगणना 2001 श्रेणी 1 भारत, अनंतिम जनसंख्या योग, रजिस्ट्रार व सेंसस कमिश्नर, भारत।*

0-6 आयु-वर्ग में लिंग-अनुपात में कमी बालिका-भ्रूण या बालिका या दोनों के साथ हमारे व्यवहार पर प्रकाश डालती है। यदि हम 1991 में 0-6 के लिए लिंग-अनुपात को 'सामान्य' मानें तो भी नब्बे के दशक में इसका अचानक कम हो जाना लज्जाजनक है। यदि 2001 में उतना ही लिंग-अनुपात होता जितना 1991 में, तो कुल लिंग-अनुपात 940 के आस पास होता। इसका भी कोई कारण नहीं है कि जहाँ 0-6 के लिए पंजाब का लिंग-अनुपात 1991 में 875 से घटकर 2001 में 793 तथा हरियाणा का 1991 में 879 से घटकर 2001 में 820 हो गया, वहीं केरल में 0-6 के लिए लिंग-अनुपात 958 से बढ़कर 963 हो गया (केरल देश का एक प्रदेश है जिसमें यह सुधार हुआ है तथा पंजाब व हरियाणा में हमेशा लिंग-अनुपात बहुत कम रहा है)।

सेन्सस जन्म के समय लिंग-अनुपात के आँकड़ों पर प्रकाश नहीं डालता। सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम के अनुसार 1982-98 में जन्म के समय लिंग-अनुपात 800 से 915 के बीच रहा जो जन्म के समय 'प्राकृतिक' लिंग-अनुपात 940-960 से तुलना करने पर काफी है। जन्म के समय लगभग 900 लिंग-अनुपात एक राष्ट्रीय औसत है, जो यह संकेत देता है कि कुछ राज्यों में स्थिति बहुत खराब है। ऐसा संदेह होता है कि किसी न किसी अवस्था में स्त्री भ्रूण का नाश हो जाता है। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि स्त्री-जन्म की रिपोर्टें कम दर्ज कराई जाती हैं। आज के आधुनिक युग में भी स्त्री-भ्रूण हत्या काफी प्रचलित है।

जहाँ तक हमारी स्त्री-जनसंख्या का प्रश्न है यह एक घृणित तथ्य है कि हम बालिकाओं के जन्म को कम कर रहे हैं, कभी-कभी छोटे परिवार के नाम पर। महिलाओं की जनसंख्या की जीवन-प्रत्याशा पुरुषों की जीवन-प्रत्याशा से अधिक हो चुकी है। स्त्री-पुरुष शिशु मृत्यु दरों में नाममात्र का अंतर है। विवाह की आयु 1951 में 15 वर्ष से बढ़कर शताब्दी के अंत तक लगभग बीस वर्ष हो गई।

साक्षरता दर

साक्षरता के क्षेत्र में एक आश्चर्यजनक उपलब्धि यह हुई है कि कई प्रकार के अंतर तेजी से कम हो रहे हैं। देखें सारणी 12.5। पिछले पचास वर्षों में, जबकि कुल महिला साक्षरता दर 9 प्रतिशत से बढ़कर 54 प्रतिशत हो गई है, ग्रामीण क्षेत्रों में यह 5 प्रतिशत से भी कम से बढ़कर 45 प्रतिशत हो गई। 1951 में यह अंतर 9 प्रतिशत महिला साक्षरता में 18 प्रतिशत प्वांइट था जो 2001 में बढ़कर 54 प्रतिशत साक्षरता पर 21 प्रतिशत प्वांइट हो गया।

सारणी 12.5
ग्रामीण-शहरी विभाजन के अनुसार पुरुष-स्त्री साक्षरता दर

(प्रतिशत में)

वर्ष	*ग्रामीण पुरुष*	*ग्रामीण स्त्री*	*शहरी पुरुष*	*शहरी स्त्री*	*पुरुष*	*स्त्री*
1951	19.02	04.87	45.60	22.33	27.10	08.86
1961	34.30	10.10	66.00	40.50	40.40	15.35
1971	48.60	15.50	69.80	48.80	45.96	21.97
1981	49.60	21.70	76.70	56.30	56.38	29.76
1991	57.90	30.60	81.10	64.00	64.13	39.29
2001	71.40	46.70	86.70	73.20	75.85	54.16

***स्रोत** : आर्थिक सर्वेक्षण 2001-2002, आर्थिक प्रभाग, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।*

परंतु इस विषय में संतोष करने का कोई प्रश्न ही नहीं है। यह एक ऐसा पक्ष है जहाँ लिंगों द्वारा शत-प्रतिशत साक्षरता का लाभ उठाया जाना चाहिए। वस्तुतः महिला-साक्षरता की दृष्टि से ग्रामीण-शहरी विभेद हर प्रकार से चौंकाने वाला है। कुल जनसंख्या में ग्रामीण महिलाओं का वर्ग ही ऐसा वर्ग है जिसमें साक्षरता 50 प्रतिशत से कम है।

राजनैतिक सशक्तिकरण

राजनीति में स्थानीय स्तरों के राजनैतिक निकायों में एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित कर दी गई हैं तथा महिला पंचों की संख्या 10 लाख से अधिक है। यह महिला सशक्तिकरण की दृष्टि से एक मुख्यतः कदम है। हालाँकि जिन कानूनों ने महिलाओं के लिए इन स्थानीय निकायों में सीटें सुरक्षित की हैं, उनकी अपनी सीटों में इनके लिए कोई आरक्षण नहीं है। देखें, सारणी 12.6 ।

इस सारणी से हम देख सकते हैं कि लोकसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अस्थिर परंतु बढ़ता रहा है। राज्य सभा में यह स्थिर रहा है। वहाँ यह प्रतिनिधित्व कम है। राज्य-सभाओं में भी ऐसा ही होना चाहिए।

श्रम-भागीदारी तथा मजदूरी

महिलाओं से घर के अंदर तथा बाहर दोनों स्थानों पर अधिक कार्य लिए जाते हैं। उनके घरेलू कार्यों को कार्य नहीं माना जाता है। यदि हम जनसंख्या में श्रमिकों के अनुपात पर विचार करें तो हम देखते हैं कि शहरों और गाँवों दोनों स्थानों पर पुरुषों की श्रम-भगीदारी दर लगभग 55 प्रतिशत है जबकि महिलाओं की भागीदारी दर शहरी क्षेत्रों में 12 प्रतिशत तथा ग्रामीण क्षेत्रों में 25 प्रतिशत है। बहुत लोग तो यह सोचते हैं कि ऐसा इसलिए है कि समाज में लोग महिलाओं का कार्य करना पसंद नहीं करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि सामान्यतः महिलाएँ जो घर से बाहर कार्य करती हैं, व पैसे कमाती हैं तथा घरेलू महिलाओं की तुलना में अधिक स्वाधीन होती हैं। अतः कई लोग ऐसी सलाह देते हैं कि उनकी भागीदारी बढ़ाई जानी चाहिए ऐसे लोग जो भारतीय परिस्थिति से परिचित हैं वे इस बात से सहमत होंगे कि ग्रामीण स्त्रियों की घर के बाहर भागीदारी, शहरी स्त्रियों की भाँति उनकी बेहतर स्थिति का द्योतक नहीं है। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि क्या महिलाएँ घर से बाहर कार्य, विशेषकर खेतों में, गरीबी दूर

सारणी 12.6
राज्य सभा तथा लोक सभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व

	लोक सभा				राज्य सभा			
वर्ष	लोक सभा	सीट	महिला सदस्य	प्रतिशत	वर्ष	सीट	महिला सदस्य	प्रतिशत
1952	I	499	22	4.4	1952	216	15	6.9
1957	II	500	27	5.4	1984	233	24	10.3
1962	III	503	34	6.8	1990	245	24	9.8
1967	IV	523	31	5.9	1992	245	17	6.9
1971	V	521	22	4.2	1994	245	20	8.2
1977	VI	544	19	3.5	1996	245	18	7.3
1980	VII	544	28	5.1	1997	245	18	7.3
1984	VIII	544	44	8.1	1998	245	19	7.8
1989	IX	517	27	5.2	1999	245	19	7.8
1991	X	544	39	7.2	2000	245	22	9.0
1996	XI	544	40	7.4				
1998	XII	543	43	7.9				
1999	XIII	543	49	9.0				

स्रोत : *भारतीय योजना अनुभव : एक सांख्यिकीय प्रोफाइल, प्लानिंग कमीशन, भारत सरकार, 2001 तथा इण्डिया इयरबुक 2001 मैनपावर प्रोफाइल, इन्स्टिच्यूट ऑफ मैनपावर रिसर्च, नई दिल्ली।*

करने के लिए करती हैं या अपने परिवार की आय को बढ़ाने के लिए।

ऐसा देखा गया है कि महिलाओं को अक्सर कम पैसे मिलते हैं। यहाँ पर उनके साथ विभेद होता है। यहाँ हम समान योग्यता वाले पुरुषों व महिलाओं को दिए जाने वाले पारिश्रमिक की जानकारी दे रहे हैं। देखें सारणी 12.7। ग्रामीण क्षेत्रों में आठवीं कक्षा पास श्रमिकों तथा शहरी क्षेत्र में सभी श्रमिकों को छोड़कर अन्य स्थानों पर हम देखते हैं कि महिलाओं को प्राप्त होने वाली औसत आय कम है। शहरी क्षेत्रों में सभी श्रमिक-वर्ग में महिलाओं को कम मजदूरी मिलती है। ग्रामीण क्षेत्रों में आठवें वर्ग तक शिक्षित महिलाओं की स्थिति बेहतर प्रतीत होती है, जो लगभग शहर की तृतीय कोटि के कर्मचारियों के बराबर है (गाँवों में नियमित नौकरियाँ केवल सरकारी नौकरियाँ ही होती हैं)। अनियमित मजदूरों में, महिलाओं की मजदूरी पुरुषों की मजदूरी का दो-तिहाई होती है।

नियोजनकर्त्ता यह तर्क दे सकते हैं कि महिलाएँ अलग प्रकार की नौकरियाँ करती हैं जिनमें अपेक्षाकृत कम कुशलता की आवश्यकता होती है अन्यथा यदि उनके कार्य समान होते तो उन्हें समान वेतन भी उपलब्ध होता। कई विद्वानों के मत भी ऐसे ही हैं। उदाहरण के लिए, चिकित्सा के पेशे को लें। नर्सों में महिलाओं की संख्या अधिक है तथा डाक्टरों में पुरुषों की।

प्रवसन (Migration)

लोग विभिन्न कारणों से तथा विभिन्न अवधियों के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं, जैसे

सारणी 12.7

कर्मचारियों द्वारा 1999-2000 में प्राप्त प्रतिदिन औसत मजदूरी/वेतन

(रुपयों में)

	ग्रामीण			*शहरी*	
नियमित	*पुरुष*	*महिलाएँ*	*नियमित*	*पुरुष*	*महिलाएँ*
निरक्षर	71.23	40.32	निरक्षर	87.63	51.83
आठवीं तक शिक्षित	91.63	161.48	आठवीं तक शिक्षित	105.08	64.41
माध्यमिक	148.23	126.09	माध्यमिक	168.16	145.73
स्नातक+	220.93	159.92	स्नातक+	261.55	234.74
कुल	127.32	114.01	कुल	169.71	295.00
अनियमित	44.84	29.01	अनियमित	62.26	37.71

***स्रोत :** इंडिया इयरबुक 2001, मैनपावर प्रोफाइल, जनसाधन शोध संस्थान, नई दिल्ली।*

सामाजिक दायित्वों (शादी-ब्याह आदि) में शामिल होने के लिए, कच्चे माल की खरीददारी के लिए, परिवार के साथ छुट्टियाँ मनाने, विवाह के कारण (महिलाओं के लिए), उच्च शिक्षा के लिए (गाँवों से शहरों में), एक नौकरी छोड़कर दूसरी नौकरी करने के लिए। जब कोई व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर शीघ्र वापस न लौटने के इरादे से जाता है तो इसे प्रवसन कहते हैं और उस व्यक्ति को प्रवासी (Migrant)। वह स्थान जहाँ से व्यक्ति जाता है उसे उसके मूल-स्थान के रूप में जाना जाता है तथा वह स्थान जहाँ वह जाता है उसे उसके गंतव्य के रूप में। यदि मूल-स्थान और गंतव्य दो देशों में हों तो प्रवसन (International migration) को अंतरराष्ट्रीय प्रवसन कहते हैं अन्यथा इसे आंतरिक प्रवसन (Internal migration) कहते हैं।

प्रवसन शब्दावली

आंतरिक प्रवसन में जो आगमन (In-migration) है, वही अंतरराष्ट्रीय प्रवसन में आप्रवास (Immigration) है। आंतरिक प्रवसन में जो निर्गमन (Out-migration) है, वही अंतरराष्ट्रीय प्रवसन में उत्प्रवास (Emigration) है।

यह आसानी से देखा जा सकता है कि आंतरिक प्रवसन के अंतर्गत जिले के अंदर, एक जिले से दूसरे जिले तथा एक राज्य से दूसरे राज्य के बीच प्रवसन हो सकते हैं। प्रत्येक वर्ग में तथा इन वर्गों के बाहर भी एक गाँव से दूसरे गाँव के बीच, गाँव से शहर के बीच, शहर से गाँव के बीच तथा एक शहर से दूसरे शहर के बीच प्रवसन होते रहते हैं। ये ऐसे वर्ग हैं, जिनके लिए अधिकांश प्रवसन के आँकड़े एकत्र किए जाते हैं तथा उनका विश्लेषण किया जाता है।

आंतरिक प्रवसन

प्रवसन को कारण या प्रयोजन के आधार पर दो वर्गों में बाँटा जा सकता है– सामाजिक या आर्थिक। अधिकांश महिलाएँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर विवाह के बाद जाती हैं। अधिकांश समाजों में अभी भी एक ही गाँव के लड़के-लड़कियों के विवाह की प्रथा नहीं है। आर्थिक प्रवसन का संबंध किसी व्यक्ति के लिए उनके वर्तमान निवास से दूर आर्थिक अवसर की उपलब्धता के साथ है। इस प्रक्रिया को श्रम का प्रवसन कहते हैं। जो लोग किसी व्यापारिक प्रतिष्ठान या फैक्टरी की स्थापना

करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं उन्हें सामान्य श्रमिक कहते हैं जिनमें नियोजक, नियोजित एवं स्वनियोजित शामिल हैं।

लोग केवल एक स्थान से दूसरे स्थान पर ही नहीं, बल्कि एक पेशे से दूसरे पेशे में भी जाते हैं। एक ही स्थान पर एक पेशे से दूसरे पेशे के बीच परिवर्तन को प्रवसन नहीं कहते हैं। परंतु ऐसा होता है कि कई स्थानों पर सिर्फ एक विशेष प्रकार की ही नौकरियाँ उपलब्ध हों। उदाहरणस्वरूप, ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि मुख्य क्रिया है, जबकि विनिर्माण या बैंकिंग आदि सेवाएँ शहरों में ही उपलब्ध होती हैं। आदम स्मिथ ने कहा भी है कि **कृषि गाँवों का उद्योग है तथा विनिर्माण शहरों का।**

आर्थिक प्रवसन मूल रूप से विकर्णी (तिरछा) होता है अर्थात् स्थानों के बीच तथा व्यवसायों/आर्थिक क्रियाओं के बीच। यूरोप में, औद्योगीकरण के समय, कृषि की उत्पादकता बढ़ रही थी जिससे कृषि कार्यों के लिए श्रमिकों की आवश्यकता कम हो गई थी। उद्योगों में अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता हो गई थी। कृषि से निकले हुए लोग उद्योगों में लिए जा रहे थे। इस तथ्य के बावजूद कि कृषि की उत्पादकता तथा मजदूरी दोनों बढ़ रही थी, कृषि अपने श्रमिकों की छँटनी कर रही थी तथा जनसंख्या की वृद्धि के कारण होने वाली श्रमिकों की वृद्धि को आत्मसात नहीं कर रही थी। उद्योगों में आश्चर्यजनक रूप से प्रगति हो रही थी तथा इनमें काफी श्रमिकों को रोजगार प्राप्त होने की संभावना बढ़ रही थी।

उद्योग में निश्चय ही कृषि की तुलना में प्रतिव्यक्ति अधिक मशीनों का प्रयोग हो रहा था। 'विनिर्माण' शब्द का अर्थ है हाथ से किसी वस्तु का निर्माण करना। विनिर्माण में उत्पादन प्रक्रिया में हाथ का प्रयोग होता है। चूँकि अधिकांश विनिर्माण इकाइयाँ शहरों में स्थित थीं या स्थापित की जा रही थीं, अतः श्रम का प्रवाह गाँवों से शहरों की ओर था। आज हम इसे ग्रामीण-से-शहरी क्षेत्र में प्रवसन या ग्रामीण-शहरी प्रवसन कह सकते हैं। अधिक-से-अधिक लोग अपने परिवार के साथ ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर जा रहे हैं। पुराने शहरों का विस्तार हो रहा है तथा नए बन रहे हैं। जनसंख्या तथा समृद्धि बढ़ने के साथ-साथ शहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का अनुपात भी बढ़ रहा है।

आज प्रवसन शहरी क्षेत्रों में आर्थिक और शैक्षिक अवसरों के आकर्षण के कारण तथा गाँवों में ऐसे अवसरों की कमी या असुरक्षा के कारण हो रहा है। यह प्रवसन भी कुछ विशेष स्थानों पर ही अधिक हो रहा है। लोग महानगरों में जा रहे हैं जहाँ बहुत भीड़-भाड़ हो गई है जिसके कारण ये गंदी बस्तियों के समूह की भाँति हो गए हैं। लोगों को इन महानगरों में जाने से रोकने वाली योजनाएँ बहुत सफल नहीं हुईं। उपग्रह शहरों (Satellite towns) को नए केंद्रों (Counter magnates) के रूप में विकसित करने की योजनाओं का कोई विशेष प्रभाव नहीं हो पाया।

हमारी जनगणनाओं में, प्रवसन के प्रकारों का वर्गीकरण उन कारणों के आधार पर किया जाता है जिनके कारण प्रवसन होते हैं। ये कारण हैं– रोजगार, शिक्षा, परिवार का स्थानांतरण, विवाह तथा अन्य कारण। इस संबंध में 1981 तथा 1919 के लिए कुछ जानकारी हम सारणी 12.8 में दे रहे हैं।

उपर्युक्त सारणी से यह पता चलता है कि अधिकांश महिलाएँ रोजगार या शिक्षा के लिए नहीं वरन् वैवाहिक कारणों से स्थान परिवर्तन करती हैं। उन्हें अपने परिवार के साथ स्थान परिवर्तित करना ही पड़ता है। अतः महिलाएँ पूरी तरह

सारणी 12.8
कारणों के आधार पर प्रवसन का वितरण

(प्रतिशत)

	1981		1991	
कारण	*महिलाएँ*	*पुरुष*	*महिलाएँ*	*पुरुष*
रोजगार	1.9	31.8	1.8	27.0
शिक्षा	1.0	5.1	0.8	4.8
पारिवारिक स्थानांतरण	14.3	30.3	11.0	26.6
विवाह	73.4	3.3	76.1	4.0
अन्य	9.4	29.5	10.3	37.6
कुल प्रवसन (करोड़)	14.52	62.5	16.78	64.3

स्रोत : इंडिया इयर बुक मैनपावर प्रोफाइल, इंस्टीच्यूट ऑफ एप्लाएड मैनपावर रिसर्च, नई दिल्ली।

सामाजिक कारणों से स्थान परिवर्तित करती हैं। दूसरी ओर, पुरुष अधिकतर रोजगार के लिए, कभी-कभी शिक्षा के लिए तथा कभी परिवार के स्थानांतरण के कारण भी स्थान परिवर्तित करते हैं।

अंतरराष्ट्रीय प्रवसन

एक देश से दूसरे देश में प्रवसन अंतरराष्ट्रीय प्रवसन के रूप में जाना जाता है। यूरोप से लोग मुक्त नागरिक के रूप में एशिया से अनुबंधित श्रमिक के रूप में यूरोप के उपनिवेशों से उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका में दासों की तरह गए थे। एक ओर जनसंख्या का बोझ तथा दूसरी ओर नई दुनिया के आकर्षण के कारण यह स्थान-परिवर्तन संभव हो सका। परंतु आज की दुनिया तो अलग ही प्रकार की है।

अब हम पूँजी वित्त की मुक्त गतिशीलता की बात करते हैं न कि श्रमिक की। बहुत गिने-चुने लोगों को ही अब आने-जाने की अनुमति मिलती है। एक समय ऐसा था जब हम कुशल जनसाधन के अल्प-विकसित देशों से विकसित देशों में जाने को 'ब्रेन-ड्रेन' कहते थे। जो लोग अपने देश को छोड़कर जाते हैं, वे इसका कारण अपने देश में अपनी योग्यता के अनुरूप नौकरी न मिल पाना बताते हैं।

कुछ क्षेत्रकों में, तथाकथित अल्पविकसित देशों से व्यक्तियों की बहुत अधिक माँग है क्योंकि ये कम-वय के, फुर्तीले और आवश्यक कुशलता से युक्त होते हैं। अधिकांश यूरोपीय देशों में जनसंख्या का स्टॉक वृद्ध है, अतः उन्हें भारत जैसे देश से कम उम्र के लोगों की आवश्यकता होती है। भारत में इसे शिक्षा-उद्योग का निर्यात मानते हैं। परंतु विश्व में पुरुषों तथा श्रमिकों का मुक्त आवागमन अभी भी दूर है।

निष्कर्ष

हमने इस अध्याय में तीन विषयों पर चर्चा की– पर्यावरण, लिंग तथा प्रवसन। पर्यावरण का संबंध वानिकी, प्रदूषण-निवारण, संरक्षण, जैविक-विविधता आदि से है। हमने यहाँ अपनी चर्चा वायु व जल के

प्रदूषण, मृदा (मिट्टी) के अवक्रमण तथा वानिकी तक सीमित रखी है।

लिंग के मामले में, लिंग-समानता की अपनी प्रतिबद्धता से आरंभ कर हमने यह समझने का प्रयास किया कि हम कितने दूर तक सफल हुए हैं और कितने असफल। हमने लिंग-अनुपात, विशेषकर 0-6 आयु वर्ग में, साक्षरता, राजनैतिक व आर्थिक भागीदारी (श्रम बल के लिए) तथा मजदूरी के विश्लेषण द्वारा ऐसा किया।

प्रवसन के इतिहास तथा सिद्धांत की रूपरेखा प्रस्तुत करने के बाद हमने राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय दोनों प्रकार के प्रवसनों का वर्णन किया। प्रवसन के कारणों का भी उल्लेख किया गया।

अभ्यास

1. प्रकृति और विकास के संबंध की दृष्टि से प्राचीन और वर्तमान चिंतन में अंतर के विरोधाभास को वर्णित करें।
2. आपका ध्यान आकर्षित करने वाले मुख्य पर्यावरण संबंधी मुद्दे कौन से हैं?
3. वायु-प्रदूषण के प्रमुख कारण क्या हैं?
4. आप प्रदूषण को रोकने/निवारण करने की लागत का औचित्य कैसे बताएँगे?
5. जल-प्रदूषण के मुख्य कारणों का वर्णन करें।
6. संसाधनों के अवक्रमण से आप क्या समझते हैं?
7. भूमि का कितना अनुपात वनों के अंतर्गत होना चाहिए? पर्वतीय क्षेत्रों के लिए क्या सुझाव है?
8. सामाजिक-वानिकी के कार्यक्रम का वर्णन करें।
9. 1988 की वन-नीति प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करें।
10. भारत में भूमि-अवक्रमण का क्या स्तर है?
11. भारत में भूमि-अवक्रमण के क्या कारण हैं?
12. लिंग-संबंधी विषयों से आप क्या समझते हैं?
13. पूरी शताब्दी के दौरान लिंग-अनुपात की प्रवृत्ति का उल्लेख करें।
14. लिंग-अनुपात निर्धारित करने वाले कारण बताएँ।
15. नब्बे के दशक में शिशु-लिंग-अनुपात में कमी क्यों हुई?
16. पिछले पचास वर्षों में महिला-साक्षरता तथा पुरुष साक्षरता के क्षेत्र में हुई प्रगति पर प्रकाश डालें।
17. पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के प्रतिनिधित्व के नियम क्या हैं? संसद तथा विधान सभाओं में ऐसे नियम क्यों नहीं हैं?

18. श्रम-भागीदारी की स्थिति तथा महिला श्रमिकों की औसत-मजदूरी की अवस्था का वर्णन करें।
19. नई दुनिया की ओर होने वाले प्रवसन का ऐतिहासिक विवरण दें।
20. आर्थिक प्रवसन से आप क्या समझते हैं?
21. प्रवसन संबंधी आकर्षणों व विकर्षणों का उल्लेख करें।
22. कारणों के आधार पर महिलाओं की प्रवसन प्रवृत्ति कैसी है?
23. कारणों के आधार पर पुरुषों के प्रवसन की प्रवृत्ति कैसी है?
24. 'ब्रेन-ड्रेन' से आप क्या समझते हैं?
25. शिक्षा एक उद्योग है और हमें इसके उत्पादों का निर्यात करना चाहिए, इस नई विचारधारा के पक्ष व विपक्ष में तर्क दें।

पारिभाषिक शब्द कोष

- **सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product):** यह किसी अर्थव्यवस्था में एक दी हुई समयावधि में (जो सामान्यतया एक वर्ष होता है), उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं के परिमाण का (बिना दोहरी गणना के) मौद्रिक माप है। वस्तुओं के उत्पादन की विभिन्न इकाइयों (टनों, मीटरों, तथा लीटरों) तथा सेवाओं के विभिन्न मापों (हड्डियों की शल्य चिकित्साओं की संख्या, रंगमंच कार्यक्रमों की संख्या, टन-किलोमीटर में परिवहन) को जोड़ा नहीं जा सकता। अतः वस्तुओं और सेवाओं के परिमाण की माप मूल्य-रूप में की जानी चाहिए। उत्पादन के सभी क्रियाकलापों के योगदान को, चाहे वह वस्तुएँ हों या सेवाएँ, जोड़ते हैं। किसी विशिष्ट क्रियाकलाप के योगदान को मापने के लिए हमें निर्गतों के मूल्य में से आगतों के मूल्य को घटाना चाहिए, जिससे कि दूसरी क्रियाओं के उत्पादन में आगत के रूप में प्रयुक्त बहुत-सी वस्तुओं और सेवाओं की दो बार गणना (दोहरी गणना) न हो। विभिन्न समयों में बहुत-सी वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें भिन्न-भिन्न होती हैं। दो विभिन्न समयावधियों में समस्त क्रियाकलापों (गतिविधियों) के परिमाण में होने वाले वास्तविक परिवर्तन को मापने के लिए स्थिर कीमतों पर सकल घरेलू उत्पाद का प्रयोग करने की सावधानी बरतनी चाहिए। मान लें किसी अर्थव्यवस्था में जो भी उत्पादित होता है किलोग्राम में मापा जा सकता है (सेब, गेहूँ, अंडे तथा मोती)। क्या हमें उन्हें जोड़ना चाहिए यदि नहीं, तो क्यों, सोचिए।

- **केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन (C.S.O.) तथा राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी (N.A.S.):** सांख्यिकीय संगठन, मई 1951 में मंत्री परिषद् सचिवालय में स्थापित किया गया था, परंतु अब यह सांख्यिकी-विभाग का एक हिस्सा है। देश में सांख्यिकीय गतिविधियों के समन्वयन के उत्तरदायित्व को संभालना; परिभाषाओं, कार्यप्रणाली एवं अवधारणाओं के संबंध में मानक निर्धारित करना; अन्य सांख्यिकीय एजेन्सियों को परामर्श तथा सलाह की सहायता देना तथा अंतरराष्ट्रीय सांख्यिकीय एजेन्सियों (अभिकर्त्ताओं) के साथ ताल-मेल रखना इसका उत्तरदायित्व है। 1954 में वित्त मंत्रालय से राष्ट्रीय आय के अनुमान के कार्य के हस्तांतरण के बाद, इसे समष्टिगत आर्थिक सम्मुच्चयों के साथ राष्ट्रीय आय के लेखे, सार्वजनिक क्षेत्र के लेखे तथा राष्ट्र के समेकीकृत लेखे तैयार करने का अधिकार सौंपा गया। राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी (N.A.S.), केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन का वार्षिक प्रकाशन है, जो विभिन्न क्रियाकलापों के विभिन्न मापों को सविस्तार प्रस्तुत करता है।

- **विकास अर्थशास्त्र (Development Economics):** विकास अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा है, जो विकासशील देशों में निर्धन व्यक्तियों की समूह की स्थिति को सुधारने की दृष्टि से, विकास के सिद्धांत तथा विकास की नीतियों से संबंधित है।
- **संसाधन (Resources):** मानव समाज में प्रयोग किए जाने वाले द्रव्य, माल तथा वस्तुएँ संसाधन के नाम से जानी जाती हैं। समय के साथ प्रौद्योगिकी या रुचि में परिवर्तन से संसाधनों का सापेक्ष महत्त्व बदल सकता है। ऊर्जा संसाधन के रूप में लकड़ी का स्थान कोयला, कोयले का तेल या विद्युत ले सकता है। कुछ प्रक्रियाओं में अपशिष्ट उत्पाद दूसरी प्रक्रियाओं के संसाधन बन सकते हैं। संसाधनों को विशिष्ट रूप से नहीं परंतु मोटे तौर पर निम्न चार वर्गों में बाँटा जा सकता है :
- **सर्वकालिक संसाधन (Purpetual Resources) :** ऐसे संसाधन जिनकी आपूर्ति सापेक्ष रूप से निरंतर बनी रहेगी, चाहे उनका कैसे और कितना भी उपयोग क्यों न हो। सौर-उर्जा इसका एक उदाहरण है। शायद भू-तापीय ऊर्जा और वायु ऊर्जा इसके दूसरे उदाहरण बन सकते हैं।
- **पुनर्नवीनीकरण योग्य संसाधन (Renewable Resources):** ये वे संसाधन हैं जिनका एक बार प्रयोग के बाद प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा आसानी से नवीनीकरण किया जा सकता है। वन, पशु, तथा मत्स्य का यदि अत्यधिक अवशोषण नहीं किया जाए तो आसानी से नवीनीकृत हो जाते हैं। जल भी इसी श्रेणी में आता है।
- **अनवीनीकरण योग्य संसाधन (Non-renewable Resources) :** अनवीनीकरण योग्य संसाधन वे हैं जिन्हें सरलता से नवीनीकृत नहीं किया जा सकता। ये सीमित हैं, यद्यपि इनके विशाल भण्डार हैं। जीवाश्म तेलों के भण्डार (तेल एवं कोयला) तथा खनिज संसाधन (लोहा, लीड, एल्यूमीनियम, यूरेनियम) आज भी उतने ही हैं, जितने करोड़ों वर्ष पूर्व थे। कार्बन डाईआक्साइड (Co_2) तथा हाइड्रोजन आक्साइड (H_2o) को पुनः जीवाश्म तेलों में परिवर्तित करने में उतनी ही अधिक ऊर्जा लगेगी जितनी हम उनसे प्राप्त करते हैं।
- **संभावित साधन (Potential Resources):** बहुत से संसाधन जिन्हें आज हम जानते हैं, एक समय संसाधन नहीं समझे जाते थे। या तो हमें समुद्री भोजन के प्रति अभिरुचि नहीं थी, या पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस के प्रयोग के लिए प्रौद्योगिकी परिपक्व नहीं थी। किसी समाज में आर्थिक, सांस्कृतिक तथा प्रौद्योगिकीय स्थितियाँ उपलब्ध पदार्थों का प्रयोग जान सकती हैं या प्रयोग के लिए नए पदार्थ खोज सकती हैं। अपशिष्ट जल तथा केचुवे अब संसाधन माने जाते हैं।
- **नागरिक तथा राजनैतिक अधिकार (Civic and Political Rights) :** राजनैतिक अधिकारों का संबंध नागरिकों के उन अधिकारों से है जो यह निर्धारित करने में भूमिका निभाते हैं

कि उनके सार्वजनिक हित से संबद्ध मामलों में कौन शासन करता है और वे कैसे शासित किए जाते हैं। नागरिक अधिकार राज्य के तथा व्यक्तिगत अधिकारों से संबंधित हैं।

- **लेखा-अवधि (Accounting Period):** यह साधारणतया एक वर्ष की होती है। कैलेंडर वर्ष के अलावा हमारे पास एक राजस्व वर्ष या वित्त वर्ष, शिक्षा वर्ष (सत्र), कृषि वर्ष आदि होते हैं। कैलेंडर वर्ष वास्तव में एक जनवरी से 31 दिसंबर तक होता है। हमारे देश में राजस्व वर्ष एक कैलेंडर वर्ष की पहली अप्रैल से दूसरे कैलेंडर वर्ष के 31 मार्च तक होता है, जब कि शिक्षा-वर्ष (सत्र) एक कैलेंडर वर्ष की एक जुलाई से दूसरे कैलेंडर वर्ष के 30 जून तक होता है। कृषि वर्ष, शिक्षा वर्ष की भाँति ही होता है। कैलेंडर वर्ष को 2001 के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जबकि राजस्व वर्ष और शिक्षा वर्ष को 2000-2001 के रूप में लिखा जाता है। हमारे समिष्टिगत आर्थिक समुच्चय राजस्व वर्ष से संबंधित हैं, जबकि विद्यालयों के नामांकन का संबंध शैक्षिक वर्ष से है। कुछ व्यापारी व्यापार वर्ष को दिवाली से दिवाली तक भी मानते हैं।

- **सामान्यीकरण या अवस्फीति (Normalisation or Deflation) :** यह एक आधुनिक पद (अवधारणा) है जिसका प्रयोग वितरण के ऐसे तत्व से होता है जो अंश को तुलनात्मक बनाता है। कभी-कभी अंश को भी इसमें से कुछ घटाकर या इसे किसी से घटाकर संशोधित (परिवर्तित) किया जाता है। किसी सामान्य वितरित चर के लिए सामान्यीकरण एवं प्रमापीकरण समानता देखी जा सकती है।

- **जीवन-प्रत्याशा (Life Expectancy):** आयु पर जीवन प्रत्याशा को लोगों के जीवित रहने के औसत प्रत्याशित वर्षों (एक निश्चित समय बिन्दु पर) के रूप में मापा जाता है। जन्म के समय जीवन प्रत्याशा एक दिए वर्ष में जन्मे शिशुओं के जीवित रहने के औसत वर्षों की संख्या है। एक वर्ष की आयु में जीवन प्रत्याशा (साधारणतया) स्वाभाविक रूप से उन शिशुओं के द्वारा प्रत्याशित जीए गए वर्षों की संख्या है जो, अपने जीवन के प्रथम वर्ष में जीवित रह पाए।

- **शिशु मृत्यु दर (Infant Mortaliy Rate):** एक वर्ष की आयु से पहले मृत्यु शिशु-मृत्यु कहलाती है। शिशु-मृत्यु दर प्रतिवर्ष प्रति हज़ार जीवित जन्मे शिशुओं की मृत्यु की संख्या है (जीवित जन्म की गणना में मृत जन्म, अकाल प्रसव तथा प्रेरित गर्भपात को निकाल दिया जाता है)। ऐसी स्थितियों में जहाँ शिशु मृत्यु दर विस्तृत रूप से वर्ष-दर-वर्ष उच्चावचित हो रही है, जनसांख्यक इस तथ्य को ध्यान में रखें कि किसी विशिष्ट वर्ष के शिशु मृत्यु में अगले वर्ष की शिशु मृत्यु की संख्या शामिल हैं, क्योंकि इस वर्ष जन्मे बच्चों की अगले वर्ष शिशु के रूप में मृत्यु हो सकती है।

- **मौलिक साक्षरता दर (Basic Literacy Rate):** किसी समाज में 15 वर्ष की आयु की कुल जनसंख्या में 15 वर्ष से ऊपर के साक्षर लोगों की संख्या के प्रतिशत को मौलिक

साक्षरता दर के रूप में जाना है। इसे मूल (मौलिक) इसलिए कहते हैं क्योंकि साक्षर होने के लिए कम से कम किसी भी एक भाषा में पढ़ने और लिखने में सक्षम होने की आवश्यकता है। यह हमारे देश में प्रौढ़ शिक्षा दर की तरह है।

- **विद्यालयी शिक्षा का औसत वर्ष (Mean Year of Schooling) :** विद्यालयी शिक्षा के दिए गए वर्षों को उन लोगों की संख्या से गुणा करें जिन्हें यह प्राप्त हुई है। ऐसे सब प्राप्तांकों को जोड़ें। कुल जोड़ को कुल व्यक्तियों की संख्या से भाग दें। प्राथमिक शिक्षा पाने वाले सभी व्यक्तियों को पाँच वर्ष की विद्यालयी शिक्षा पाने वाला माना जा सकता है। अतः व्यक्तियों की संख्या को (प्राथमिक शिक्षा प्राप्त) 5 से गुणा करें। अन्य स्तरों के लिए भी ऐसा ही करें।

- **संयुक्त नामांकन दर (Combined Enrollment Rate) :** शिक्षा के किसी दिए हुए स्तर पर संयुक्त नामांकन दर को प्राप्त करने के लिए नामांकन के आकार को उस आयु वर्ग में जनसंख्या के आकार से विभाजित कर ज्ञात किया जा सकता है। उदाहरण के लिए भारत में प्राथमिक स्तर पर नामांकन की दर, प्राथमिक कक्षाओं में नामांकन के आकार (संख्या) को जनसंख्या के 6 से 11 वर्ष की आयु-वर्ग के आकार (संख्या) से विभाजित कर प्राप्त किया जा सकता है। प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर नामांकन दर की गणना इसी भाँति की जाती है। संयुक्त नामांकन दर के लिए हमें जनसंख्या के 6 से 23 वर्ष की आयु वर्ग की संख्या से कुल विद्यार्थियों की संख्या को विभाजित कर निकालना चाहिए।

- **क्रय शक्ति समानता विनिमय दर (Purchasing Power Parity Exchange Rate):** एक अमेरिकी डालर प्राप्त करने के लिए हमें बाजार विनिमय दर पर आपको लगभग 50 रुपए देने की आवश्यकता होगी। अब हम एक ब्रेड के एक सामान्य पैकेट का उदाहरण लेते हैं जो एक अति-आवश्यक वस्तु है। मान लीजिए यह भारत में 15 रुपए में मिलता है तथा अमेरिका में 3 अमेरिकी डालर में, तो ब्रेड के संबंध में एक अमेरिकन डालर पाँच रुपए के बराबर है। ऐसा ही उस स्थिति में भी होगा जब हम समान आकार व स्तर वाले एक आवासीय फ्लैट को दो तुलना-योग्य शहरों में किराए पर लेते हैं। बहुत से अल्प-विकसित देशों में जहाँ बाजार (विनिमय के मूल्य से किया गया माप वास्तविक परिमाप से कम होता है तो बहुत सी आवश्यक वस्तुएँ घर में बनी होती हैं)। जब क्रय शक्ति समानताओं का प्रयोग होता है तो भारत का सकल घरेलू उत्पाद (GDP) चार गुना बढ़ जाता है, चीन का पाँच गुना तथा जापान का केवल 0.6 गुना। बाजार विनिमय दरों पर 1994 में जापान और चीन का सकल घरेलू उत्पाद क्रमशः 4600 अमेरिकी डालर तथा 520 अमेरिकी डालर था, परंतु क्रय-शक्ति समानताओं के संदर्भ में यह 2800 PPP$ क्रय शक्ति समानता डालर तथा PPP$ 2475 क्रय शक्ति समानता डालर था।

- **राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (National Sample Survey):** देश में अधिकांश उच्च-स्तरीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के उत्तरदायित्व का वहन राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन द्वारा किया जाता है। एक वैज्ञानिक प्रक्रिया का प्रयोग करते हुए यह एक नियमित अन्तराल के उपभोग-व्यय सर्वेक्षण, रोजगार-बेरोजगारी सर्वेक्षण-ऋण तथा निवेश सर्वेक्षण के आँकड़े एकत्र करता है। यह इसके अतिरिक्त विभिन्न अन्य विषयों पर भी आँकड़े एकत्र करता है।
- **पंजीकृत विनिर्माण इकाइयाँ (Registered Manufacturing Units):** फैक्टरी अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक विनिर्माण संस्थान (मरम्मत तथा रख-रखाव की गति-विधियों सहित) को पंजीकृत कराना पड़ता है, यदि इसमें 10 या अधिक नियोजित व्यक्ति हों तथा यह ऊर्जा का उपयोग करता है या बीस से अधिक नियोजित व्यक्ति हों परंतु यह ऊर्जा का उपभोग न करता हो।
- **संगठित क्षेत्र (Organised Sector):** सार्वजनिक संस्थानों सहित सभी निजी संस्थान भी किसी कानून के अंतर्गत पंजीकृत हैं– फैक्टरी अधिनियम, कम्पनी अधिनियम/निगम अधिनियम संगठित क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के सभी संस्थानों के साथ-साथ इनकी सामान्य विशेषता है कि ये सभी लेखों का रख-रखाव करते हैं।
- **रोजगार का व्यावसायिक वर्गीकरण (Occupational Classification of Employment):** आप कहाँ नियुक्त हैं, यह आपके औद्योगिक स्तर को परिभाषित करता है तथा आप कैसे नियुक्त हैं यह आप के व्यावसारिक स्तर को परिभाषित करता है। व्यावसायिक वर्गीकरण व्यावसायिक श्रमिकों, प्रशासकीय/प्रबंधकर्त्ता श्रमिक, क्लर्क/ स्टेनोग्राफर, विक्रय कार्यकर्त्ता, नौकरीपेशा श्रमिक, किसान, ड्राईवर, श्रमिक आदि के रूप में किए जाते हैं।
- **मिलियन टन तेल तुल्यमान (Million Tonne of Oil Equivalent):** लकड़ी, कोयला, तेल, गैस और विद्युत ऊर्जा के विविध स्रोत हैं। इनमें से एक रूप को दूसरे रूप से आसानी से प्रतिस्थापित किया जा सकता है, जैसे लकड़ी को कोयले द्वारा। कुछ रूपों को दूसरे रूपों में परिवर्तित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए कोयला, तेल तथा गैस को विद्युत में। ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों का प्रयोग इसके उपयोग तथा प्रौद्योगिकी (तकनीकी) के विकास पर निर्भर करता है। विभिन्न विधाओं के सापेक्ष योगदान के महत्त्व को जानने के लिए इनको एक सामान्य इकाई में परिवर्तित करना होगा। ब्रिटिश तापीय इकाई जूल (JOULE) तथा कैलोरी, ऊर्जा की इकाइयाँ हैं, क्योंकि तेल को अब बहुत से प्रचालनों में सामान्य रूप से प्रयोग किया जाता है। इसलिए प्रत्येक के ऊर्जा की मात्रा को मापने के लिए तेल तुल्यमान को वर्तमान रूप में स्वीकार कर लिया गया है। बड़ी संख्याओं के लिए मिलियन अंतरराष्ट्रीय रूप से स्वीकृत इकाई है।

- **मार्ग तथा पटरी किलोमीटर (Route and Track Kilometres):** दो बिन्दुओं के बीच की दूरी को मार्ग दूरी (Route Distance) के द्वारा मापते हैं चाहे यह एक पटरी से मापी जाए या दो पटरी से या तीन/चार से। जब सभी पटरियों को मापा जाता है (दोहरे को दो तथा तिहरे को तीन) तो यह कुल पटरियों की संख्या है। फिर भी, तकनीकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कुछ इधर-उधर और यार्ड तक जाने वाली अतिरिक्त पटरियाँ होती हैं। जब इन अतिरिक्त लाईनों को घटा देते हैं, तो हमें चालू ट्रैक प्राप्त होता है।

- **यात्री किलोमीटर/टन किलोमीटर (Passenger Kilometre / Tonne Kilometre):** एक व्यक्ति (एक टन सामान) को एक किलोमीटर तक पहुँचाना एक यात्री किलोमीटर (टन किलो मीटर) है।

- **पंजीकृत टन (Registered Tonne):** 100 घनाकार फीट की घनाकार क्षमता को पंजीकृत टन कहते हैं।

- **डाक सेवाएँ (Postal Services):** डाक सेवाओं को मौलिक डाक सेवा के रूप में विभाजित किया जा सकता है। मौलिक डाक सेवा का संबंध टिकटों तथा स्टेशनरी की बिक्री, पंजीकृत तथा बीमाकृत सामग्रियों की तथा पार्सलों की स्वीकृति, मूल्य का भुगतान करने योग्य सामग्री, पार्सल मनीऑर्डर तथा पोस्टल-आर्डर से है। दूसरी डाक सेवाओं में शीघ्रगामी डाक (स्पीड पोस्ट), व्यावसायिक डाक, डाक संचार, डाक लेखन सामग्री (पोस्टल स्टेशनरी पर सार्वजनिक व निजी निगमित क्षेत्र के विज्ञापन) सैटेलाइट डाक, त्वरित डाक, खुदरा डाक (टेलीफोन तथा बिजली के बिलों को स्वीकार करना) आदि आती हैं।

- **प्रतिशत बिंदु (Percent Points):** दो प्रतिशतों के बीच की निरपेक्ष दूरी को प्रतिशत बिंदु के रूप में जाना जाता है। उदाहरण के लिए 50 प्रतिशत तथा 60 प्रतिशत के मध्य की निरपेक्ष दूरी (60 प्रतिशत-50 प्रतिशत) = 10 है जबकि सापेक्ष दूरी [{(60 प्रतिशत) 50 प्रतिशत) / 50 प्रतिशत} × 100] = 20%।

- **सकल नामांकन दर (Gross Enrollment Ratio):** शिक्षा के एक विशिष्ट स्तर पर, उदाहरण के लिए, प्राथमिक स्तर पर अनुपात को सकल नामांकन अनुपात कहते हैं। उस आयु-वर्ग (अर्थात् 6-11 आयु वर्ग में) के बच्चों की जनसंख्या के आकार में नामांकित छात्रों की संख्या के अनुपात को सकल नामांकन अनुपात कहते हैं। इस दर को प्रायः प्रतिशत के रूप में व्यक्त करते हैं। फिर भी हम जानते हैं, बहुत सी प्राथमिक कक्षाओं (कक्षा I-V) नामांकित छात्र वस्तुतः 6-11 आयु वर्ग में नहीं आते। ऐसे बच्चे भी हैं जिसकी आयु 6 वर्ष से कम है या 11 वर्ष से अधिक है। कुछ राज्यों के संदर्भ में इस प्रकार सकल नामांकन अनुपात (दर) 100 प्रतिशत से अधिक हो सकती है। परंतु कुछ राज्यों में यह 150 भी हो गई। यदि हम निर्धारित आयु से अधिक आयु तथा इससे कम

आयु के बच्चों की गणना अलग कर दें, तो नामांकन अनुपात को निवल नामांकन अनुपात कहा जाएगा।

- **जीवन-मरण संबंधी आँकडे (Vital Statistics):** ये जन्म तथा मृत्यु से संबन्धित आँकड़े हैं। जन्म तथा मृत्यु संबंधित तथ्यों का वर्णन करने के लिए कई प्रकार के अनुपात हैं। शिशु मृत्यु दर या बाल मृत्यु दर को विशिष्ट महत्त्व दिया गया है। जीवन प्रत्याशा एक महत्त्वपूर्ण जीवन-मृत्यु सांख्यिकी है।
- **जीवित जन्म (Live Birth):** ऐसे बच्चों का जन्म जो प्रसव के समय जीवित हों (मृत जन्म, अकाल जन्म तथा प्रेरित गर्भपात को जन्म में नहीं गिना जाता है क्योंकि गर्भ से निकलने वाले ऐसे बच्चे पहले ही से मृत हैं)।
- **कोहर्ट (COHORT):** लोगों का कोई समूह जिनका आरम्भ किसी विशिष्ट घटना से एक ही समय में एक ही साथ होता है COHORT के नाम से जाना जाता है। यह एक पीढ़ी की तरह है। फर्क केवल यह है कि पीढ़ी में संबंध के किसी विशिष्ट घटना के घटित होने का अंतराल निश्चित नहीं होता। इस स्थिति में अंतराल निश्चित है। साधारणतया यह एक वर्ष होता है। एक विशिष्ट वर्ष में जैसे 2001 में पैदा हुए लोग इस वर्ष के कोहर्ट का निर्माण करते हैं। इस प्रकार एक विवाह COHORT या भर्ती COHORT भी हो सकता है। इस विश्लेषण का मूल महत्त्व है कि इस अवधारणा द्वारा हम जान सकते हैं कि विशेष समूहों में किस प्रकार गतिविधियाँ होती हैं।
- **प्रतिदर्श पंजीकरण प्रणाली (Sample Registration System):** हमारे पास जन्म, मृत्यु तथा विवाह के प्रतिवेदनों के लिए नागरिक पंजीकरण प्रणाली है। इन घटनाओं को ग्रामीण क्षेत्र में पंचायत एजेंसियाँ, पुलिस एजेंसियाँ तथा शहरी क्षेत्र में नगरपालिका प्राधिकरण के द्वारा रेकार्ड किया जाता है। यद्यपि कानून द्वारा जन्म तथा मृत्यु का पंजीकरण अनिवार्य है, फिर भी कई जन्म तथा मृत्यु अपंजीकृत रह जाते हैं। अतः नागरिक पंजीकरण प्रणाली पर आधारित जीवन मरण संबंधित आँकड़े विश्वसनीय नहीं हैं। भारत के रजिस्ट्रार जनरल के कार्यालय द्वारा प्रतिदर्श पर आधारित एक विशिष्ट पंजीकरण प्रणाली आरम्भ की गई। 1964-65 में प्रयोग करने के लिए जो प्रतिदर्श पंजीकरण प्रणाली आरंभ की गई, वह 1969-70 तक पूरी तरह प्रचलित हो गई। अब अधिकांश जीवन-मरण के आँकड़े नागरिक पंजीकरण प्रणाली (एस.आर.एस.) पर आधारित हैं।
- **व्यापक विकास आयोजन (Comprehensive Development Planning):** आयोजन जिसका तात्पर्य सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास के सभी स्तरों से है, विकास आयोजन कहलाता है। यह केवल सार्वजनिक क्षेत्र या आर्थिक स्तर तक सीमित नहीं होता।
- **प्राकृतिक एकाधिकार (Natural Monopoly):** इसका तात्पर्य उस एकाधिकार से है जिसका प्रादुर्भाव प्रौद्योगिकीय कारणों से होता है न कि प्रवेश में रुकावट के कारण।

प्रौद्योगिकी ही किसी उत्पादक को उत्पादन करने या सम्पूर्ण बाजार को सेवाएँ प्रदान करने की लागत को कम करती है। संसाधन लागत के मामले में यह समाज के लिए भी सस्ती है। यदि दो संयंत्र एक ही प्रौद्योगिकी से एक ही बाजार के लिए मिलकर माँग को पूरा करना चाहते हैं, तो संसाधन लागत बढ़ जाएगी क्योंकि वे पैमाने की अर्थव्यवस्था का अवशोषण नहीं कर रहे होते हैं। इन फर्मों को नियमितता की आवश्यकता है, अन्यथा ये अत्यधिक लाभ कमाने लगेंगे।

- **परिदृश्य योजना (Perspective Plan):** परिदृश्य योजना एक दीर्घावधि योजना है जो मध्यावधि योजना के लिए पृष्ठभूमि बनाती है। जबकि मध्यावधि योजनाएँ चार/पाँच/छः वर्ष के लिए (हमारे देश में पाँच वर्ष के लिए) बनाई जाती हैं, दीर्घावधि परिदृश्य योजना प्रायः दस/पन्द्रह/बीस वर्षों के लिए होती हैं। दीर्घकालिक परिदृश्य योजना में दीर्घकालिक-लक्ष्यों जैसे दस वर्षों बाद की माँग वृद्धि को पूरा करने लायक क्षमता में वृद्धि; गरीबी, बेरोजगारी याँ निरक्षरता आदि मौलिक समस्याओं के समाधान या वैकल्पिक प्रौद्योगिक सम्भावनाओं आदि पर विचार किया जाता है। मध्यावधि योजना वर्तमान प्रौद्योगिकी के प्रयोग, गरीबी-निवारण, भुगतान-संतुलन में सुधार तथा मुद्रास्फीति-नियंत्रण पर ध्यान देती है। अल्पकालिक या वार्षिक योजनाएँ वे हैं, जो तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करने पर ध्यान देती हैं। आयोजन सही दिशा में प्रगति में सहायता करता है। यदि मार्ग से दिशाभ्रमित होना भी पड़े, तो भी यह मालूम होता है कि दीर्घकालिक मार्ग पर ही वापिस आना है।
- **दीर्घकालिक/अल्पकालिक उद्देश्य (Long Term / Short Term Objective):** दीर्घकालिक उद्देश्य इस पर निर्भर करते हैं कि हमें किस प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहिए। अल्पकालिक उद्देश्य समय की माँग हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, पर्याप्त मात्रा में विदेशी विनिमय प्राप्त करने के कई अच्छे उद्देश्य हो सकते हैं, परंतु विदेशी विनिमय का संचयन हमारा दीर्घकालिक उद्देश्य नहीं हो सकता । मुद्रास्फीति को कम रखना एक अल्पकालिक उद्देश्य हो सकता है, परंतु आय की असमानता को कम करना एक दीर्घकालिक उद्देश्य है।
- **हरित क्रान्ति (Green Revolution):** वैज्ञानिक रूप से विकसित उन्नत बीज, उर्वरक, कीटाणुनाशक, तथा नियंत्रित सिंचाई की सहायता से कृषि क्षेत्र के उत्पादन की मात्रा में वृद्धि को हरित क्रान्ति कहते हैं। यह किसी फसल विशेष के उत्पादन की मात्रा को बढ़ाने के साथ-साथ किसी प्लाट विशेष में एक वर्ष में कई फसलें उगाने की सुविधा प्रदान करता है।
- **व्यक्ति-दिन (Person-day):** एक व्यक्ति का एक दिन का कार्य एक व्यक्ति-दिन होता है। दो व्यक्ति आधे दिन काम करें तो प्रत्येक के काम की मात्रा एक व्यक्ति-दिन है। व्यक्तियों की संख्या को दिनों की संख्या से गुणा कर, प्राप्त गुणात्मक उत्पादों के कुल योग द्वारा कुल व्यक्ति-दिवसों की जानकारी मिलती है।

- **नियोजन/अनियोजन का स्वाभाविक स्तर (Usual Status of Employment/Unemployment):** एक व्यक्ति आज नियोजित हो सकता है और कल अनियोजित। यद्यपि कोई स्त्री/पुरुष इस आधार पर नियोजित/अनियोजित माना जाता है कि वह वर्ष के अधिकांश भाग में नियोजित/अनियोजित था। साधारणतया नियोजित/अनियोजित व्यक्तियों की संख्या जाँच वर्ष में नियोजन के स्तर को दर्शाती है। इस संख्या को नियोजित व्यक्तियों की या कार्य की तलाश करने वाले व्यक्तियों की संख्या से भाग देने पर अनियोजन की स्वाभाविक दर प्राप्त होती है।

- **नियोजन/अनियोजन का वर्तमान दैनिक स्तर (Current Daily Status Employment):** इसमें प्रत्येक सप्ताह के व्यक्ति दिवसों में नियोजितों/अनियोजितों की संख्या को सात से विभाजित कर श्रम शक्ति के दैनिक नियोजन/अनियोजन स्तर की जाँच होती है। इस संख्या को श्रम शक्ति (कार्यशील अथवा कार्य के लिए उपलब्ध) की कुल मात्रा से भाग देकर वर्तमान दैनिक स्तर प्राप्त होता है।

- **एम.आर.टी.पी.ए. तथा एम.आर.टी.पी.सी. (M.R.T.P.A. and M.R.T.P.C.):** एकाधिकार जाँच समिति (1965) के सुझावों का पालन करते हुए 1970 में एक अधिनियम पारित हुआ। इस अधिनियम को एकाधिकार और नियंत्रित व्यापार अभ्यास अधिनियम (MRTPA) कहा गया। इस अधिनियम के अंतर्गत एकाधिकार तथा नियंत्रित व्यापार अभ्यास समिति (MRTPC) का गठन अलग-अलग स्तर में यह जाँच करने के लिए किया गया कि क्या कोई दी हुई फर्म या फर्मो का समूह इस प्रकार की गतिविधियों का अभ्यास कर रहे हैं, जैसे अपने उत्पादों के लिए ग्राहकों से अधिक कीमतें वसूल करना आदि। इस न्यायिक प्रणाली के अंतर्गत ऐसे निगम रखे गए जिनकी प्रदत्त-पूँजी 20 करोड़ रुपए हो। 1985 में इस सीमा को 100 करोड़ रुपए तक बढ़ा दिया गया। यहाँ हम इन दोनों के बीच के सूक्ष्म अंतर तथा उनकी परिभाषा के कानूनी पहलुओं पर विचार नहीं करेंगे।

- **पूँजी पलायन (Flight of Capital):** स्थितियों के अस्थिर होने के कारण, विशेषकर जब सरकार वित्तीय कठिनाइयों में हो, या चरमस्थिति में जब मुद्रा में गम्भीर अवमूल्यन का भाव हो, तो बड़ी संख्या में निवेशक जिन्होंने उस देश में निवेश किया है, अपने निवेश को कहीं और स्थानान्तरित करना चाहेंगें। यदि ऐसा बड़े पैमाने पर होता है तो इसे पूँजी के पलायन के रूप में जाना जाता है। इसके कारण वास्तव में उस देश की समस्याओं में वृद्धि होती है, जहाँ से पूँजी का पलायन होता है।

- **कोटा (Quota):** कोटा का तात्पर्य एक वस्तु की मात्रा को प्रतिबंधित करना है, जिसे एक दिए हुए समय बिंदु पर आयात किया जा सकता है। यद्यपि यह कई देशों द्वारा अपने सीमित विदेशी विनिमय को सुरक्षित रखने के लिए अपनाया जाता है, फिर भी इसे

विदेशी प्रतियोगिता से घरेलू उद्योगों को संरक्षित करने की एक विधि के रूप में भी माना जा सकता है।

- **प्रशुल्क (Tariff):** देश में आयातित वस्तु की प्रत्येक इकाई पर लगाए गए कर या लेवी को प्रशुल्क कहते हैं।
- **फेरा और फेमा (FERA and FEMA):** विदेशी नियंत्रित कम्पनियों को नियमित करने के लिए 1947 में एक अधिनियम बनाया गया जिसे भारतीय विदेशी विनिमय नियंत्रण अधिनियम (FERA) के नाम से जाना जाता है। 1973 में जब हमारे विदेशी विनिमय संसाधन एक बिलियन डालर से कम हो गए तो महत्त्वपूर्ण विदेशी विनिमय कोष को सुरक्षित रखने के लिए अधिनियम में संशोधन किए गए। परंतु इसमें विदेशी निवेशकों को दिशा निर्देश देने के प्रावधान हैं। वे अपने कोषों को सुधारी हुई प्रौद्योगिकी की ओर परिवर्तित कर सकते हैं। इसके कारण परेशानियाँ बढ़ गईं अतः इसमें 1976 में पुनः संशोधन हुए। अंततः हम विदेशी विनिमय के स्तर में संतोषजनक स्थिति में हैं। हमने विदेशी विनिमय प्रबंध अधिनियम (FEMA) बनाया जो विदेशी विनिमय तथा विदेशी प्रतिभूति मुद्दों से संबद्ध है।
- **गैर-निवासी भारतीय (NRI):** गैर-निवासी भारतीय वे भारतीय हैं जो सामान्यतः भारत में नहीं अपितु किसी दूसरे देश में रहते और कार्य करते हैं। उनके पास भारतीय नागरिकता व भारतीय पासपोर्ट होता है।
- **विदेशी विनिमय कोष (Foreign Reserve):** विदेशी विनिमय-कोष के अंतर्गत रिजर्व बैंक के पास सुरक्षित कोष, विदेशी मुद्रा, परिसंपत्तियाँ, एस.डी.आर तथा स्वर्ण-कोष आते हैं। ये आयात के लिए एक छत्र-छाया प्रदान करते हैं। विदेशी निवेश, विदेशी सहायता, विदेशी ऋण, विदेशी अनुदान द्वारा एकत्र होते हैं, जिसमें अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा दिए गए अनुदान के साथ गैर-निवासी नागरिकों (NRI) द्वारा प्रेषित राशि भी शामिल है।
- **राजस्व घाटे (Revenue Deficit):** राजस्व घाटे सरकार के राजस्व व्यय तथा राजस्व आय के बीच के आधिक्य को कहते हैं। राजस्व आय में करों और दूसरे शुल्क जैसे व्यय और सरकारी निवेशों पर लाभांश-शुल्क तथा सरकार द्वारा प्रदान की गई दूसरी सेवाओं से प्राप्तियाँ शामिल हैं। साधारण कामकाज तथा विविध सेवाओं, सरकारी ऋण पर ब्याज, अनुदान आदि पर होने वाले व्यय, राजस्व व्यय (आवर्ती व्यय) हैं। साधारणतया राजस्व व्यय परिसंपत्तियों का निर्माण नहीं करते, परंतु केन्द्र द्वारा राज्यों को दिए गए अनुदान (जिन्हें राजस्व व्यय माना जाता है) का प्रयोग परिसंपत्तियों के निर्माण में हो सकता है।
- **राजकोषीय घाटा (Fiscal Deficit):** राजकोषीय घाटा कुल व्यय (राजस्व व्यय एवं पूँजी व्यय, ऋण सहित) में से राजस्व प्राप्तियों तथा अन्य प्राप्तियों (जो ऋण भुगतान के लिए

सरकार को बाध्य नहीं करती) को घटाने के बाद प्राप्त होता है। अन्य प्राप्तियों में सरकारी सम्पत्ति, अंशपत्रों की बिक्री तथा विनिवेश लाभ सम्मिलित है।

- **चालू खाता घाटा (Current Account Deficit):** भुगतान-शेष खाते में किसी अर्थव्यवस्था के अंतरराष्ट्रीय सौदों का एक विवरण होता है। इसके दो भाग हैं– चालू खाता एवं पूँजी खाता। चालू खाते में वस्तुओं एवं सेवाओं के व्यापार के साथ-साथ अंतरण भुगतानों का विवरण भी होता है। पूँजी खाते में सम्पत्तियों (जैसे स्टाक, बॉण्ड/अनुबंध-पत्र एवं भूमि आदि) के क्रय-विक्रय तथा बैंकों की जमा-राशि का विवरण होता है। वस्तुओं के व्यापार का तात्पर्य वस्तुओं (जैसे तेल, कबाड़ तथा पटसन) के क्रय और विक्रय से है तथा सेवाओं के व्यापार से माल परिवहन के भाड़े, रायल्टी एवं ब्याज के भुगतान से है। हुँडी, उपहार एवं अनुदान के लिए दिए गए अथवा प्राप्त किए गए भुगतानों को, जिन्हें अंतरण भुगतान के नाम से जाना जाता है, चालू खातों में सम्मिलित किया जाता है। यदि, चालू खाता शीर्षक के अंतर्गत (वस्तुओं का व्यापार, सेवाओं का व्यापार और अंतरण भुगतान) कुल भुगतान, कुल प्राप्तियों से अधिक हो जाता है तो वहाँ चालू खाता घटा माना जाता है। यदि ऐसा न हो तो इसे एक अधिशेष (Surplus) समझा जाता है।

- **अहस्तक्षेप नीति/व्यापार स्वतंत्रता (Laissez faire):** यह नीति एक फ्रैन्च मुहावरा 'हमें अकेला छोड़ दो' की पुष्टि करती है। यह सूचित करती है कि सरकार को आर्थिक क्रिया में कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए तथा निर्णयों को बाजार पर छोड़ देना चाहिए। इस दृष्टि से, सरकार की भूमिका कानून और व्यवस्था के रख-रखाव, राष्ट्रीय सुरक्षा, अनिवार्य लोक-हित जैसे सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रबंध तक सीमित होनी चाहिए, जिनका उत्तरदायित्व निजी उद्योग नहीं लेंगे।

- **विदेशी निवेश (Foreign Investment):** विदेशी निवेश दो प्रकार का होता है, पहला, विदेशी पूँजी का नई उत्पादक क्रिया में निवेश, जिसे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कहा जाता है। दूसरा, वह विदेशी पूँजी जो भारतीय कम्पनियों के शेयरों का क्रय करती है। इसे पोर्टफोलियो निवेश कहा जाता है। ये दोनों दूसरे देश को विदेशी मुद्रा देते हैं। जहाँ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश अतिरिक्त सामर्थ्य/सक्षमता का निर्माण करता है और अतिरिक्त उत्पादन में योग देता है, पोर्टफोलियो निवेश ऐसा नहीं करता। हालाँकि दोनों ही लाभ अर्जित करते हैं। प्रत्यक्ष निवेश से अर्जित लाभ उस उत्पादन की प्रकृति पर निर्भर करता है, जिसमें विदेशी प्रत्यक्ष निवेश किया जाए। ऐसे निवेश से होने वाले उत्पाद का निर्यात कर राष्ट्र के लिए विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। पोर्टफोलियो निवेश का लाभ पर थोड़ा अधिकार और उत्पादन पर थोड़ा नियंत्रण होगा।

- **विश्व व्यापार संगठन (WTO):** विश्व व्यापार संगठन की स्थापना 1995 में, व्यापार में शुल्कों और अन्य बाधाओं में कमी करके, जीवन स्तर को ऊँचा उठाने और अंतरराष्ट्रीय

व्यवसाय में भेदमूलक व्यवहार के उन्मूलन के उद्देश्य से की गई। यह गैट करार (GATT) का उत्तराधिकारी है। सात वर्षों की लंबी बातचीत के पश्चात्, सदस्य राष्ट्र प्रशुल्क एवं व्यापार संबंधी सामान्य उरुग्वे राउण्ड में विश्व व्यापार संगठन को स्थापित करने के लिए सहमत हुए। विश्व व्यापार संगठन ने बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार से संबंधित व्यापार एवं निवेश मापों से संबंधित व्यापार को सम्मिलित करके अपने कार्य क्षेत्र में वृद्धि की है।

- **बौद्धिक संपत्ति अधिकार (Intellectual Property Rights):** ये वे नियम हैं जो पेटेन्ट, स्वत्वाधिकारों (कॉपी राइट), व्यापार संबंधी गोपनीय बातों, विद्युत साधनों एवं अन्य वस्तुओं (जिनमें मुख्य रूप से सूचना का समावेश हो) का संचालन करते हैं। ये नियम, सामान्यतया मूल निर्माताओं को नियंत्रण का अधिकार और कार्य के पुनरुत्पादन के लिए मुआवजा देते हैं।

- **जन्म-दर और मृत्यु-दर (Birth Rate and Death Rate):** जन्म का तात्पर्य माता के गर्भाशय से एक मानवीय बच्चे के जीवित प्रसव से है। मृत प्रसव, गर्भपात एवं भ्रूणहत्या (जीवित) जन्म के अंतर्गत नहीं गिने जाते। जन्म-दर को एक दिए गए वर्ष में, जनसंख्या में प्रति हजार, जीवित जन्मों की संख्या से परिभाषित किया जाता है। मृत्यु-दर को, एक दिए गए वर्ष में प्रति हजार जनसंख्या पर मृत व्यक्तियों की संख्या द्वारा परिभाषित किया जाता है। यद्यपि जुड़वां बच्चों का जन्म एक साथ होता है, उनकी मृत्यु पृथक होती है। उनके जन्मों को एक गिना जाता है जबकि उनकी मृत्यु को दो मृत्यु माना जाता है।

- **प्राकृतिक वृद्धि/संवृद्धि दर (Rate of Natural Increase/Growth):** जन्म-दर और मृत्यु-दर में अंतर को प्राकृतिक वृद्धि-दर अथवा प्राकृतिक संवृद्धि दर के रूप में जाना जाता है। यह (सकल) संवृद्धि दर के विपरीत है, जो अपने लेन-देन की गणना में निवल प्रवसन को भी मानती है।

- **अंतः और बाह्य-प्रवसन (In-migration and Out-migration):** शीघ्र वापिस आने की इच्छा के साथ किसी स्थान पर जाने को अंतः प्रवसन कहते हैं और शीघ्र ही वापिस न जाने की इच्छा से किसी स्थान पर जाने को बाह्य-प्रवसन कहते हैं। जब यह आवागमन दो देशों के बीच होता है, तब यह प्राप्त करने वाले देश के लिए आप्रवास तथा निर्वासन करने वाले देश के लिए उत्प्रवास होता है।

- **जनांकिकीय निवेश (Demographic Investment):** जब तक बच्चे श्रमिकों की श्रेणी में प्रवेश नहीं करते, उनकी शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर (सार्वजनिक-स्वास्थ्य) किया गया निवेश जनांकिकीय निवेश कहलाता है। इसके 'सार्वजनिक' अधिस्वर हैं और यह विद्यालयों, अध्यापकों, अस्पतालों और डाक्टरों पर निवेश का सुझाव देता है। ऐसा माना जाता है कि यह विकास-निवेश का निर्गम है।

- **निर्भरता भार (Dependency Burden):** बच्चों पर (जबकि वे अनुत्पादक होते हैं), उनके पालन-पोषण, शिक्षा एवं चिकित्सा पर किया गया व्यय निर्भरता भार कहलाता है। इसके 'पैतृक' अधिस्वर होते हैं।
- **मानव पूँजी-निर्माण (Human Capital Formation):** भौतिक पूँजी के विपरीत (जो एक मशीन, एक इमारत, एक सड़क आदि होती है) जब मानव जाति को, शिक्षा एवं प्रशिक्षण की सहायता से तथा सर्वोतम चिकित्सा एवं आहार सुविधाओं की सहायता से, एक अच्छा उत्पादक बनाया जाता है, तो यह पूँजी निर्माण मानव रूप में होता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उत्पादकता में इसका विशाल योगदान है।
- **आयु-विशेष जनन-क्षमता (Age Specific Fertility):** किसी दिए वर्ष में, एक विशेष वर्ग में महिलाओं द्वारा दिए गए जन्मों की संख्या को उस आयु-वर्ग में आने वाले महिलाओं की संख्या से विभाजित करके जब 1000 से गुणा किया जाता है, तो इसे उस विशेष वर्ष में उस आयु-वर्ग की आयु-विशिष्ट जनन-क्षमता कहते हैं।
- **सकल जनन-क्षमता दर (Total Fertility Rate):** मोटे तौर पर कहा जाए तो यह महिलाओं के किसी एक समूह-विशेष (जिनका चुनाव उनकी आयु-विशेष जनन-क्षमताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है) से जन्मे बच्चों की कुल औसत संख्या है।
- **प्रति हजार बिंदु (Per Thousand Points):** दो दरों के स्तर में अंतर को, सामान्यतः प्रति हजार के रूप में व्यक्त किया जाता है। यदि इसे प्रति हजार बिंदुओं से व्यक्त किया जाए तो यह प्रतिशत बिंदुओं के समरूप हो जाता है। बहुत-सी दरें जनांकिकीय में प्रति हजार के रूप में व्यक्त की जाती हैं, अतः इन्हें स्मरण/याद रखना आवश्यक हो जाता है।
- **प्रतिशत बिंदु (Percentage Point):** जब हम दो प्रतिशत आँकड़ों जैसे 50 प्रतिशत तथा 60 प्रतिशत, की तुलना करते हैं, तो निरपेक्ष अंतर को 10 प्रतिशत पढ़ा जाता है तथा सापेक्ष अंतर को 20 प्रतिशत कहा जाता है, जो आरम्भिक आँकड़ों द्वारा निरपेक्ष अंतर के प्रतिशत से प्राप्त किया किया जाता है।
- **आर्थिक सहायता और आर्थिक प्रति-सहायता (Subsidisation and Cross-subsidisation):** जब वसूली के लागत से कम होने के कारण हुई हानि को सामान्य राजस्व द्वारा पूरा किया जाता है, तो इसे आर्थिक सहायता के नाम से जाना जाता है। जब एक उत्पाद के मूल्य को किसी अन्य उत्पाद मूल्य से कम करने के लिए बढ़ाया जाए, तो इसे आर्थिक प्रति-सहायता के नाम से जाना जाता है।

परिशिष्ट

- **अर्थव्यवस्था :** हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि अर्थशास्त्र के अध्ययन का क्षेत्र अर्थव्यवस्था है। परंतु अर्थव्यवस्था क्या है? चारों ओर दृष्टि डालने पर ऐसा प्रतीत होता है कि एक अर्थव्यवस्था, खेतों, कारखानों, कार्यशालाओं, खानों, दुकानों, रेलों, जलयानों, वायुयानों, पाइपलाइनों (जो गैस, तेल अथवा जल को उपभोक्ता तक पहुँचाती है), कार्यालयों, बैंकों, विद्यालयों तथा महाविद्यालयों, सिनेमा-चित्रपटों, नाट्य-शालाओं एवं नाट्य गृहों, औषधालयों और अस्पतालों का संग्रह है। ये उन सद्वभी वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करते हैं, जिनका आर्थिक मूल्य होता है और जिनका लोगों द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उपभोग किया जाता है। अर्थव्यवस्था का यह दृष्टिकोण सरल, विवरणात्मक तथा स्पष्ट है। यह स्वीकार्य होना चाहिए।

  फिर भी, ऐसे भी लोग हैं जो अर्थव्यवस्था के विभिन्न उपयोगों की ओर संकेत करते हैं, जैसे– राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, विश्व अर्थव्यवस्था और अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था; ग्राम अर्थव्यवस्था, ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं शहरी अर्थव्यवस्था; गुलाम, सामन्तवादी, पूंजीवादी एवं समाजवादी अर्थव्यवस्था; घरेलू अर्थव्यवस्था। अर्थव्यवस्था की इन सभी परिभाषाओं की सामान्य विशेषता क्या है? विद्वानों के अनुसार वास्तव में यह संबंधों का एक समुच्चय है जिसे कुछ हद तक, अन्य सामाजिक संबंधों के रूप में पृथक किया जा सकता है। ये संबंध श्रम शक्ति के प्रयोग में और भौतिक आवश्यकताओं के प्रबंध में प्रकट होते हैं।

  अर्थव्यवस्था को एक और प्रकार से भी परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। यह व्यक्तियों के समूह के बीच संबंधों का एक ऐसा ढाँचा है जो संसाधनों के प्रयोग, साधनों के उपयोग, वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन पर होने वाले परिश्रम और उत्पादन पर सदस्यों के अधिकार को निर्धारित करता है।

- **आधुनिक आर्थिक विकास (Modern Economic Growth):** प्राकृतिक साधनों के अपेक्षाकृत अधिक उत्पादक प्रयोग, उत्पादन तकनीकों में सुधार, अधिक से अधिक उत्पादन, अधिक भिन्नता वाली वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन तथा उत्तम जीवन निर्वाह– इन सभी के द्वारा मानव-समाज उत्पादन को बढ़ाता है। परंतु कुछ संस्थाओं का वास्तविक पतन होने से इसमें एक लंबा समय लग सकता है। ऐसा भी समय हो सकता है जब जनसंख्या में वृद्धि का परिमाण वस्तुओं और सेवाओं के परिमाण में वृद्धि से अधिक हो जाए (बहुत समय पहले वस्तुओं का आशय, खाद्य-पदार्थ, खाद्यान्न और अन्य खाद्य पदार्थों से होता होगा। प्रति व्यक्ति उत्पाद में दीर्घकालीन वृद्धि नहीं होती होगी तथा जनसंख्या में भी दीर्घ-कालीन वृद्धि नहीं होती होगी)।

पश्चिम में पिछले 200 वर्ष का इतिहास, असाधारण माना जाता है। यह वह समय था जब जनसंख्या में दीर्घकालीन वृद्धि हो रही थी। परंतु वस्तुओं और सेवाओं के परिमाण में वृद्धि जनसंख्या वृद्धि से अधिक थी। परिणामस्वरूप प्रतिव्यक्ति उत्पाद (तथा प्रतिश्रमिक निर्गत) में दीर्घकालीन वृद्धि हो रही थी।

यही बात विकासशील देशों के पिछले 50 वर्षों के बारे में कही जा सकती है। यहाँ भी जनसंख्या पिछले 50 वर्षों के दौरान पश्चिम से अधिक तेजी से बढ़ी। परंतु सकल वस्तुओं और सेवाओं के परिमाण में वृद्धि फिर भी तीव्र थी। परिणामस्वरूप प्रतिव्यक्ति उत्पाद में दीर्घकालीन वृद्धि हुई।

- **संवृद्धि-दर शृखला का स्वरूप/व्यवहार (Character of Growth Rate Series):** समय-परिवर्तन के साथ, यदि संवृद्धि-दर अपरिवर्तित रहती है, तो हम इसे नियमित संवृद्धि कहते हैं। 100, 110, 121, 133.1, 146.41..............की शृंखला में 10 प्रतिशत की वृद्धि स्थिर वृद्धि दर्शाती है। इसके स्थान पर यदि हमें ज्ञात हो कि, जैसे-जैसे समय गुजरता है, यह बढ़ती जाती है, तो हम इसे तीव्र संवृद्धि की स्थिति कह सकते हैं। 100, 110, 122, 135 और 150......की शृंखला तीव्र संवृद्धि की स्थिति को चित्रित करती है। दूसरी ओर समय बीतने के साथ यदि वृद्धि-दर कम हो जाती है, हम इसे मन्द वृद्धि की स्थिति कह सकते हैं। परंतु वास्तव में, कोई भी अर्थव्यवस्था ऐसा स्पष्ट प्रतिरूप नहीं दर्शाती। इसमें कभी-कभी बहुत व्यापक उतार-चढ़ाव होते हैं। इसमें यह संभावना रहती है कि इन उतार-चढ़ावों में बढ़ने, घटने या स्थिर रहने की प्रवृत्ति होती है। परंतु जब लंबी अवधि, जैसे दशक-दर दशक, पर विचार किया जाए तो प्रतीत होता है कि सकल घरेलू उत्पाद में दीर्घकालीन वृद्धि हुई है।
- **भारत के लिए 1999 के लिए मानव विकास सूचकांक का परिकलन (Computation of HDI for 1991):** मान लें हमें भारत के लिए वर्ष 1999 के लिए निम्नलिखित आँकड़े दिए गए हैं:

जन्म के समय जीवन प्रत्याशा	62.9 वर्ष
प्रौढ़ साक्षरता अनुपात	56.5 प्रतिशत
संयुक्त नामांकन अनुपात	65.0 प्रतिशत
प्रतिव्यक्ति आय	PPP$ 2248

आइए, पहले हम प्रौढ साक्षरता अनुपात और संयुक्त नामांकन अनुपात को शैक्षिक उपलब्धि के साथ मिलाएँ। प्रौढ़ शिक्षा अनुपात को 2/3 भार तथा संयुक्त नामांकन अनुपात को 1/3 भार देने पर हम निम्नलिखित प्राप्त करते हैं :

शैक्षिक उपलब्धि (ई.ए.) = (2/3) = 56.5 प्रतिशत × (1/3)√ 56.0 प्रतिशत + 56.13 प्रतिशत

आइए, अब हम जीवन-स्तर (SL) को प्रतिबिम्बित करने के लिए प्रतिव्यक्ति आय का लघु-गुणक ज्ञात करें।

जीवन-स्तर (एस.एल) = log (PPP$ 2284) = 3.352

आइए, अब घटक सूचकांक (सी.आई.) के लिए सूत्र ज्ञात करें।

$$\text{घटक सूचकांक} = \frac{\text{घटकों का वास्तविक मूल्य - घटकों का न्यूनतम मूल्य}}{\text{घटकों का अधिकतम मूल्य - घटकों का न्यूनतम मूल्य}}$$

आइए, ऊपर दिए गए वास्तविक मूल्यों का और सारणी 2 से अधिकतम एवं न्यूनतम मूल्यों का प्रयोग करें और निम्नलिखित प्राप्त करें :

$$\text{जीवन प्रत्याशा सूचकांक (एल.ई.आई.)} = \frac{62.9 - 25.0}{85.0 - 25.0} = \frac{37.9}{0.632}$$

$$\text{शैक्षिक उपलब्धि सूचकांक (ई.ए.आई.)} = \frac{56.13 - 0.0}{100.0 - 0.0} = 0.561$$

$$\text{जीवन स्तर सूचकांक (एस.एल.आई.)} = \frac{3.352 - 2.0}{4.602 - 2.0} = \frac{1.352}{2.602} = 0.520$$

सरल अंकगणित के प्रयोग से तीनों घटक सूचकों का औसत करके मानव विकास सूचकांक (एच.डी.आई.) का परिकलन करना आसान होता है। इन आँकड़ों को स्थापित करके, हम निम्नलिखित ज्ञात करते हैं :

मानव विकास सूचकांक (एच.डी.आई.) = 1/3 (LEI + EAI + SLI) = 1/3 (0.632 + 0.561 + 0.520) = 0.571

- **भारत में समष्टिगत आर्थिक समूहों का अनुमान (Estimation of Macro-economic Aggregates in India):** भारत में समष्टिगत आर्थिक समूहों को स्वतंत्रता के पश्चात् ही तैयार किया गया है। राष्ट्रीय आय के अनुमानों के पहले समुच्चयों को राष्ट्रीय आय समिति, जिसमें पी.सी. महालनाविस, डी.आर. गाडगिल तथा वी.के.आर.वी. राव शामिल हैं, द्वारा तैयार किया गया था। यह शृंखला वर्ष 1948-49 में आरम्भ होकर 1967 तक सतत् रही जब इसे 1960-61 के आधार-वर्ष वाली एक अन्य शृंखला से प्रतिस्थापित कर दिया गया। इस शृंखला को भी 1977 में वर्ष 1970-71 आधार वर्ष वाली शृंखला से प्रतिस्थापित कर दिया गया। 1988 में वर्ष 1980-81 के आधार-वर्ष के साथ एक अन्य शृंखला आरम्भ की गई, जिसे 1999 में वर्ष 1993-94 के आधार-वर्ष वाली एक नवीनतम शृंखला द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। चूँकि स्वतंत्र देश के लिए, 1948-49 सबसे पहला पूर्ण वित्तीय वर्ष था, अतः इसे आधार वर्ष चुने जाने में कोई समस्या नहीं हुई। नवीनतम शृंखला के लिए 1990-91 के स्थान पर 1993-94 को आधार वर्ष चुनने का क्या औचित्य है? वर्ष 1993-94 को अंशतः आधार-वर्ष इसलिए चुना गया क्योंकि

1990-91 एवं 1992-93 के वर्ष सामान्य नहीं माने गए तथा अंशतः इसलिए क्योंकि राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के अतिविशाल आँकड़े 1993-94 में संचालित सिंहावलोकन से उपलब्ध थे। केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन (सी.एस.ओ.) ने, जिसने अपने निर्णायक प्रतिवेदन 1954 में प्रस्तुत किए, इन अनुमानों को तैयार करने का कार्य-भार राष्ट्रीय आय समिति से ले लिया। हर बार आधार वर्ष के संशोधन के साथ-साथ सी.एस.ओ. अपने समूहों की सूची को बढ़ाता गया।

- **संवृद्धि दर के परिकलन की विधियाँ (Methods of Computation of Growth Rate):** किसी दिए गए समय में वृद्धि-दर का परिकलन करने के तीन तरीके हैं। पहले, आरम्भिक और अंतिम (F) संख्याएँ/आँकड़े लें और चक्रवृद्धि ब्याज के सूत्र का (ब्याज की दर (r) और समय (t) का प्रयोग करें, जो $F = P(1+r)^t$ है। F,P और के मूल्यों को प्रतिस्थापित करके, r निकाला जा सकता है, जिसे हम प्रति अवधि वृद्धि की दर कहते हैं। अधिकतर समय को वर्ष के रूप में गिना जाता है। इस आँकड़े (r) को 100 से गुणा किया जाता है, और वृद्धि-दर को वार्षिक प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। इस विधि में, हम मध्यवर्ती वर्षों में इस प्रयोग की उपेक्षा कर देते हैं। यदि अंतिम अथवा आरम्भिक वर्ष, रूपरेखा से बाहर हैं तो वृद्धि-दर समय का द्योतक नहीं होगी। इस दर को वार्षिक चक्रवृद्धि वृद्धि-दर कहते हैं।

दूसरा, युग्म के रूप में वर्ष प्रति-वर्ष वृद्धि-दरों की परिकल्पना करते हैं और इन दरों के योग को, दरों की संख्या द्वारा औसत किया जाता है। इसे वार्षिक औसत वृद्धि-दर

सारणी 'क'

1993-94 की स्थिर कीमतों पर 1950-51 से 1999-2000 तक सकल घरेलू उत्पाद

(करोड़ रु.)

वर्ष	सकल घरेलू उत्पाद	वर्ष	सकल घरेलू उत्पाद	वर्ष	सकल घरेलू उत्पाद	वर्ष	सकल घरेलू उत्पाद	वर्ष	सकल घरेलू उत्पाद
1950-51	140466	1960-61	206103	1970-71	296278	1980-81	401128	1990-91	692871
1951-52	143745	1961-62	212499	1971-72	299269	1981-82	425073	1991-92	701863
1952-53	147824	1962-63	216994	1972-73	298316	1982-83	438079	1992-93	737792
1953-54	156822	1963-64	227980	1973-74	311894	1983-84	471742	1993-94	781345
1954-55	163479	1964-65	245270	1974-75	315514	1984-85	492077	1994-95	838031
1955-56	167667	1965-66	236306	1975-76	343924	1985-86	513990	1995-96	899563
1956-57	177211	1966-67	238710	1976-77	348223	1986-87	536257	1996-97	970083
1957-58	175068	1967-68	258137	1977-78	374235	1987-88	556778	1997-98	1016266
1958-59	188354	1968-69	264873	1978-79	394828	1988-89	615098	1998-99	1083047
1959-60	192476	1969-70	282134	1979-80	374291	1989-90	656331	1999-00	1151991

सारणी 'ख'

1993-94 की स्थिर कीमतों पर 1950-51 से 1999-2000 तक प्रतिव्यक्ति आय

वर्ष	प्रतिव्यक्ति आय	वर्ष	प्रतिव्यक्ति आय	वर्ष	प्रतिव्यक्ति आय	वर्ष	प्रतिव्यक्ति आय	वर्ष	प्रतिव्यक्ति आय
1950-51	3687	1960-61	4429	1970-71	5002	1980-81	5352	1990-91	7321
1951-52	3714	1961-62	4449	1971-72	4914	1981-82	5555	1991-92	7212
1952-53	3747	1962-63	4425	1972-73	4763	1982-83	5548	1992-93	7433
1953-54	3909	1963-64	4546	1973-74	4880	1983-84	5854	1993-94	7698
1954-55	3994	1964-65	4781	1974-75	4830	1984-85	5956	1994-95	8088
1955-56	4020	1965-66	4459	1975-76	5167	1985-86	6082	1995-96	8498
1956-57	4159	1966-67	4392	1976-77	5103	1986-87	6189	1996-97	9036
1957-58	4007	1967-68	4653	1977-78	5375	1987-88	6260	1997-98	9288
1958-59	4222	1968-69	4657	1978-79	5551	1988-89	6777	1998-99	9733
1959-60	4216	1969-70	4865	1979-80	5092	1989-90	7087	1999-00	10204

(AAGR) के नाम से जाना जाता है। यह विधि सभी आँकड़ों का प्रयोग करती है परंतु यह विधि ज्यामितीय एवं अंकगणितीय विधियों का सम्मिश्रण है, क्योंकि वृद्धि-दर मूल रूप से एक ज्यामितीय धारणा है जबकि औसत निकालना अंकगणित।

तीसरा, अर्ध लघु फलन का प्रयोग करते हुए प्रतिगमन विधि के द्वारा (सांख्यिकीय विधि) हम पूरे समय के लिए एक प्रतिनिधि r का अनुमान लगा सकते हैं।

सभी विधियाँ पुरानी हैं। बहुत से विद्वान पाठकों को अपने द्वारा प्रयुक्त की गई विधि के बारे में पर्याप्त चेतावनी नहीं देते। इसलिए यदि कोई ठोस तुलना करना चाहता है तो उसे वास्तव में प्रयोग की गई विधि को जानने का प्रयत्न करना चाहिए।

आप सारणी 2 और विशेष रूप से सारणी 4 में यह देख सकते हैं कि 70 के दशक में CAGR बहुत ही निम्न आँकड़ें प्रस्तुत करता है। चक्रवृद्धि वार्षिक संवृद्धि दर, औसत वार्षिक संवृद्धि दर का एक-तिहाई भी नहीं है।

- **1950-51 से स्थिर कीमतों पर सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product at Constant Prices Since 1950-51)**: जैसा कि आप देख सकते हैं कि 1957-58, 1965-66, 1972-73 तथा 1979-80 में सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि नहीं हो सकी। हालाँकि कुछ ऐसे वर्ष थे जब वृद्धि-दर लगभग एक प्रतिशत वार्षिक के निकट थी, जो कि जनसंख्या की वृद्धि-दर से बहुत कम थी।

हम देख सकते हैं कि प्रतिव्यक्ति आय पचास में से कम से कम बारह वर्षों तक गिरती रहीं जबकि सकल घरेलू उत्पाद केवल चार वर्षों तक गिरा। इसका सरल आशय है कि, अन्य 8 वर्षों में, सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि की दर जनसंख्या की वृद्धि की दर से कम थी। आर्थिक क्रिया में वृद्धि की दर बढ़ रही है जबकि जनसंख्या की वृद्धि की दर ने 80 के दशक और 90 के दशक में गिरना आरंभ कर दिया था।

- **स्वतंत्रता के पहले भारत सरकार को प्रस्तुत की गई तीन योजनाएँ (Three Plans Submitted to Government Before Independence):** देश के आठ उद्योगपतियों के द्वारा भारत के लिए आर्थिक विकास की योजना (बॉम्बे प्लान), प्रस्तुत की गई जिसने राज्य की भूमिका को पूँजीवादी ढांचे के साथ स्वीकार कर लिया। भारत के आर्थिक-विकास के लिए बी.एन. बैनर्जी, ज़ी.डी. पारेख और वी.एम. तारकुण्डे द्वारा एक योजना बनाई गई तथा जिसे 'पीपुल्स प्लान' के नाम से जाना जाता है। इसे इण्डियन फेडरेशन ऑफ लेबर के सचिव श्री एम.एन. राय ने प्रकाशित किया। इसमें राज्य-पूँजीवाद की रचना का परामर्श दिया गया।

भारत के लिए आर्थिक विकास की योजना, जो श्रीमान नारायण अग्रवाल द्वारा बनाई गई, गाँधी-योजना के नाम से जानी जाती है। इसमें एक आत्मावलम्बी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की स्थापना का परामर्श दिया गया था।

बाम्बे योजना ने, प्रारम्भिक समय, (3-5 वर्ष) को छोड़कर 15 वर्ष के अंतर्गत निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किए– प्रतिव्यक्ति आय को दोगुना करना, दी गई जनसंख्या वृद्धि की दर पर राष्ट्रीय आय को तिगुना करना (जो कृषि उत्पादन को दोगुना करने पर बाध्य कर देगा), औद्योगिक उत्पादन को 5 गुना करना, शक्ति और पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन के लिए उद्योगों का निर्माण करना (आवश्यक उपभोग वस्तुओं के उत्पादन को लघु और कुटीर उद्योगों तक सीमित रख कर) । इन सबके लिए (15 वर्ष के अंतर्गत) 10,000 करोड़ रुपयों की आवश्यकता थी, जिसे सम्भव माना गया। दूसरी तरफ पीपुल्स प्लान ने 15,000 करोड़ रुपयों के व्यय का प्रस्ताव रखा, जिसे 10 वर्षों के लिए उचित समझा गया। इसके अंतर्गत कृषि में चार गुनी तथा उद्योगों में छः गुनी वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। गाँधी-योजना ने ग्रामीण-अर्थव्यवस्था के सुधार द्वारा (इसकी तत्कालीन मौलिक संरचना को स्वीकार करते हुए) दस वर्षों में प्रतिव्यक्ति आय को दोगुना करने का प्रस्ताव रखा। यह आश्चर्यजनक है कि, सैद्धांतिक मतभेद होते हुए भी इन योजनाओं में कई मुद्दों पर मतैक्य था– जैसे मूलभूत उद्योगों को विकसित तथा नियंत्रित करना, विनिर्माण इकाइयों के अनुरूप विद्युत का उत्पादन, भूमिगत निहित स्वार्थों को समाप्त करना तथा प्रत्येक नागरिक को संतुलित भोजन उपलब्ध कराना, आदि।

योजना	निवेश (करोड़ रुपए)	वर्ष	कृषि	उद्योग	प्रतिव्यक्ति आय
बॉम्बे योजना	10,000	15	दो गुना	पांच गुना	तीन गुना
जन-योजना	15,000	10	चौगुना	छः गुना	
गांधी योजना	3,500	10			चौगुना

- **योजना आयोग को गठित करने का प्रस्ताव (Resolution Constituting Planning Commission):** योजना आयोग ने प्रत्येक भारतीय नागरिक को कुछ मौलिक अधिकार दिए तथा कुछ निदेशात्मक "राज्य की सैद्धांतिक नीतियों" को आरम्भ किया, विशेषकर उन नीतियों को जिनके तहत राज्य अपने नागरिकों के कल्याण को बढ़ावा देने तथा उनकी रक्षा करने का कुशलतापूर्वक उतना प्रयास करेगा जितना समाज में सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय के लिए आवश्यक हो। इसका उद्देश्य था कि राज्य अपनी नीतियों का निर्धारण इस प्रकार करे ताकि सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को परिभाषित करे तथा अपनी नीतियों को अन्य बातों के अतिरिक्त निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करने का निर्देश दे :

  (क) सभी नागरिकों: महिलाओं तथा पुरुषों– का पर्याप्त आजीविका पर समान अधिकार हो,

  (ख) समाज के भौतिक संसाधनों के स्वामित्व व नियंत्रण का इस प्रकार वितरण हो, ताकि सबकी भलाई का लक्ष्य प्राप्त हो,

  (ग) आर्थिक प्रणाली का इस प्रकार प्रचालन हो कि संपत्ति तथा उत्पादन के साधनों का केन्द्रीकरण नहीं हो।

  इन अधिकारों का आदर करते हुए तथा लोगों के रहन-सहन के स्तर को शीघ्र ऊपर उठाने के लिए सरकार ने अपने घोषित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कुछ उपाय सुझाए। वे हैं– देश के संसाधनों का कुशलतापूर्ण शोषण, उत्पादन में वृद्धि तथा समाज की सेवा के लिए सभी को रोजगार के अवसर प्रदान करना।

योजना आयोग के निम्नलिखित उत्तरदायित्व होंगे :

(1) तकनीकी अधिकारियों सहित, देश के भौतिक, पूँजी व मानव संसाधनों का मूल्यांकन करना तथा देश की जरूरतों के अनुसार उन संसाधनों की, जो मानव आवश्यकता की अपेक्षा कम मात्रा में उपलब्ध हैं, बढ़ोतरी की संभावनाओं का पता लगाना,

(2) देश के संसाधनों का अत्यधिक प्रभावशाली तथा संतुलित तरीकों से उपयोग करने की योजना बनाना,

(3) प्राथमिकताओं के निर्धारित होने के बाद योजना को कार्यान्वित करने की स्थितियों को परिभाषित करना तथा प्रत्येक स्थिति को पूरा करने के लिए संसाधनों का उद्देश्यपूर्ण आवंटन करना,

(4) आर्थिक विकास कम करने वाले कारणों को इंगित करना तथा वर्तमान सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर योजनाओं के सफलतापूर्ण क्रियान्वयन की दशाओं का निर्धारण करना,

(5) सभी वस्तु-स्थितियों में योजनाओं को सफलतापूर्ण क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक उपकरणों के प्रकारों का भी निर्धारण करना,

(6) समय-समय पर योजना के क्रियान्वयन की प्रगति के बारे में अवगत कराना तथा आवश्यक नीतियों तथा उपायों के सामंजस्य की अनुशंसा करना,

(7) अपने कर्त्तव्यों का कुशलतापूर्वक पालन करने के लिए अंतरिम अनुशंसाओं को प्रस्तुत करना अथवा प्रचलित आर्थिक स्थितियों को ध्यान में रखकर नीतियों, उपायों तथा विकास के कार्यक्रमों के बारे में सलाह देना अथवा केन्द्र या राज्य सरकारों की विशेष समस्याओं के समाधान के बारे में सलाह देना।

सारणी 6.3
योजना आयोग द्वारा बनाई गई योजनाएँ

योजना	*समयावधि*	*परिप्रेक्ष्य योजना*	*टिप्पणी*
प्रथम पंचवर्षीय योजना	1951-56	1951-1981(30)	
द्वितीय पंचवर्षीय योजना	1956-61	1956-1976(20)	
तृतीय पंचवर्षीय योजना	1961-66	1961-1976(15)	
तीन वार्षिक योजनाएं	1966-69		चौथी योजना वापिस ले ली गयी
चौथी पंचवर्षीय योजना	1969-74	1968-1981(12)	
पांचवीं पंचवर्षीय योजना	1974-79	1974-1986(12)	परिप्रेक्ष्य योजना को बढ़ाकर 15 वर्ष किया गया
वार्षिक योजना	1979-80		
छठी पंचवर्षीय योजना	1980-85	1978-1988(10)	परिप्रेक्ष्य योजना को बढ़ाकर 15 किया गया
सातवीं पंचवर्षीय योजना	1985-90	1985-2000(15)	
दो वार्षिक योजनाएं	1990-92		
आठवीं पंचवर्षीय योजना	1992-97	1992-2007(15)	
नौवीं पंचवर्षीय योजना	1997-02	1997-2012(15)	
दसवीं पंचवर्षीय योजना	2002-07	2002-2012(10)	
चौथी पंचवर्षीय योजना	1966-71	1961-1976(15)	जून 1966 में समाप्त कर दी गयी
(छठी) पंचवर्षीय योजना।	1978-83	1978-1983(10)	परिप्रेक्ष्य योजना को बढ़ाकर (15) किया गया

तुरंत समाप्त कर दी गयी* ***टिप्पणी : कोष्ठ में दिए गए अंक वर्षों को दर्शाते हैं।*

योजना दस्तावेज में दर्शाए गए योजना उद्देश्य (Plan Objectives from Plan Documents)

प्रथम योजना

- अधिकतम उत्पादन,
- पूर्ण रोजगार तथा आर्थिक विषमता को दूर करना।

द्वितीय योजना

- देश में लोगों के रहन-सहन के स्तर को सुधारने के लिए राष्ट्रीय आय के आकार में बढ़ोतरी,
- मौलिक तथा भारी उद्योगों पर विशेष बल देते हुए शीघ्र औद्योगीकरण,
- रोजगार के अवसरों में व्यापक विस्तार,
- आय तथा संपत्ति की विषमताओं को कम करना तथा आर्थिक शक्तियों का अधिक समान वितरण।

तृतीय योजना

- समान अवसर (रोजगार के),
- आर्थिक शक्तियों का वितरण,
- आय में विषमता को घटाना।

चतुर्थ योजना

- लोगों के रहन-सहन के स्तर में अत्यधिक सुधार,
- आय व संपत्ति में अधिक समानता,
- आय, संपत्ति तथा आर्थिक शक्ति में विषमता में उत्तरोत्तर कमी,
- सापेक्ष रूप से अविकसित वर्गों को अधिक लाभ।

पाँचवीं योजना

- गरीबी निवारण,
- आत्मनिर्भरता की प्राप्ति,
- 5.5 प्रतिशत की वृद्धि दर।

छठी योजना (1978-80)

- बेरोजगारी तथा विशिष्ट बेरोजगारी को मिटाना,
- गरीब वर्गों के लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना,
- मूलभूत आवश्यकताओं, जैसे, स्वच्छ पेयजल, प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रौढ़-साक्षरता, ग्रामीण सड़कें, भूमिहीनों के लिए ग्रामीण आवास, शहरी गंदी बस्तियों को आवश्यक सेवाएँ, प्रदान करना, तथा

- पुरानी वृद्धिदर से अधिक वृद्धि दर प्राप्त करना,
- आय तथा संपत्ति में वर्तमान विषमताओं में पर्याप्त कमी करना,
- आत्मनिर्भरता की ओर लगातार बढ़ना,
- वृद्धि दर में पर्याप्त बढ़ोतरी, संसाधनों के प्रयोग तथा उत्पादकता में कुशलता को बढ़ाना,
- आर्थिक तथा तकनीकी आत्मनिर्भरता के लिए आधुनिकीकरण को सुदृढ़ बनाना,
- गरीबी-आपात को लगातार घटाना तथा आत्मनिर्भरता प्राप्त करना,
- ऊर्जा-प्रयोग में कुशलता तथा ऊर्जा बचत पर बल देते हुए ऊर्जा के घरेलू साधनों का विकास करना,
- निश्चित समयावधि तथा स्वीकृत मानकों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक तथा सामाजिक विकलांग जनसंख्या के जीवन के स्तर में 'न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम' द्वारा सुधार लाना,
- आय तथा संपत्ति की विषमताओं को कम करने के उद्देश्य से सरकारी नीतियों तथा सेवाओं के पुनर्वितरण को गरीबों के पक्ष में करना,
- विकास की गति तथा तकनीकी लाभ के लिए क्षेत्रीय विषमता में लगातार कमी करना,
- छोटे परिवार के आदर्श को स्वेच्छा से स्वीकृत कराकर जनसंख्या वृद्धि के नियंत्रण की नीतियों को बढ़ावा देना,
- परिस्थितिकी तथा पर्यावरण संबंधी परिसंपत्तियों का संरक्षण तथा सुधार द्वारा लघुकालिक तथा दीर्घकालिक विकास के लक्ष्यों में सामंजस्य करना,
- विकास प्रक्रिया में उपयुक्त शिक्षा, संचार तथा संस्थागत नीतियों द्वारा सभी वर्गों का सक्रिय सहयोग।

सातवीं योजना

- खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि,
- रोजगार के अवसरों में बढ़ोतरी,
- उत्पादकता में बढ़ोतरी,
- वृद्धि,
- आधुनिकीकरण,
- आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक न्याय।

आठवीं योजना

- शताब्दी के अंत तक पूर्ण रोजगार के लक्ष्य के निकट पहुंचने के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर पैदा करना,
- लोगों के सहयोग, प्रोत्साहन तथा हतोत्साहन के कार्यक्रमों द्वारा जनसंख्या वृद्धि में कमी करना,

- 15-35 आयु वर्ग के लोगों के लिए साक्षरता को मिटाने एवं प्राथमिक शिक्षा का विश्वीकरण करना,
- अछूतों का उद्धार करना, प्राथमिक सुविधाओं तथा स्वच्छ पेयजल प्रदान करना,
- निर्यात करने के उद्देश्य से खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता तथा इनके अधिशेष के लिए कृषि में प्रगति तथा विस्तार,
- सततता के आधार पर आधारिक संरचनाओं को वृद्धि-प्रक्रिया में सहायता प्रदान करने के लिए सुदृढ़ बनाना।

नवीं योजना

- गरीबी मिटाने तथा पर्याप्त उत्पादक रोजगार पैदा करने के लिए कृषि तथा ग्रामीण विकास को प्राथमिकता,
- स्थिर कीमतों पर वृद्धि दर में बढ़ोतरी,
- सभी के लिए, विशेषकर असुरक्षित वर्गों के लिए खाद्यान्न तथा पौष्टिक आहार की सुरक्षा,
- एक निश्चित समयावधि के अंतर्गत सभी को स्वच्छ पेयजल की सुविधाएँ, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र की सुविधाएँ, उच्च प्राथमिक शिक्षा तथा आवास की सुविधाएँ उपलब्ध कराना,
- जनसंख्या वृद्धि में कमी,
- सभी वर्गों के लोगों की भागीदारी तथा सामाजिक संगठन द्वारा विकास की प्रक्रिया को पर्यावरण की दृष्टि से सतत बनाना,
- परिवर्तन तथा विकास के ऐजेन्टों के रूप में महिलाओं तथा समाज के पिछड़े वर्गों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ी जाति तथा अल्पसंख्यकों) को ज्यादा अधिकार देना,
- लोगों की भागीदारी में चलने वाली संस्थाओं जैसे पंचायती राज संस्थाएँ (PRIs), सहकारिता (Cooperatives) तथा स्वयं-सहायता समूहों (SHGs) के विकास को बढ़ावा देना,
- आत्म निर्भर बनाने के प्रयासों को सुदृढ़ करना।

दसवीं योजना

- 8 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर का सांकेतिक लक्ष्य,
- कल्याण को प्रोत्साहन,
- खाद्यान्न तथा अन्य उपभोग की वस्तुओं की उपलब्धता,
- मूलभूत सामाजिक सेवाओं, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल तथा सफाई सुविधाओं को उपलब्ध कराना,
- सभी व्यक्तियों तथा समूहों के सामाजिक तथा आर्थिक अवसरों का विस्तार,

- विषमता में कमी,
- निर्णय निर्धारण में भागीदारी,
- सामाजिक क्षेत्र के लिए उचित संसाधनों का आवंटन,
- संसाधनों के उपयुक्त प्रयोग के लिए प्रशासन में सुधार,
- ऐसे राज्यों में जहाँ वृद्धि दर कम हो, वृद्धि-दर को बढ़ाना,
- वर्ष 2007 तक गरीबी को घटाकर 15 प्रतिशत, तथा वर्ष 2012 तक 5 प्रतिशत करना,
- योजना के दौरान अतिरिक्त श्रम बल को अच्छे रोजगार उपलब्ध कराना,
- वर्ष 2003 तक सभी बच्चों का स्कूल में होना तथा वर्ष 2007 तक सभी बच्चों द्वारा कक्षा पाँच पूरा करना,
- वर्ष 2007 तक साक्षरता तथा मजदूरी दर में लिंग-भेद को 50 प्रतिशत तक घटाना,
- वर्ष 2001-2011 के दौरान जनसंख्या वृद्धि को घटाकर 16.2 प्रतिशत करना,
- वर्ष 2007 तक साक्षरता-दर 75 प्रतिशत तक बढ़ाना,
- वर्ष 2007 तक शिशु मृत्यु दर घटाकर 45 करना तथा वर्ष 2012 तक 28 करना,
- वर्ष 2007 तक माताओं की मृत्यु दर को घटाकर 2 तथा वर्ष 2012 तक एक (1) करना,
- वर्ष 2007 तक वानिकी के विस्तार को बढ़ाकर 25 प्रतिशत तथा वर्ष 2012 तक 33 प्रतिशत करना,
- वर्ष 2007 तक सभी गाँवों में सतत पेयजल सुविधा देना,
- वर्ष 2007 तक सभी मुख्य प्रदूषित नदियों की तथा वर्ष 2012 तक दूसरी ऐसी छोटी नदियों की सफाई करना।

- **औद्योगिक नीति (Industrial Policy):** हम स्मरण करें कि देश के विभाजन के समय स्थितियाँ अस्पष्ट थीं। किंतु उस समय औद्योगिक नीति के बारे में विशेषकर इसकी दिशा के बारे में, एक स्पष्ट वक्तव्य की आवश्यकता थी। सरकार की अप्रैल 1948 में औद्योगिक नीति के प्रस्ताव में इसे स्पष्ट किया गया। शास्त्र/आयुध, परमाणु-ऊर्जा, रेलवे-परिवहन, आदि ही भारत सरकार के नियंत्रण में थे तथा जोखिम वाले नए क्षेत्र, जैसे, कोयला, लौह व इस्पात, हवाई जहाज, जहाज निर्माण, दूरभाष के लिए उपकरण तार तथा बेतार प्रणाली, राज्य-क्षेत्र के अधीन थी। इसका तात्पर्य यह है कि इन क्षेत्रों में विद्यमान इकाइयों को निजी क्षेत्र के हाथों में सौंप दिया था तथा इन इकाइयों के राष्ट्रीयकरण का कोई प्रस्ताव नहीं था। अन्य सभी मूलभत तथा भारी उद्योग (खनन, धातु, सीमेंट), पूँजीगत वस्तुएँ (मशीनरी, परिवहन, विद्युत), रासायनिक (उर्वरक तथा अन्य भारी रसायनिक) तथा उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों (वस्त्र, खाद्य-संशोधन) को सहकारिता इकाइयों सहित निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिया गया था।

अप्रैल 1956 में अपनाई गई उद्योग-नीति प्रस्ताव ने 17 उद्योगों को केवल राज्य के एकाधिकार के अंतर्गत करके एक व्यूह फैला दिया। उनमें से 12 उद्योगों का स्वामित्व प्रगतिशील राज्यों को दिया तथा अन्य उद्योगों पर पैमाने, मात्रा, तकनीकी तथा विदेशी पूँजी के संबंध में निजी क्षेत्र की भागीदारी पर रोक लगा दी। इस प्रस्ताव को संसद के भारत में समाजवादी समाज की स्थापना के प्रस्ताव को ध्यान में रखकर अपनाया गया। संविधान में भी मौलिक अधिकार का प्रावधान करते हुए, राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार, के लिए सहकारिता क्षेत्र को सुददृढ़ बनाना तथा कुटीर एवं लघु उद्योगों को संरक्षण देना, ये तीन मुख्य घोषणाएँ कीं। सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार के दो कारण थे। एक, आगे बढ़ने में निजी क्षेत्र की अयोग्यता तथा दूसरा, निजी क्षेत्र पर सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं को प्रदान करने में अविश्वास होना। तथापि इन दोनों क्षेत्रों के संबंध विवादास्पद थे। लघु उद्योगों को बड़े उद्योगों से स्पर्धा के कारण भेद-मूलक कर प्रणाली, आर्थिक सहायता तथा मात्रा-नियंत्रण जैसे उपायों को लागू करना पड़ा। ऐसा माना गया कि विकेंद्रित क्षेत्रों द्वारा रोजगार को बढ़ावा मिलेगा, संसाधन गतिशील होंगे, वितरण में समानता बढ़ेगी तथा शहरीकरण की बेतरतीब प्रवृत्ति पर रोक लग सकेगी। इस नीति ने (अप्रैल 1949 में घोषित) विदेशी पूँजी के प्रवाह को भी नियमित करने पर बल दिया।

वर्ष 1991 की औद्योगिक नीति के अनुसार कुछ उद्योगों को छोड़कर, शेष सभी परियोजनाओं पर से लाइसेंस हटा लिया जाएगा। ये उद्योग निम्नलिखित विषयों से संबद्ध हैं– (i) सुरक्षा तथा नीतिगत विषयों से, (ii) सामाजिक कारणों से, तथा (iii) हानिकारक रसायन तथा पर्यावरण को नष्ट करने वाले कारणों से (iv) उच्च वर्गों के उपभोग की वस्तुओं से। इनके विस्तार के लिए भी अनुमति की आवश्यकता नहीं होगी। किंतु लघु क्षेत्र के लिए सुरक्षित उद्योग उनके लिए सुरक्षित रहेंगे, तथा ये उद्योग यदि सीमित सूची वाले उद्योगों में सम्मिलित होना चाहते हैं तो उन्हें लाइसेंस की आवश्यकता नहीं होगी। यदि विदेशी पूँजी (इक्विटी) की भागीदारी सुनिश्चित होती है तो पूँजीगत वस्तुओं के आयात का रास्ता स्वतः ही खुल जाएगा। विद्यमान इकाइयों की विविधता के विस्तार के लिए बिना किसी अवरोध के अनुमति दी जाएगी।

सार्वजनिक क्षेत्र आवश्यक आधारिक संरचनात्मक वस्तुओं एवं सेवाओं तथा सामरिक महत्त्व संबंधी उत्पादों के क्षेत्र में कार्य करेगा जैसे, रक्षा उपकरण, तेल तथा खनिज संसाधनों की खोज तथा दोहन, तकनीकी विकास तथा अर्थव्यवस्था के दीर्घकालिक विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों तथा ऐसे क्षेत्रों में, जहाँ निजी क्षेत्र निवेश अपर्याप्त हैं।

- **किसी औद्योगिक नीति से हमें क्या आशाएँ होनी चाहिए? (What We Expect in an Industrial Policy?):**
    - उद्योगों का विभाजन-सार्वजनिक, निजी, संयुक्त दोनों के अनुसार,
    - कुटीर, लघु, मध्यम तथा बड़े उद्योगों के पैमाने के स्तर के अनुसार आरक्षण,
    - तकनीकी का प्रयोग : पारम्परिक/ग्रामीण, आधुनिक,
    - विदेशी पूँजी का प्रयोग : कहाँ, कैसे, तथा कितना,
    - किसी व्यक्तिगत इकाई की क्षमता की सीमा का निर्धारण,
    - संवेदनशील विषयों में राज्य की जिम्मेदारी,
    - केन्द्रीयकरण पर रोक,
    - परम्परागत उद्योगों पर निर्भर रहने वालों की जीविका का संरक्षण।

- **सतत घातीय वृद्धि की शक्ति (Power of Continuous Exponential Growth):** मानव जनसंख्या आरंभ से ही संवृद्धि दर के साथ-साथ नहीं बढ़ रही है। यह निम्नलिखित विधि से स्पष्ट होती है।

  युग के आरंभ से एक करोड़ जनसंख्या यदि 1 प्रतिशत प्रतिवर्ष दर से भी वृद्धि करती तो यह 44,00,00,000 करोड़ हो जाती। यहाँ तक की 1/2 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि दर से भी 2000 वर्षों की अवधि में जनसंख्या में 21,000 गुणा वृद्धि हो जाती।

  मानव इतिहास इससे बहुत प्राचीन है। इसका सरल तात्पर्य यह है कि जनसंख्या बढ़ी तथा घटी, सभ्यताएँ विकसित हुईं; इनके पतन/विनाश हुए। भारत की स्थिति भी वैसी ही रही।

- **शिशु मृत्यु दर में गिरावट का महत्त्व (Importance of Infant Mortality Reduction):** आप अपने परिवार, संबंधियों के परिवारों, पड़ोस के मित्रों के परिवारों में बच्चों की शिशु अवस्था में मृत्यु के बारे में जानकारी करें। अपने माता-पिता तथा चाचाओं से उनके भाई बहिनों के बारे में बात करें, जिनकी मृत्यु शिशु-अवस्था में हो गई थी। अपने दादा-दादी/नाना-नानी से भी उनके भाई-बहिन तथा बच्चों की मृत्यु के बारे में पूछें। आप यह पाएँगे कि बच्चों की शिशु-अवस्था में मृत्यु में पीढी-दर-पीढी गिरावट हुई है। यह भी जानने का प्रयास करें कि आपके दादा-दादी की पीढ़ी में तथा माता-पिता की पीढ़ी में महिलाओं ने कितने बच्चों को जन्म दिया। इसकी तुलना अपने तथा अपने मित्रों के भाई-बहिनों की संख्या से करें। आप पाएँगे कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी बच्चों की संख्या कम हुई है।

  इसका क्या प्रभाव किधर हुआ? शिशु मृत्यु दर में गिरावट से आने वाली पीढ़ी को कम बच्चे पैदा करने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा।

- **अमर्त्य सेन का योगदान (Contribution of Amartya Sen):** मान लें कि गरीबी रेखा 50 इकाई है। मान लें कि दो समाज हैं तथा प्रत्येक समाज में 10 लोग हैं। मान लें कि

एक समाज में 5 व्यक्तियों में प्रत्येक के पास 20 इकाइयाँ हैं तथा 5 लोगों के पास 50 से ज्यादा इकाइयाँ हैं। दूसरे समाज में, 5 व्यक्तियों में प्रत्येक के पास 45 इकाई हैं तथा 5 लोगों के पास 50 से अधिक इकाइयाँ हैं। यदि आप से पूछा जाए तो आप बताएँगे कि प्रत्येक समाज में 50 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं। कुछ लोग इसे गरीबी का आपात कहेंगे। किंतु आप शायद इससे संतुष्ट हों क्योंकि आप देखेंगे कि एक समाज में गरीबी अधिक है क्योंकि वे दूसरे समाज की तुलना में गरीबी रेखा से बहुत दूर हैं।

पहली स्थिति में गरीबी रेखा से औसतन दूरी 30 इकाई है जबकि दूसरी स्थिति में यह केवल पाँच (5) इकाई है। अतः आप इस दूरी को औसत गरीबी अंतर (poverty gap) कह सकते हैं तथा किसी भी गरीबी के अच्छे माप के लिए इसके प्रयोग का सुझाव दे सकते हैं। गरीबी की गहनता जानने के लिए इस निरपेक्ष अंतर को गरीबी-रेखा से विभाजित कर सकते हैं।

एक बार फिर मान लें कि, दो समाज हैं, तथा प्रत्येक में 10 में से 5 लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं तथा प्रत्येक समाज में गरीबी अंतर 30 इकाई है। एक समाज में पांचों गरीब व्यक्तियों के पास समान इकाई अर्थात 20 है तथा दूसरे समाज में इसका वितरण 10, 10, 20, 30, 30 है। क्या हम अभी भी यह कहेंगे कि दोनों समाजों में गरीबी की स्थिति समान है। नहीं, शायद हम यह कहेंगे कि हमें गरीबों के बीच असमानता के स्तर का प्रयोग करना चाहिए।

अतः हमें निम्नलिखित बातों पर विचार करना चाहिए– (i) आपात, जिसका तात्पर्य है गरीबी रेखा से नीचे के लोगों का जनसंख्या का अनुपात, (ii) गहनता, जिसका आशय है कि गरीब लोग, गरीबी रेखा से कितने नीचे हैं, (iii) गरीबों के समकक्ष समूह में असमानता। यदि आप अर्थपूर्ण तरीके से तीनों आयामों को सम्मिलित कर लेंगे तो आप अमर्त्य सेन हो जाएँगे तथा नोबल पुरस्कार जीत लेंगे! बुरा विचार नहीं है।

- **विद्युत शक्ति : उत्पादन संचारण, परिवहन तथा वितरण (Electric Power : Generation, Transmission and Distribution):** विद्युत का उत्पादन प्लान्ट में होता है, चाहे वह तापीय हो या वाष्पीय या नाभिकीय या गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोत। यदि अधिक मात्रा में उत्पादन होता है तो उसके उपभोग स्थानीय नहीं होते। यह उच्च वोल्टेज के रूप में संचरण-तारों द्वारा उत्पादक संयंत्रों से पावर-स्टेशनों अथवा उप-स्टेशनों तक ले जाई जाती है। आपने लोहे के ऊँचे स्तम्भ भारी तारों से जुड़े हुए देखें होंगे। यह संचरण-नेटवर्क है।

  इसका वितरण विद्युत स्टेशन अथवा उप-स्टेशन से अंतिम उपभोक्ता-उद्योग, कृषि, वाणिज्यिक संस्थाएँ, घरों तथा रेलवे तक होता है। शहरों के खम्भे तथा शहरों में तारों का जाल मिलकर शहरों के वितरण नेटवर्क बनाते हैं। पैमाने के अंतर में यही स्थिति ग्रामीण क्षेत्र की है।

वर्ष	पुरुष	महिला	कुल	वर्ष	पुरुष	महिला	कुल
1951				1981			
ग्रामीण	19.02	04.87	12.10	ग्रामीण	49.60	21.70	36.00
शहरी	45.60	22.33	34.59	शहरी	76.70	56.30	67.20
कुल	27.10	08.86	18.33	कुल	56.38	29.76	43.57
1961				1991			
ग्रामीण	34.30	10.10	22.50	ग्रामीण	57.90	30.60	44.70
शहरी	66.00	40.50	54.40	शहरी	81.10	64.00	73.10
कुल	40.40	15.35	28.30	कुल	64.13	39.29	52.21
1971				2001			
ग्रामीण	48.60	15.50	27.90	ग्रामीण	71.40	46.70	59.40
शहरी	69.80	48.80	60.20	शहरी	86.70	73.20	80.30
कुल	45.96	21.97	34.45	कुल	75.85	54.16	65.38

***टिप्पणी** : वर्ष 1951, 1961 तथा 1971 के लिए जनसंख्या समूह 5 वर्ष से अधिक आयु के लिए है जबकि वर्ष 1981, 1991 तथा 2001 के लिए यह 7 वर्ष से अधिक आयु के लिए है।*

***स्रोत** : भारत की जनगणना, सीरीज-1, भारत, अनंतिम जनसंख्या योग, पेपर-1, 2001।*

समग्र आपूर्ति तथा समग्र माँग को मिलाने के लिए ग्रिड-मेकेनिज्म को विकसित किया गया। यह विवरण पूरे नेटवर्क का सही दृश्य नहीं हैं। इसका उद्देश्य बस समस्या की जानकारी देना है।

- **साक्षरता में ग्रामीण-शहरी विषमता (Rural Urban Disparities in Literacy):** महिला-पुरुष साक्षरता दर (प्रतिशत में) का ग्रामीण-शहरी क्षेत्रों के अनुसार विभाजन।